卐 श्रीसीतारामाभ्यां नमः 卐

# ॥ अथ द्वितीयोपनिषत् ॥

द्वितीयोपनिषदारभ्यचतुर्थोपनिषत् समाप्त्यन्तं मन्त्रार्थयन्त्रयोर्विवेचनं वक्ष्यते । तस्मात् प्रथमोपनिषदि संक्षेपेण मन्त्रार्थयन्त्रयोनिर्देशः । अतो मन्त्रार्थे यन्त्रनिर्देशस्य नासङ्गतिः । श्रीराममन्त्रार्थयन्त्रयोः स्फुटं सर्वकारणत्वं प्रकाशयितुं श्रीरामाभिन्नस्य वह्निवीजस्यार्थं कथयन् वीजस्य स्वतः सिद्धत्वेन कारणत्वं प्रणवस्य च वीजकार्यत्वमिति स्वभूर्ज्योतिर्मयोऽनन्तेत्याद्यारभते-

**स्वभूर्ज्योतिर्मयोऽनन्तरूपी स्वेनैव भासते ।**
**जीवत्वेनेदमों यस्य सृष्टिस्थितिलयस्य च ॥**
**कारणत्वेन चिच्छक्त्या रजःसत्वतमोगुणैः ॥१॥**

स्वतः सिद्ध सभी कारण स्वरूप प्रकाशमय अनगिनत द्विभुजादि सहस्र भुजान्त स्वरूप धारियों का रूपी अपने ही प्रकाशमय स्वरूप से प्रतिभासित होते हैं । इन परमात्मा श्रीरामचन्द्रजी का स्वरूप विकासक के रूपमें ॐकार यह वह्नि वीज का जो कार्य स्वरूप है उसका रजः सत्व और तमो गुणों से विशिष्ट चित् शक्ति के द्वारा संसार की सृष्टि पालन एवं संहार का कारण स्वरूप में अवस्थित हैं ॥१॥

स्वतः सिद्धः सर्वकारणः प्रकाशमयोऽगणितद्विभुजादिसहस्रभुजान्तरूपी स्वेनैव प्रकाशमयेन स्वरूपेण भासते । अस्य परमात्मनः श्रीरामस्य स्फोटकत्वेन ॐ इतिवह्निवीजहेतुस्वरूपस्य रजःसत्वतमोगुणैः विशिष्ट्या चिच्छक्त्या सृष्टि-स्थितिलयानां कारणत्वेन अवस्थितिरस्ति ।

卐 श्रीसीतारामाभ्यां नमः 卐

## ॥ द्वितीय उपनिषद् ॥

द्वितीय उपनिषद् से आरम्भ कर चतुर्थ उपनिषद् समाप्ति पर्यन्त श्रीराम मन्त्र का अर्थ तथा यन्त्र के स्वरूप का विवेचन किया जायगा । इसीलिये प्रथम उपनिषद् में संक्षिप्त रूपसे मन्त्र का अर्थ एवं यन्त्र का महत्व कहा गया है । इसलिये मन्त्रार्थ के अन्तर्गत यन्त्र का विवेचन का असङ्गत है यह वात नहीं है । विवेचनीय-विषय का पूर्व सङ्केत मात्र है इसलिये सुसङ्गत समझें । श्रीराम मन्त्र का अर्थ एवं यन्त्र का

**स्वभूः स्वतः सिद्धोऽकारणकः, इतिभावः । तेन श्रीरामतन्मन्त्रयोरन्य कार्यनिरासात् बहूनां मूलकारणत्वाभावाच्च सर्वकारणत्वसिद्धिः । ज्योतिर्मयः प्रकाशमयः तेन स्वभिन्नप्रकाशत्वं ज्ञायते । अनन्तरूपी अगणितद्विभुजादिमद् रूपं वर्तते यस्य तच्छीलः विभिन्नदेशस्थानां भक्तानां युगपत् स्वविग्रहेणा विर्भावात् । 'विश्वव्यापी राघवोयस्तदानी' मिति विश्वव्यापित्वश्रुतेः । नीलपी तादिपुष्पसन्निधानेन वैदुर्यमणेरनेकरूपमिवायमपि विलक्षणशक्तिमानुपासकानां भावनानुसारेणानन्तरूपी, 'चिन्मयस्याद्वितीयस्य ब्रह्मणोरूपकल्पनेतिश्रुतेः । 'यो वै मत्स्यकूर्मवराहाद्यवतारा' इत्यादिमन्त्रेभ्यः, मां त्वं पूर्वमजीजनः' 'विष्णुत्वमुप जग्मिवान्' 'एकश्रृङ्गवराहस्त्वमित्यादि' स्मृतेभ्यः । 'रेफारूढामूर्तयस्युः । ओमिति यद्भूतं यच्च भवद् भव्यं च तत् सर्वमोंकार एवेति । रकाराज्जायते ब्रह्मेत्यादि पुलहसंहितावचनेभ्यश्च बुध्यते ।**

सुस्पष्ट रूपसे सर्व जगत् कारणता का प्रकाशन करने के लिये भगवान् श्रीरामचन्द्रजी से अभिन्न वह्नि वीज का अर्थ कहते हुए वीज का स्वतः सिद्ध होने के कारण ॐकार का कारण तथा सर्वजगत् एवं सर्व मन्त्र का कार्यत्व है, इस अभिप्राय को स्वभूर्ज्योतिर्मयोऽनन्त इत्यादि ऋचा का प्रारम्भ कर कहते हैं ।

स्वभूः से स्वतः सिद्ध जिसका कोई कारण नहीं है यह अभिप्राय है । इससे भगवान् श्रीरामजी एवं श्रीराम मन्त्र का कोई अन्य कारण नहीं होने से अन्य का कार्यत्व का खण्डन करने से और बहुतों का मूलकारणत्व होना सम्भव नहीं होने से इन दोनों की सर्वकारणता सिद्ध होती है । ज्योतिर्मय का अर्थ है प्रकाशमय प्रकाशमयत्व बोधन से ज्ञात होता है कि श्रीरामजी एवं श्रीराम मन्त्र से भिन्न इनका प्रकाशक नहीं है ये स्वतः प्रकाश रूप हैं । नाम नामी का अभेद के कारण दोनों एक हैं । अनन्त रूपी कहने का अर्थ है कि अनगिनत द्विभुज से प्रारम्भ कर सहस्त्र भुजान्त भगवान् श्रीरामजी के स्वरूप हैं । विभिन्न देशों में उपस्थित रहने वाले अपने भक्तों की भावना के अनुसार एक समय में अपने स्वरूप से प्रकट होने के कारण समस्त विश्व में व्यापनशील जो रघुकुल नायक भगवान् श्रीरामजी उस समय में इत्यादि विश्व व्यापित्व श्रुति वचनानुसार, नीला पीला लाल हरा आदि पुष्पों की सन्निकटता से जैसे वैदुर्यमणि का अनन्त रूप प्रतीत होता है । उसी तरह ये भगवान् श्रीरामचन्द्रजी भी अचिन्तनीय विलक्षण शक्ति से परिपूर्ण हैं, जो अपने उपासक भक्तों की भावना के अनुरूप तत्तद्

नन्वनन्तरूपधारिणामपि सौभर्यादीनां कारणान्तरं श्रूयते, ज्योतिर्मयस्यापि भास्करस्य भास्करान्तरं कारणं श्रूयते, एवं ज्योतिर्मयस्यापि प्रकाशान्तरं कारणमस्त्वित्याशंकां निवारयितुमाह-स्वेनैव भासते इति। न तस्य प्रकाशकान्तर मस्ति बहूनां स्वप्रकाशकत्वासिद्धेः। श्रीरामे सर्वप्रकाशकत्वमर्थतः सिद्धम्। तदुक्तम्-

नारायणादिनामानि कीर्तितानि बहून्यपि।
आत्मा हि तेषां सर्वेषां रामनामप्रकाशकः॥

भावनानुसार अनन्त रूपी हैं। इसमें 'चिन्मयस्याद्वितीयस्य' 'ब्रह्मणोरूपकल्पना' श्रुति वचन प्रमाण है। जो मत्स्य कूर्म वराह आदि अगणित अवतार हैं वे श्रीरामचन्द्रजी के ही है इन मन्त्रों के द्वारा, 'मुझे आपने पूर्व सृष्टि में पुनः पुनः उत्पन्न किया, विष्णुत्व स्वरूप, को प्राप्त किया, एक शृङ्गवाला वराह आप हो' इत्यादि स्मृति वचनों से, रेफ पर आरूढ तीन मूर्ति एवं उत्पत्ति स्थिति संहार शक्तियां हैं। ॐ यह जो भूत है जो वर्तमान और जो भविष्य है सवकुछ ॐकार ही है। तथा रकार से ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं। इत्यादि पुलह संहिता वचन से भी भगवान् श्रीरामजी का सर्वरूपीत्व सर्वकारणत्व आदि समझा जाता है।

यदि अनन्त रूपी श्रीरामजी को कहते हैं तो भी उसका कोई कारण होना चाहिये। जैसे सौभरी आदि का अनन्त शरीर था किन्तु उसका कोई कारण था। ऐसा शास्त्रों में सुना जाता है, उसी तरह श्रीरामजी का भी होना चाहिये। दूसरा ज्योतिर्मय सूर्य का अन्य सूर्य कारण सुना जाता है। अतः ज्योतिर्मय का भी प्रकाशान्तर कारण होना चाहिये, इस सन्देह का निवारण करने के लिये कहते हैं, 'स्वेनैव भासते' अर्थात् अपने ही दिव्य तेज से प्रकाशित होते हैं। उसका प्रकाशान्तर कारण नहीं है। बहुतों का स्वतः प्रकाशत्व की सिद्धि नहीं होने से और भगवान् श्रीरामचन्द्रजी में सर्व प्रकाशकत्व अर्थ वशात् सिद्ध है यही अन्यत्र कहा गया है। श्रीनारायण विष्णु कृष्ण नृसिंह आदि नाम बहुत कहे गये हैं फिर भी सभी भगवद् विग्रहान्तरों की आत्मा श्रीराम नाम ही है। श्रीराम नाम ही सभी देवताओं के नाम का प्रकाशक है।

इसप्रकार सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी एवं श्रीराम मन्त्र का स्वतः सिद्धत्व एवं स्वतः प्रकाशकत्व का निरूपण करके श्रीरामचन्द्रजी से भिन्न सभी को श्रीरामजी का कार्यत्व एवं प्रकाश्यत्व कहते हुए मन्त्र में 'जीवत्वेन इदम् ओंम् यस्य' इत्यादि मन्त्र के द्वारा

इत्थं स्वतः सिद्धत्वं स्वप्रकाशत्वञ्चोक्त्वा तद्भिन्नस्य सर्वस्य तत्कार्यत्वं तत्प्रकाश्यत्वञ्च कथयन्नाह जीवत्वेनेदमों यस्य । ॐ कारप्रणवमिदं कृत्स्नं जगद्भासते, इति । सर्ववेदसर्वमन्त्रप्रकाशकत्वबोधनायाह जीवत्वेनेदमों यस्येति। यस्य परमात्मनः श्रीरामचन्द्रस्य स्फोटकत्वेन सर्ववेदसर्वमन्त्रात्मकं ॐ काराक्षरं भासते वह्निवीजमेव वर्णविश्लेषादिकारणान्तरमोंकाररूपत्वेन भासते, तद्भिन्न ॐकारो नास्तीति भावः । 'रामनाम्नः समुत्पन्नः प्रणवोमोक्षदायकः' इतिस्मृतेश्च। तदद्वारकं सृष्ट्यादिकं प्रतिपादयन्नाह-रजः सत्वतमोगुणैरिति-रजःसत्वतमो गुणैर्विशिष्टयाचित् शक्त्या सृष्टिस्थितिलयकारणत्वेन सर्वेश्वरश्रीरामोवतिष्ठते, अत्र क्रियामध्याहृत्य भासते इति सम्बन्धः । रेफारूढामूर्तयः स्युरिति चराचरात्मकस्य जगतः कारणादिभूतानां ब्रह्मविष्णुमहेशानां रेफाश्रितत्वात्, आदावन्ते च मध्ये च

ॐकार से उत्पन्न होने वाला यह समग्र जगत् प्रतिभासित होता है । श्रीरामचन्द्रजी का समस्त वेद समस्त मन्त्र का प्रकाशकत्व बोध कराने के लिये श्रुति वचन कहता है कि-जीवत्वेन इदमोंयस्य...। जिस परमात्मा श्रीरामचन्द्रजी का स्फोटकत्व के स्वरूप में समस्त वेद समस्त मन्त्र स्वस्वरूप ॐकार स्वरूप अक्षर प्रतिभासित होता है।

वह्नि वीज ही (रां का रेफ ही) वर्ण विश्लेष आदि अन्य कारणों को प्राप्त कर ॐस्वरूप में प्रतीत होता है 'रां' बीज से ॐकार का उत्पत्ति क्रम कइएक प्रकार से श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर टीका तथान्य प्रबन्धों में किया हूँ अतः वहीं देखें । रेफ से अतिरिक्त ॐकार भगवान् श्रीरामचन्द्रजी एवं श्रीरामजी से अतिरिक्त कोई विशेष तत्त्व नहीं है । क्योंकि कार्यकारण का अभेद सम्बन्ध होता है । कहा भी गया है कि-श्रीराम नाम से उत्पन्न होनेवाला प्रणव स्वरूप ॐकार मोक्ष प्रदान करनेवाला है । श्रीराम नामोत्पन्न ॐकार के द्वारा ही सृष्टि आदि की प्रक्रिया निर्वाहित होती है इस विषय का निरूपण करते हुए कहते हैं 'रजः सत्व तमोगुणैः' इत्यादि । रजो गुण सत्व गुण और तमो गुण से विशिष्ट चित् शक्ति के द्वारा संसार की उत्पत्ति परिपालन और संहार का कारण स्वरूप के द्वारा भगवान् श्रीरामचन्द्रजी सभी में स्थित रहते हैं । इस वाक्य में क्रिया का अध्याहार करके भासते इस पद के साथ सम्बन्ध करते हैं । 'रेफारूढामूर्तयः स्युः' इत्यादि वचन के द्वारा जडचेतनात्मक इस समस्त संसार का कारण पालक एवं संहारक बने हुए ब्रह्मा विष्णु एवं महेश्वर स्वरूप कारणता के द्वारा इन सभी का रेफाश्रितत्व कहा गया है । इसलिये कहा है कि आदि अन्त एवं मध्य

**रकारे सुव्यवस्थितम् । रकाराज्जायते ब्रह्मेत्यादिस्मरणाच्च रेफात्मके षडक्षरे श्रीराममन्त्रे सृष्टिस्थितिलयहेतुत्वं विज्ञेयम् ॥१॥**

में यह सबकुछ रेफ में ही व्यवस्थित है। रेफ से उत्पत्ति स्थिति संहार होता है। रेफ से ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं। इत्यादि स्मृति वचन के द्वारा रेफात्मक षडक्षर ब्रह्म तारक श्रीराम मन्त्र में समग्र जगत् की रचना परिपालन एवं संहार की कारणता निहित है यह अभिप्राय समझना चाहिये ॥१॥

**ननु अस्य विचित्रस्य संसारस्य सृष्टिस्थितिसंहारकर्त्वान्येकस्य विग्रहवतो सम्भवतु नाम यथा कुलालादेः घटशरावादीनामनेकेषां स्त्रष्टृत्वं, यथा च राज्ञोविधिव्यवस्थया विविधप्रजानां पालकत्वं किन्तु तेषां सावयवत्वेनाल्प परिमाणत्वम् । तेषां हेतुः सम्भवति । किन्त्वस्य जगतस्तु विविधत्वेन बहुत्वेन बहुपरिमाणत्वम् । तेन नाधारत्वं सम्भवतीत्याशङ्कानिवारणाय अघटित घटनापटीयसिपरमेश्वरे श्रीरामचन्द्रे न किमप्यसम्भाव्यमिति निरूपणाय तत् सृष्ट्यन्तर्गतसूक्ष्मतरपरिमाणवतोऽपि महत्तमपरिमाणकार्यजनकत्वं स्फुटयन्नाह- यथैव वटवीजस्थ इति ।**

**यथैव वटवीजस्थः प्राकृतश्च महाद्रुमः ।**
**तथैव रामवीजस्थं जगदेतच्चराचरम् ॥२॥**
**रेफारूढामूर्तयः स्युः शक्तयस्तिस्त्र एव चेति ॥३॥**

जिसप्रकार अनन्त फल शाखा प्रशाखा पत्र आदि से समन्वित अति विशाल वट वृक्ष अपने सूक्ष्म वीज में स्थित होता है। उसीप्रकार जडचेतनात्मक यह समग्र संसार श्रीराम वीज में स्थित होता है। ब्रह्मा विष्णु और शिव की मूर्तियां और विमला आदि तीन शक्तियां रेफारूढ है, जैसे वृक्षारूढ प्राणी वृक्ष पर आश्रित होते हैं उसीप्रकार ये मूर्तियां और शक्तियां रेफ पर आधारित हैं ॥२-३॥

(येन प्रकारेण बहुफलशाखापत्रादिमान् अतिविशालोवटवृक्षः स्वसूक्ष्मवीजस्थो भवति, तथैव जडचेतनात्मकमिदं जगत् परेशश्रीरामवीजस्थितम्भवति, ब्रह्मविष्णु महेशाद्या मूर्तयः विमलाद्याः शक्तयश्च रेफारूढाः सन्ति । यथा वृक्षारूढा वृक्षाधारेण तिष्ठन्ति तथैवेमाः तिष्ठन्तीति भावः)

यथा प्राकृतोमहाद्रुमः बहुफलशाखादियुतो वटवृक्षे वीजस्थोभवति, तथैवचराचरं जगत् सर्वेश्वरश्रीरामवीजस्थं श्रीरामरूपं वीजं श्रीरामाभिन्नं वा वीजं तच्च 'रां' इति तत् जगदाधारं जगदुपादानमिति फलितार्थः । यथा कश्मिश्चित् क्षेत्रे वपति सिञ्चति कृन्तति चायमिति स्वामी अयमित्यपरेण निश्चीयते, तथैव जगत् सृष्ट्यादिव्यापारैरयं शेषीति निश्चीयते शेषभूतं चास्य परमात्मनो चराचरं जगदिति फलितोऽर्थः ।

ननु नान्यस्यायं शेष इतिनिषेधो न श्रूयते । ब्रह्मादीनाञ्च जगत्कारणत्वादिकं श्रूयते । तेन तेषामपि शेषिकोटिप्रविष्टत्वात्-इत्याशङ्कायां प्रणवस्य वह्निवीजकार्यदार्ढ्यायोच्यते-तस्य हवा प्रणवस्य या पूर्वामात्रापृथिव्यकारः सऋग्भिः ऋग्वेदोब्रह्मावसवो गायत्रीर्गार्हस्थ्यः सा साम्नः प्रथमः पादोभवतीत्या

यदि यह प्रश्न करते हैं कि इस विचित्र संसार की सृष्टि पालन और संहार करने वाले होने से अनेक शरीर धारी देव भले ही हों जैसे कुम्भकार आदि का घट शराव आदि अनेक वस्तुओं का कर्तृत्व होता है, और जिस तरह राजा के कानून और न्याय व्यवस्था के द्वारा अमीर गरीब बालक बृद्ध स्त्री पुरुष आदि अनेक तरह के प्रजाओं का पालकत्व होता है, किन्तु उन सभी का अवयव युक्त होने के कारण अल्प परिणामत्व है । उन सभी का अन्य कारण हो सकता है । लेकिन इस संसार का तो अनेकानेक प्रकार का होने के कारण तथा बहुत होने से महत् परिमाणत्व है । महत् परिमाण होने के कारण आधार तव नहीं हो सकता है इस सन्देह का निराकरण करने के लिये, जो कार्य कभी सम्भव नहीं हुआ ऐसे कार्यों की घटना करने में अत्यन्त दक्ष परमेश्वर श्रीरामचन्द्रजी में कोई भी ऐसा कार्य नहीं है जिसकी सम्भावना नहीं की जा सकती । अर्थात् भगवान् श्रीरामजी में सवकुछ सम्भवित है, इस वस्तु का निरूपण करने के लिये, भगवान् श्रीरामजी की सृष्टि के अन्तर्गत अत्यन्त सूक्ष्म परिमाण वाला का भी अत्यन्त महत् परिमाण वाला उत्पन्न करने की क्षमता है । इस अभिप्राय को सुस्पष्ट करते हुए कहते हैं-यथैव वटवीजस्थ इत्यादि-जिस तरह अत्यन्त सूक्ष्म वडगद के वीज के अन्तः स्थित प्रकृति जनित अति विशाल वट वृक्ष होता है, उसी प्रकार श्रीराम मन्त्र के वीज में स्थित यह दृश्य जडचेतनात्मक जगत है क्योंकि रेफ में ही आरूढ तीनों मूर्ति तथा तीनों शक्तियां है ।

जिसप्रकार प्रकृति द्वारा उत्पादित विशाल वृक्ष अनन्त फल शाखा प्रशाखा आदि

दिभिः प्रणवस्य सर्ववेदत्वं सर्वदेवत्वं सर्वलोकत्वादिकं नृसिंहतापनी यादिषूपनिषत्सु प्रणवार्थोनिरूपितः। प्रणवार्थप्रधानभूतानां ब्रह्मविष्णुमहेशादीनां श्रीरामबीजरेफाश्रिताकारवाच्यत्वोक्तेस्तेषां रेफवाच्यश्रीरामाश्रितत्वं बुध्यते। तेषाञ्च परमात्मन उत्पत्तिश्रवणात् तदादेशपालकत्वाच्च श्रीरामशेषत्वं श्रीमतोरामस्य च तच्छेषित्वं रेफारूढत्वात्। तदुक्तम् रेफो रवर्णः तमारूढा तदुपश्लिष्टा यथा वृक्षारूढा वानरा वृक्षाश्रिताः भवन्ति, तथैव मूर्तयो ब्रह्मविष्णुरुद्राः तिस्त्रः मात्राः अकारद्वयं मकारश्चेति तैः समुदिताः 'रां' वीजं स्युरिति ज्ञेयम्। तेषां शेषित्वनिषेधायैव 'रेफारूढा' इत्युक्तम्। यद्यपि श्रीरामवीजस्थकथनेनैव सिद्धौ रेफारूढेति विशेषोक्तिः वीजस्वरूपबोध नार्थेतिगम्यते वीजावयवाकारादिवाच्यानां ब्रह्मादीनां जगद् रचनादिकमवलम्ब्य तेषां बहुत्वात् शेषित्वासिद्ध्या रेफवाच्यस्यैवैकस्य ब्रह्मादीनामाश्रयत्वं बोध्यते। तेन निरूपाधिकशेषित्वज्ञापनं सुतरां सिद्ध्यति।

से युक्त वटवृक्ष अपने सूक्ष्म वीज में प्रतिष्ठित होता है, उसीप्रकार जडचेतनात्मक यह संसार 'राम' रूप बीज में अथवा 'राम' से अभिन्न वीज में स्थित होता है, वह 'रां' इस स्वरूप समस्त जगत का आधार समस्त जगत का निमित्त तथा उपादान कारणरूप में है यह फलितार्थ है। जिसप्रकार कोई किसी खेत में बोते हैं, सींचते हैं तथा फसल काटते हैं यह देखकर निर्णय होता है कि इस खेत का स्वामी यह व्यक्ति है ऐसा देखकर निर्णय किया जाता है, उसी तरह ही संसार के रचना आदि क्रियाओं के द्वारा यह निश्चय किया जाता है कि ये भगवान् श्रीरामजी ही शेषी हैं और इन परमात्मा का शेषभूत यह चराचर जगत है।

यदि प्रश्न करें कि यह संसार किसी दूसरे का शेष नहीं है ऐसा निषेध भी नहीं सुना जाता है तथा ब्रह्मा आदि का जगत् कारणत्व आदि भी सुना जाता है। इससे कारण होने से ब्रह्मा आदि का भी शेषी कक्षा में प्रविष्ट होने से उन्हें भी शेषी मानना चाहिये इस सन्देह के होने पर प्रणव का वह्नि वीज का कार्यत्व निश्चय के लिए कहते हैं, उस प्रणव का जो पूर्व मात्रा है वह पृथ्वी का बोधक अकार है वह ऋचाओं से ऋग्वेद ब्रह्मा समस्त वसु गायत्री, गार्हस्थ्य है वह साम के प्रथम पाद होता है, इत्यादि वचनों के द्वारा प्रणव का सर्ववेदत्व सर्वदेवत्व और सर्वलोकत्व स्वरूप नृसिंह तापनीय आदि उपनिषदों में प्रणव का अर्थ बताया गया है। प्रणव के अर्थ में मुख्य

**यद्यपि 'रेफारूढामूर्तयः स्युः शक्तयः तिस्र एव च' इत्यत्र वीजरूपबोधनार्थकत्वमिति नोचितम् त्रिशक्तिपदस्य मूर्तिपदस्य च निरर्थकत्वं स्यात् । तथा च 'सीतारामौ तन्मयावत्र पूज्याविति तत् शब्देन बोधितः पूर्वपरामृष्टः सम्पूर्ण एव मन्त्रः श्रीरामार्थबोधकः न तु केवलं रेफः । तेन तदारूढपदेन विरोधः । वीजस्थमकारविवरणस्य जीववाचित्वबोधकोत्तरश्रुतिविरोधश्चात्र दृश्यते । मन्त्रार्थप्रकरणे वीजप्रत्यक्षरवाच्यानां स्वरूपज्ञानस्य शेषशेषित्वज्ञानस्यापेक्षितत्वात् । तवापि पक्षेकृत्स्नस्य नाम्नः परमात्मपरत्वबोधकवाक्यविरोध इति न ।**

रूपसे स्थित रेफ (रां) में आश्रित अकार का वाच्यत्व कहा गया है इसलिये ब्रह्मा विष्णु और शङ्कर का रेफ वाच्य श्रीरामजी का आश्रित होना समझा जाता है। और ब्रह्मा विष्णु तथा शिव का परमात्मा से उत्पत्ति शास्त्रों में सुने जाने से और परब्रह्म सर्वेश्वर की आज्ञा का परिपालक होने से भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का शेषत्व प्रतीत होता है और श्रीमान् भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का सभी का शेषित्व ज्ञात होता है क्योंकि ये सभी रेफ पर आरूढ अर्थात् आश्रित हैं। वही कहा गया है रेफ अर्थात् र वर्ण उस पर आरूढ अर्थात् रेफ से आश्लिष्ट हैं। जिस तरह वृक्ष पर आरूढ बन्दर वृक्ष पर आश्रित रहता है उसीप्रकार मूर्तियां ब्रह्मा विष्णु और महेश ये तीन मात्रायें है दो अकार और मकार इन सभी से सम्मिलित 'रां' बीज है यह समझना चाहिये। उन ब्रह्मा विष्णु एवं महेश का शेषित्व निषेध के लिये ही रेफारूढ है यह कहा गया है। यद्यपि 'राम' बीज में स्थित इतना कहने से ही श्रीरामचन्द्रजी का शेषित्व एवं इन सभी का शेषत्व सिद्ध हो जाता तथाऽपि रेफारूढ यह भेद करके कहा गया है। यह सव वीज स्वरूप का बोध कराने के लिये है यह प्रतीत होता है।

बीज का अवयव अकार आदि का प्रतिपाद्य अर्थ ब्रह्मा आदि का संसार की रचना आदि का अबलम्बन करके उन सभी का बहुत्व होने से शेषित्व की सिद्धि नहीं होने से रेफ का प्रतिपाद्य एक मात्र श्रीरामचन्द्रजी का ब्रह्मा आदि का आश्रय दातृत्व समझा जाता है। इन वातों से भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का विना किसी उपाधि के शेषित्व बोधन अच्छी तरह से सिद्ध होता है।

यद्यपि रेफ पर आरूढ तीन देवतायें एवं तीन शक्तियां इस वचन में बीज रूप बोधन के लिये हैं यह कथन समुचित नहीं है। तीन शक्ति पद का एवं मूर्ति पद का निरर्थकत्व होने लग जायगा। और इस प्रकार 'सीतारामौ तन्मयावत्र पूज्यौ' इस वाक्य

'अकाराक्षरसम्भूतो सौमित्रिविश्वभावनः' । 'ओमित्येतदक्षरं सर्वमिति रामतापनीये, ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म' इतिगीतायाम् । एवमादिषु प्रणवाव यवाकारादीनामनेकार्थश्रवण इव श्रीरामनामावयवानामप्यनेकार्थवाचकत्व श्रवणात् । सर्वरूपिणोब्रह्मणः सर्वशब्दवाच्यत्वेऽपि मुख्यभूतस्य तस्य 'सर्व वाच्यस्य वाचक' इत्यत्र सर्वशब्दकारणश्रीरामनाम्नः मुख्यवाच्यत्वश्रवणात् । सर्वाक्षरकारणश्रीरामनामाक्षराणां सर्वार्थवाचकत्वेऽपि मुख्यशक्त्या सच्चिदा-

में तत् शब्द के द्वारा ज्ञात कराया गया पूर्व में परामर्श किया गया सम्पूर्ण ही मन्त्र श्रीराम रूप अर्थ का बोधक है न कि केवल रेफ श्रीराम अर्थ का बोधक है। इस कथन से रेफारूढ इस पद के साथ विरोध होता है। बीज में स्थित मकार विवरण में जीव वाचक आगामी श्रुति वचन के साथ विरोध होते भी यहां पर देखा जाता है। मन्त्र का अर्थ प्रतिपादन प्रसङ्ग में बीज के प्रत्येक अक्षर का प्रतिपाद्य अर्थों का स्वरूप ज्ञान का ज्ञान शेष शेषित्व भाव का ज्ञान अपेक्षित होने से रेफ मात्र का 'श्रीराम' अर्थ ज्ञात होता है। और आपके भी पक्ष में समग्र नाम का परमात्म बोधन परत्व बोधक वाक्य के साथ विरोध होता है ऐसा नहीं है।

अकार अक्षर से उत्पन्न सुमित्रा तनय विश्व भावन लक्ष्मणजी हैं। ॐकार यह अक्षर ही सवकुछ है यह विषय श्रीरामतापनीय उपनिषद् में और ओम् यह एक अक्षर ही ब्रह्म है यह भगवद् गीता में कहा गया है। उपनिषद् गीता आदि ग्रन्थों में प्रणव के अवयव अकार आदि का भी अनेक अर्थ प्रतिपादकत्व जैसे सुना जाता है उसीप्रकार 'राम' मन्त्र के अवयवों का भी अनेक अर्थों का वाचकत्व सुने जाने के कारण प्रत्येक अक्षर के अर्थ होने में वाचकत्व सुने जाने से कोई दोष नहीं है, संसार के समस्त जडचेतन के रूपी ब्रह्म का सभी शब्दों से प्रतिपाद्य होने पर भी उन सभी में प्रधान नाम श्रीरामचन्द्रजी का सर्व वाच्य का वाचक है इस कथन में सभी के कारण श्रीराम नाम का मुख्य वाचकत्व सुने जाने से अर्थात् सभी 'राम' नाम से प्रतिपाद्य हैं यह सुने जाने से सभी अक्षरों के कारण श्रीराम नाम के अक्षरों का सभी अर्थों का वाचकत्व होने पर भी प्रधान शक्ति से सच्चिदानन्दानन्द अर्थ वाला सम्पूर्ण परब्रह्म का वाचकत्व सिद्ध होता है यही कहा गया है। जहां पर 'राम' नाम का अवयव बना हुआ अकार मकार सत् एवं आनन्द अर्थ का वाचक है और रकार चित् अर्थ का वाचक है। वहां पर तीनों ही 'राम' नाम के अक्षरों का सच्चिदानन्दार्थ ब्रह्म परक

**नन्दसम्पूर्णपरब्रह्मवाचकत्वम् सिद्ध्यति । तदुक्तम्-यत्र नामावयवभूता कारमकारौ सदानन्दवाचकौ रकारश्चिद् वाचकः, तत्र त्रयाणामपि श्रीरामनामाक्षराणां सच्चिदानन्दब्रह्मपरत्वात् कृत्स्नस्य नाम्नो ब्रह्मपरत्वमुपास्यत्वं ज्ञेयत्वञ्च श्रूयते । 'रमन्ते योगिनः' 'ब्रह्मात्मकसच्चिदानन्दाख्या' इत्युपासितव्यम् । तदेवोपास्यं ज्ञेयं च । सच्चिदानन्दार्थकत्वेनोपास्यत्वं, शेषशेषिसम्बन्धबोधकत्वेन ज्ञेयत्वम्, इत्थं रेफस्य ब्रह्मपरत्वमकारादीनां ब्रह्मादिपराणां सृष्ट्यादीनां च आश्रयत्वसम्बन्धेन शेषत्वं ज्ञापयन्ति रेफारूढावर्णाः । तदित्थं श्रीरामपदस्य द्विविधार्थवाचकत्वमर्थान्तराणां च वाचकत्वं श्रूयते । रघुकुलेऽखिलं रातीत्याद्यासूपनिषत्सु बह्वर्थवाचकत्वं महारामायणादौ च श्रूयते । अतः श्रीरामः शेषी ब्रह्मादयश्च शेषाः । अतोमूर्तयो ब्रह्माद्याः शक्तयश्च रेफाधेयभूताः सन्ति । तन्न्यूनत्वे सति तज्जन्यत्वात् ।**

होने से समग्र श्रीराम नामक ब्रह्मपरत्व एवं उपासनीयत्व तथा ज्ञेयत्व शास्त्रों में सुना जाता है। 'रमन्ते योगिनो यस्मिन्' 'ब्रह्मात्मकसच्चिदानन्दाख्या इत्युपासितव्यम्' वही उपास्य एवं जानने योग्य है। सत् चित् और आनन्दार्थक होने से उपासना करने योग्य है। और शेष शेषी स्वरूप सम्बन्ध का बोधक होने से जानने योग्य है। इसप्रकार श्रीराम मन्त्र के रेफ का ब्रह्म परत्व तथा अकार आदि अक्षरों का ब्रह्मा विष्णु आदि बोधन परत्व का और सृष्टि पालन आदि का आश्रयत्व सम्बन्ध से शेषत्व का ज्ञान कराते हैं श्रीराम मन्त्र के रेफ पर आरूढ अक्षर। तो इस तरह 'राम' पद का दो तरह से अर्थ का वाचकत्व तथा अन्यान्य अर्थों का वाचकत्व उपनिषद् आदि ग्रन्थों में सुना जाता है। 'रघुकुलेऽखिलं राति' इत्यादि उपनिषद् वचनों में बहुत अर्थों का वाचकत्व सुना जाता है। और महारामायण आदि इतिहास पुराण ग्रन्थों में भी बहुत अर्थों का वाचकत्व सुना जाता है। इसलिये भगवान् श्रीरामचन्द्रजी शेषी हैं, तथा ब्रह्मा विष्णु आदि समस्त जडचेतनात्मक संसार भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के शेष स्वरूप में विद्यमान हैं। इसलिए प्रकृत ऋचा में 'मूर्तयः' यह कहने से ब्रह्मा आदि देवता एवं विमला आदि शक्तियां यह अर्थ सभी रेफ अक्षर के आधेय स्वरूप हैं। क्योंकि ये सभी ब्रह्मा से आरम्भ कर समस्त जडचेतनात्मक संसार भगवान् श्रीरामचन्द्रजी से न्यून होते हुए श्रीरामचन्द्रजी से जन्य हैं इसलिये शेष हैं।

रकार से ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं, रकार से श्रीहरि अर्थात् विष्णु उत्पन्न होते हैं।

रकाराज्जायते ब्रह्मा रकाराज्जायते हरिः ।
रकाराज्जायते शम्भुः रकारात् सर्वशक्तयः ॥ इत्युक्तेः ।

रेफात् ब्रह्माद्युत्पत्तिः सम्पूर्णस्य जगत उत्पत्तिं लक्षयति । 'मितेरपीतेर्वेति माण्डूक्यवचनेनाकारोकारयोर्मकारेलयश्रुतेः ।

किञ्चात्ररेफः श्रीरामब्रह्मपरः, तमारूढा अकारादयो ब्रह्मादिविष्ण्वादि वाचकाः तेन षडक्षरस्य तत्तद्वाचकत्वोपपत्तिः । 'इतिरामपदेनासौ परब्रह्मा भिधीयते, ब्रह्मादीनां वाचकोऽयमित्यादयः श्रुतयः संगच्छन्ते । वाच्याब्रह्मादयो रेफवाच्यस्य श्रीरामस्याश्रितत्वेन तच्छेषभूता इत्युपपन्नम् । अत्रेति शब्दोद्विती योपनिषत् समाप्त्यर्थः ॥२-३॥

और रकार से भगवान् शङ्कर उत्पन्न हैं और रकार से विमला आदि सभी शक्तियां उत्पन्न होती हैं, इत्यादि कहे जाने से सभी रेफ वाच्य श्रीरामचन्द्रजी के शेष हैं। रेफ से ब्रह्मा आदि देवताओं की उत्पत्ति और समस्त संसार की उत्पत्ति को इङ्गित करता है। 'मिते रपीते वा' इस माण्डूक्योपनिषद् के वचनानुसार यहां पर अर्थात् श्रीराम मन्त्राक्षर में अकार उकार का मकार में विलय सुने जाने से सर्वाश्रयत्व सर्वोपास्यत्व आदि विदित होता है ।

और भी इस श्रीराम मन्त्राक्षर में अवयवभूत अक्षरों में से रेफ अक्षर भगवान् श्रीरामचन्द्रार्थ बोधन परक है। इस रेफ अक्षर पर आरूढ अकार आदि अक्षर ब्रह्मा विष्णु आदि अर्थों का वाचक है। इससे सिद्ध होता है कि-छ अक्षरों वाला ब्रह्म तारक श्रीराम मन्त्र का परब्रह्म से लेकर उन जडचेतनात्मक जगत् सहित ब्रह्मा विष्णु आदि देवताओं का वाचकत्व तर्कसंगत होता है । 'इति रामपदेनासौ परब्रह्माभिधीयते' इसलिये 'राम' पद से परब्रह्म अर्थ कहा जाता है और ब्रह्मा आदि का यह वाचक इत्यादि श्रुति वचन युक्ति संगत होता है। समस्त प्रतिपाद्य भूत अर्थ कलाप ब्रह्मा आदि रेफ शब्द से प्रतिपाद्य भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का आश्रित होने के कारण सभी श्रीरामचन्द्रजी के शेष स्वरूप हैं। यह अभिप्राय युक्ति संगत सिद्ध होता है। इस मन्त्र में इति शब्द श्रीरामतापनीय के द्वितीय उपनिषत् के पूर्णता अर्थ सूचक है ॥२-३॥

प्रथमोपनिषदुक्तस्य श्रीराममन्त्रजपस्य, मन्त्रार्थज्ञानमन्तरावीर्यहीनत्वात्, त्रिपदस्य श्रीराममन्त्रस्य द्वितीयोनिषदि 'रां' बीजं व्याख्यातम् । मन्त्रतत्त्वविद्भिः मन्त्रस्यास्य त्रिविध अन्वयः प्रदर्शितः । प्रथमान्वये जीवस्वरूपम् । द्वितीये

उपायस्वरूपम्, तृतीयेचोपेयस्वरूपं शोधितम् । प्रथमान्वयेन जीवस्य श्रीराम शेषत्वस्वरूपं ज्ञायते । तत्रोपायस्वरूपज्ञानाय तृतीयोपनिषत् प्रारभ्यते । तत्र वाच्यवाचकयोः श्रीरामरेफयोस्तादात्म्यसम्बन्धः । स च सर्वकारणस्य रेफस्य तादात्म्यसम्बन्धेन श्रीरामस्य वाचकत्वम् कथं सम्भवतीतिबोधनाय श्रीसीताराम योरभेदस्तेन च चतुर्दशभुवनानामुत्पत्त्यादिकमित्याह सीतारामाविति-

**सीतारामौ तन्मयावत्र पूज्यौ, जातान्याभ्यां भुवनानि द्विसप्त ।**
**स्थितानि च प्रहृतान्येव तेषु ततो रामो मानवो मायया धात् ॥१॥**

इस श्रीराम मन्त्र के वीज भाग 'रां' इस भाग में तादात्म्य भाव से स्थित श्रीसीताराम तत्त्व मुमुक्षुजनों के द्वारा पूजनीय एवं जानने योग्य है। इन श्रीसीतारामजी के द्वारा सात नीचे और सात ऊपर कुल चौदह भुवन उत्पन्न हुए हैं, इन के द्वारा संरक्षित है तथा इनके द्वारा संहार किया जाता है। इसके वाद भगवान् श्रीरामचन्द्रजी इन भुवनों में समाविष्ट हो गये, अपने आप को व्यापक रूपसे चराचर में प्रविष्ट कर दिये। अन्तर्यामी क़े स्वरूप में सर्वत्र विद्यमान हैं। अपनी प्रभा से अव्याहत प्रवेश वाले श्रीरामचन्द्रजी स्वभाव से ही दो भुजाओं एवं कुण्डल आदि धारण करनेवाले मानव रूप में स्वयं को स्थापित किये ॥१॥

(अस्मिन् श्रीरामबीजे तादात्म्यापन्नौ श्रीसीतारामौ पूजनीयौ ज्ञेयौ च। आभ्यां श्रीसीतारामाभ्यां चतुर्दशभुवनानि उत्पन्नानि पालितानि संहृतानि च, ततः श्रीरामः स्वात्मानं तत्र प्रावेश यत्। अन्तर्यामितया स्थितः प्रभया अकुण्ठितप्रवेशः स्वभावतः द्विभुजः कुण्डली श्रीरामः स्वात्मानं स्थापयामास ॥१॥)

**अत्र श्रीराममन्त्रवीजे तन्मयौ रेफतादात्म्यापन्नौ श्रीसीतारामौ पूज्यौ-ज्ञेयौ, धातूनामनेकार्थत्वादत्र पूजधातुर्ज्ञानार्थः । अस्यार्चनायाग्रेवक्ष्यमाणत्वात् । तत् शब्दस्य बुद्धिस्थपदार्थपरामर्शकतया 'रेफारूढामूर्तयः' इत्यर्थः । तत्र रेफे ब्रह्म विष्णुरुद्ररूपा अकारद्वयं मकारश्चेति त्रयोवर्णाः तैः समुदितं वीजमिति केचित्**

प्रथम उपनिषद् में कहा गया ब्रह्मतारक षडक्षर श्रीराम मन्त्र का विना अर्थ समझे मन्त्र जप की शक्ति हीनता होने से मन्त्रार्थ ज्ञान परम आवश्यक है। इसलिये तीन पदो वाला श्रीराम मन्त्र के 'रां' इस वीज मन्त्र की द्वितीय उपनिषद् में व्याख्या की गयी है। मन्त्रार्थ के रहस्य तत्त्व विज्ञानी विद्वानों के द्वारा प्रासङ्गिक इस श्रीराम

कथयन्ति । अत्रोच्यते रेफवर्जितस्याकारादीनां बीजत्वमुतरेफसहितस्य । आधेय वीजात्मकौ सीतारामावित्युक्ते रेफस्य वाच्यो वक्तव्यः । रेफवाच्यं निर्गुणं ब्रह्म वर्तते चेत् 'स्वभूः ज्योतिर्मयः' इति 'स्वेनैवभासते' इति अन्यस्य निषेधात् । 'इतिरामपदेनासौ परब्रह्माभिधीयते' इतिपरब्रह्मत्वोक्तेः । सत्यंज्ञानमनन्तं ब्रह्मेति समानार्थकत्वाच्च । 'ज्ञः कालकालो सगुणोनिर्गुणश्च' 'एष आत्मा अपहतपाप्मा वीजरो विमृत्युः विशोकोविजिघित्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसङ्कल्पः' इति अपाप्मत्वादिना हेयगुणान्निषिध्य, सत्यकामत्वादिभिः दिव्यगुणान् प्रतिष्ठापयति । तेनैकस्यैव निर्गुणत्वं सगुणत्वञ्चोक्तम्भवति "तादृशदिव्यगुणानाञ्च 'परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकीज्ञानबलक्रिया च' इत्यादौ स्वाभाविकत्वा भिधानात्प्राकृतहेयगुणरहितत्वेन निर्गुणत्वं दिव्यगुणवत्वेन च सगुणत्वमित्युभय थैकस्यैव ब्रह्मणोनिर्देशः" इत्यानन्दभाष्यकारोक्तेः । परास्यशक्तिर्विविधैवश्रूयते, स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रियाचेतिश्रुत्याज्ञानादयस्तस्य परब्रह्मणः स्वाभाविका गुणा उच्यन्ते ।

मन्त्र का तीनप्रकार से अन्वय प्रदर्शित किया गया है। इन अन्वयों में से प्रथम अन्वय में जीव स्वरूप का निरूपण किया गया है। द्वितीय अन्वय में जीवों को सांसारिक जन्म मृत्यु बन्धन परम्परा से मुक्त होने के लिये उपाय स्वरूप का विवेचन किया गया है। तथा तृतीय अन्वय में उपेय स्वरूप का शोधन किया गया है। प्रथम अन्वय के माध्यम से जीवात्माओं का भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का शेषत्व स्वरूप समझा जाता है। अर्थात् ब्रह्मा विष्णु आदि से आरम्भ कर समस्त चराचर जगत् भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का शेष स्वरूप है एवं भगवान् श्रीरामजी शेषी हैं यह अभिप्राय विशेष रूपसे समझा जाता है। इस स्थिति में उपाय स्वरूप का ज्ञान कराने के लिये तृतीय उपनिषद् का प्रारम्भ किया जाता है। श्रीराम मन्त्र के बीज 'रां' इस में रेफ अ अ एवं म ये अक्षर है, वीजाक्षर विद्या के अनुसार रेफ अंश का प्रतिपाद्य अर्थ श्रीरामजी हैं। श्रीरामजी एवं श्रीसीताजी दोनों अभिन्न स्वरूप हैं। श्रीराम अर्थ का वाचक रेफ है। वाच्य और वाचक में परस्पर तादात्म्य सम्बन्ध है। जैसे शब्द शक्तियों के द्वारा शब्द और अर्थ को व्यावहारिक रूपसे भेद दिखाई देने पर भी परमार्थ में दोनों अभिन्न ही हैं। और यह वाच्य वाचकभाव चतुरानन ब्रह्मा से आरम्भ कर समस्त चराचर के कारण स्वरूप रेफ का तादात्म्य सम्बन्ध के द्वारा भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का वाचकत्व युक्त किस तरह होता है, इस विषय का बोध कराने के लिये

**द्वितीयपक्षे आधारधेयभूतानां रेफाकारादीनां परब्रह्मचतुराननादीनां वाचकानां केवलश्रीसीतारामवाचकतोक्तौ रेफः परब्रह्मपरः प्रथमोऽकारः ब्रह्म रूपः द्वितीयो विष्णुरूपः मकारो रुद्ररूप इतिशेषकोटिप्रविष्टानां शेषिवाचकत्वा सम्भवात् । स्ववचनविरोधाच्च ।**

**'विश्वरूपस्य ते राम विश्वे शब्दा हि वाचकाः' इति । अत्रापि बोधस्तु न सम्भवति, तत्र शरीरवाचकानां शरीरिणिपर्यवसान इव चराचरवाचकानां परम्परया श्रीरामेपर्यवसानं स्वीक्रियते । राजपुरुषवाक्यवत् शब्दतः पुरुषप्रधानमप्यर्थतः राज्ञ एव प्राधान्यं बोधयति । तथा 'रेफारूढाः' इत्यत्र शब्दतः ब्रह्मादि प्रधानमप्यर्थतः परब्रह्म एवेति न वक्तव्यम् । तत्रार्थतः परब्रह्मत्वं सूचयन्नपि वाचकत्वेन ब्रह्मादिपरत्वादभिमतार्थबोधहानिरेव राजपुरुषमानयेत्युक्तौ नहि कश्चित् पुरुषं राजानमानयति । तेन भृत्यस्यैव वाचकत्वं बुध्यते ।**

निरूपण करते हैं कि श्रीसीतारामजी में वस्तुतः अभेद है। और श्रीसीतारामजी से ही चौदहों भुवनों की उत्पत्ति हुई है। उन्हीं से पालनादि होता है इस वस्तु का प्रतिपादन करने के लिये मन्त्र का आरम्भ करते हैं 'सीतारामौ' इत्यादि से।

इस श्रीराम मन्त्र के वीज भाग में स्थित रेफ के साथ तादात्म्य भाव में स्थित अभेद स्वरूप में स्थित 'सीताराम' को जानना चाहिये। यद्यपि पूज धातु का अर्थ अर्चना होता है। किन्तु धातुओं का अनेक अर्थ होता है इस नियम के अनुसार पूज का अर्थ यहां पर ज्ञान समझना चाहिये, क्योंकि रेफ की अर्चना के लिये आगे कहा जाने वाला है, और तत् शब्द जो तन्मय का अवयव है, उसकी बुद्धि में स्थित पदार्थ में शक्ति होने से 'रेफारूढामूर्तयः' आदि के द्वारा पूर्व में रेफ का निरूपण किया गया है, इसलिये रेफ के साथ तादात्म्य भाव प्राप्त यह अर्थ है। उस रेफ में ब्रह्मा विष्णु और रुद्र के स्वरूप में दो अकार एवं मकार है जिनके सम्मिलन से 'रां' यह स्वरूप बनता है। अतः रेफ में दो अकार एवं मकार आरूढ ये तीन वर्ण हैं, उनसे मिला जुला मन्त्र वीज है। इसप्रकार कुछ लोग विवेचन करते हैं। इस विषय में कहा जाता है कि-रेफ से रहित अकार उकार और मकार का वीजत्व है। अथवा रेफ के सहित अकारादि का वीजत्व है। यह दो तरह का प्रश्न उठता है। यदि कहें कि रेफ में आधेय स्वरूपतया अकारादि रूपमें स्थित श्रीसीतारामजी ज्ञेय हैं तो रेफ का स्वतन्त्र रूपसे 'सीताराम' से भिन्न अर्थ कहा जाना चाहिये। जो उसका वाच्यार्थ हो। यदि

इत्थं चतुराननादिवाचकत्वमेव सिद्ध्यति नतु परब्रह्मवाचकत्वम् । 'रेफारूढामूर्तयः' उपासनीया इतिबोधेऽपि रेफ उपासनीय इति न बुध्यते । तत्पुरुषसमासे परपदस्य प्राधान्यात् । तेन रेफारूढामूर्तयोवीजं स्युरित्यध्याहारो निरर्थकः । तथा च रेफस्य परब्रह्मवाचकत्वेनाकारादीनाञ्च चतुर्मुखादिवाचकत्वेन 'सीतारामौ तन्मयावित्यादीनां संगतिः । पूज्यत्वेन ज्ञेयत्वं रेफमयत्वेनैव ज्ञेयत्वं रेफस्यैव सर्वजगदाश्रयत्वं, रेफादेव ब्रह्मादीनां उत्पत्तिवर्णनाच्च । रकारे एव वेदादारभ्य सर्वस्य चराचरस्य स्थितिस्मरणाच्च । सर्वस्यमन्त्रस्य श्रीरामवाच कत्वेतु तच्छेषभूतानां वाचकत्वं न स्यात् । मन्त्रान्तर्गतस्य 'नमः' पदस्य जीववा चकत्वेन विवरणदर्शनात् । अकारादीनां ब्रह्मादिवाचकत्वम्, तेषामाश्रयत्वेन रेफस्य विवरणात् । तेन बीजविवरणयोः समानार्थकत्वम् । ब्रह्मादीनाञ्च श्रीराम कहें कि रेफ का वाच्य निर्गुण ब्रह्म है, तो यह कहना समुचित नहीं । क्योंकि 'स्वभूः ज्योतिर्मयः' इत्यादि के द्वारा जो स्वतः प्रकाश है । वहां अन्य के प्रकाश का निषेध किये जाने से, इसप्रकार 'राम' पद से परब्रह्म कहे जाते हैं । इस से 'राम' में परब्रह्मत्व कहे जाने से सगुण ब्रह्मत्व 'राम' में है । और इनका सत्य ज्ञान एवं आनन्द स्वरूप वाला ब्रह्म है इस श्रुति वचन के समानार्थक होने से भी सगुणत्व है । ज्ञान स्वरूप काल का काल जो सगुण एवं निर्गुण है, यह आत्मा है, जो सर्वथा पाप विहीन है। जिसका रेफ वीज है, जो शोक विहीन एवं अमर है । जो विशिष्ट प्रकार से जानने योग्य है, जो प्यास से रहित है । जिनकी कामना सत्य है एवं सङ्कल्प सत्य है इत्यादि कथन के द्वारा उपनिषद् में अपाप्मा अपिवासः आदि के द्वारा निन्दनीय गुणों का निषेध करके सत्य कामत्व आदि के द्वारा दिव्य गुणों की प्रतिष्ठापना परब्रह्म में की गयी है। इन प्रमाणों से एक ही परब्रह्म में निर्गुणत्व एवं सगुणत्व दोनों ही निरूपित होता है इसका ब्रह्मसूत्रानन्दभाष्य १/१/३ में विशेष विवेचन है अतः इसे वहीं मेरी प्रकाश टीका में देखें । इस परमात्मा की विविध प्रकार की पराशक्ति सुनी जाती है और स्वाभाविक रूपसे ज्ञान बल एवं क्रिया है । इत्यादि श्रुति वचनों के द्वारा उस परब्रह्म का ज्ञान आदि स्वाभाविक गुण कहे जाते हैं ।

द्वितीय पक्ष में आधार आधेय बने हुए रेफ एवं अकार आदि का जो रेफ द्वारा परब्रह्म एवं अकार आदि के द्वारा चतुर्मुख ब्रह्मा आदि के वाचक वर्णों का, केवल 'सीताराम' का ही वाचक है, ऐसा कहे जाने पर, रेफवर्ण परब्रह्म अर्थ बोधन परक

**शेषत्वम् । शेषभूतानां कैङ्कर्यलक्षणः सम्बन्धः सिद्ध्यति । अत्र मन्त्रे रेफे अकारः आकारः मकारश्च पृथक् पृथक् पदानि तेषु छान्दसत्वाद् विभक्तिलोपः । रेफारूढा इतिरेफाधारकथनाद् । रेफस्याकारादीनाञ्चाधाराधेयभावसम्बन्धः । रेफस्य वाचकत्वम् श्रीसीतारामयोः वाच्यत्वम् तयोः तादात्म्यसम्बन्धः । रेफस्यैव सर्वकारणत्वम् । श्रीसीतारामयोः जगत्कारणत्वं निरूपयन्नाह-जातान्याभ्यां भुवनानि द्विसप्त इति । अधस्तनानि भुवनानि सप्त उपरितनानि च सप्त, सङ्कलनेन चतुर्दश, अत्र आभ्यामित्यस्य विभक्तिविपरिणामाननयोः इति, अनयोचतुर्दश** है । प्रथम अकार चतुर्मुख ब्रह्मा का वाचक है, द्वितीय अकार विष्णु वाचक है एवं मकार रुद्र स्वरूप वाचक है । इसप्रकार जो भगवान् श्रीरामचन्द्रजी शेष कोटि में प्रविष्ट हैं । उनका शेषित्व वाचक होना सर्वथा असम्भव होने से द्वितीय पक्ष में अपने कथन का विरोध होने से सङ्गत नहीं होता है ।

समस्त संसार ही जिनका स्वरूप है ऐसे हे श्रीराम ? आपका संसार के सभी शब्द वाचक हैं । इस तरह का यहां पर भी बोध होना सम्भव नहीं है । वहां पर शरीर वाचक शब्दों जिस तरह शरीरी में पूर्णता होती है उसी तरह चराचर वाचक शब्दों का परम्परा सम्बन्ध से श्रीरामचन्द्रजी में पूर्णता स्वीकार की जाती है । जिस तरह 'राजपुरुषः गच्छति' इस वाक्य में शब्द की दृष्टि से पुरुष प्रधान है तथाऽपि अर्थ की दृष्टि से राजा अर्थ की प्रधानता का बोध कराता है, उसीप्रकार 'रेफारूढा' इस वाक्य में भी शब्दतः चतुरानन ब्रह्मा आदि अर्थ की प्रधानता है यह भी नहीं कहना चाहिये । क्योंकि उस वाक्य में अर्थ की दृष्टि से परब्रह्मत्व को सूचित करते हुए भी वाचकता के द्वारा चतुराननादि ब्रह्मा अर्थ बोधन परत्व होने से अभीष्ट अर्थ बोध की हानी तो होती ही है । यदि कोई व्यक्ति कहता कि राजपुरुष को लाओ तो ऐसा कहने पर कोई भी व्यक्ति पुरुष राजा को नहीं लाता है । अपितु उस वाक्य को सुनने पर राजकीय भृत्य (सेवक) का ही आनयन होता है । इसलिये राजपुरुष शब्द से भृत्य अर्थ की ही वाचकता है यह समझा जाता है ।

इसप्रकार रेफारूढा से चतुरानन ब्रह्मा आदि का वाचकत्व ही सिद्ध होता है । नकि परब्रह्म वाचकत्व सिद्ध होता है । रेफारूढ मूर्तियों की उपासना करनी चाहिये यह अर्थ समझे जाने पर भी-रेफ उपासनीय है यह अर्थ नहीं समझा जाता है । क्योंकि तत् पुरुष समास में परपद की प्रधानता होने से पूर्व पदार्थ की अमुख्यता ही ज्ञात होती है । इसलिये

भुवनानिस्थितानि, अथवा आभ्यां पालितानि, आभ्याञ्च प्रहृतानि विनाशितानि । तेषु 'रामः अनन्तमात्मानमधात् प्रावेशयत् । तत् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशदितिश्रुतेः । सर्वान्तर्यामितया सर्वनियन्तृतया च आकाशाधारेरचितेषु घटेषु यथा आकाशस्य पूर्वमेवप्रवेशः, तथा सर्वाधारे श्रीरामेरचितेषु चतुर्दशभुवनेषु श्रीरामस्य पूर्वमेव प्रवेशः । अन्तः प्रविष्टः शास्ताजनानामिति नियमनमन्तः प्रविष्टस्यैव । तेन श्रीरामस्य चराचरान्तर्यामित्वं निरूपितम् ।

रेफ पर आरूढ मूर्तियां वीज हैं इसप्रकार का अध्याहार करना निरर्थक है। और इसप्रकार रेफ का परब्रह्म वाचकत्व होने के कारण और अकार आदि का चतुरानन ब्रह्मा आदि का वाचक होने से 'सीतारामौ तन्मयावत्र पूज्यौ' इत्यादि की संगति होती है । यहां पर पूज्यत्वेन ज्ञेयत्व और रेफमय होने से ही ज्ञेयत्व बोध होता है। रेफ का ही समस्त जगत् का आश्रयत्व है। रेफ से ही ब्रह्म आदि की उत्पत्ति का निरूपण किये जाने से समस्त जगत् का आश्रयत्व है। रकार में ही वेद से आरम्भ कर समस्त चराचर जगत् की स्थिति स्मृतियों में बताया गया है । सम्पूर्ण मन्त्र की यदि श्रीरामचन्द्र वाचकता होगी तो श्रीरामचन्द्रजी के शेष बने हुए ब्रह्मा आदि का वाचकत्व नहीं हो सकेगा । मन्त्र के अन्त भाग में वर्तमान नमः पद का जीव अर्थ वाचक होने का विवरण देखे जाने से अकार आदि का चतुर्मुख ब्रह्मा आदि का वाचकत्व है। और उन ब्रह्मा आदि का आश्रय के रूपमें रेफ का विवरण देखे जाने से यह सिद्ध होता है। वीज और विवरण का समान अर्थ वाचकत्व होना चाहिये। और ब्रह्मा आदि का श्रीरामचन्द्रजी का शेषत्व है। और श्रीरामचन्द्रजी के शेष रूपमें वर्तमान ब्रह्मा आदि समस्त जगत् का श्रीरामजी के साथ कैङ्कर्य स्वरूप सम्बन्ध सिद्ध होता है।

इस षडक्षर श्रीराम मन्त्र में रेफ में अकार आकार और मकार अलग अलग पद हैं। इन पदों में विद्यमान विभक्तियों का वैदिक होने के कारण लोप हो गया है। रेफारूढा कहने से रेफ जिनका आधार है यह कथन से, रेफ और अकार आदि का आधाराधेय भाव सम्बन्ध है। रेफ का वाचकत्व है एवं श्रीसीतारामजी का वाच्यत्व है, रेफ और 'सीताराम' का तादात्म्य ससम्बन्ध है। रेफ का ही समस्त चराचर जगत् का कारणत्व है। इसप्रकार 'सीताराम' का सर्व जगत् कारणत्व निरूपण करते हुए कहा है कि इनसे चौदह भुवन उत्पन्न हुए हैं। इन चौदह भुवनों में नीचे भाग में होनेवाले अतल वितल सुतल रसातल आदि सात लोग तथा ऊपर होनेवाले भूः भुवः स्वः आदि सात लोक दो सातों को जोड़ने

**घटान्तः प्रविष्टदीप इव जडान्तः प्रविष्टस्य श्रीरामस्य जगत्प्रकाशकत्वं कथमित्याशङ्कानिराशायाहमानव इति-मा प्रभा तया नवः नूतनः अव्याहतप्रकाश शक्तिमानित्यर्थः । अथवा अमाययास्वभावतः मानवः मनुष्याकृतिः । द्विभुजः कुण्डली इत्याद्यग्रेवक्ष्यमाणत्वात् । इत्थं मन्त्रे श्रीरामचन्द्रस्य जगत् सृष्टिस्थिति संहारकर्तृत्वेन स्वामित्वमन्तःप्रवेशेन च सर्वासुक्रियासु प्रवर्तकत्वम् । तेन श्रीरामस्य जगत् प्राणत्वं जगच्छरीरित्वं जगदाधारत्वञ्च निरूपितं भवति ॥१॥**

पर चौदह भुवन होते हैं। इस ऋचा में कथित आभ्याम् का विभक्ति विपरिणाम के द्वारा अनयोः इस रूपमें परिवर्तन हो जाता है । इसप्रकार इन 'सीताराम' में चौदहों भुवन विद्यमान हैं। अथवा इन 'सीताराम' के द्वारा चौदहों भुवन उपसंहृत होते हैं। अर्थात् इन्हीं के द्वारा विनष्ट किये जाते हैं। इन चौदह भुवनों में सर्वेश्वर श्रीरामजी अगणित स्वरूपों में स्वयं को स्थापित किये। अर्थात् प्रविष्ट किये, उसकी रचना करके स्वयं उनमें प्रवेश कर गये । इस श्रुति वचन के अनुसार सभी का अन्तर्यामी के स्वरूप में और सभी का नियामक के रूपमें जैसे आकाश के आधार पर बनाये गये घट में आकाश का पहले से ही प्रवेश होता है, उसी प्रकार सभी के आधार भगवान् श्रीरामचन्द्रजी में विरचित किये गये चौदह भुवनों में श्रीरामचन्द्रजी का पूर्व में ही प्रवेश है। अन्दर में प्रविष्ट होकर प्राणियों का शासन करने वाला। इस श्रुति वचनानुसार अन्तः प्रविष्ट का ही नियमन कर्तृत्व होता है। इन वचनों के आधार पर श्रीरामचन्द्रजी का चराचर का अन्तर्यामित्व प्रतिपादित होता है ।

जैसे घडा के अन्दर प्रविष्ट दीपक बाह्य जगत् का प्रकाशक नहीं होता है। उसी प्रकार जडके अन्दर प्रविष्ट श्रीरामचन्द्रजी का संसार का प्रकाशकत्व किस तरह सम्भव होगा ऐसा सन्देह होने पर सन्देह का निवारण करने के लिये कहते हैं 'मानवः' मा का अर्थ प्रभा है उसप्रभा से नित नवीन अर्थात् अव्याहत प्रकाश शक्तिमान् अथवा विना किसी छल कपट के मनुष्याकृतिमान् दो भुजाओं वाले कुण्डल आदि आभूषणों को धारण करने वाले इत्यादि आगे कहा जाने वाला है । इसप्रकार मन्त्र में श्रीरामचन्द्रजी का संसार की सृष्टि स्थिति और संहार आदि का कर्ता होने से स्वामित्व निरूपित होता है, एवं अन्तः प्रवेश से समस्त चराचर प्राणियों के सभी क्रियाओं में प्रवर्तकत्व प्रतिपादित होता है। इससे श्रीरामचन्द्रजी का समस्त संसार का प्राणत्व एवं जगत् शरीरित्व होने से सर्वेश्वर श्रीरामजी जगदाधारत्व प्रतिपादित होते हैं ॥१॥

इत्थं वीजार्थनिरूपणेन जडचेतनात्मकस्य संसारस्य श्रीरामशेषत्वं प्रतिपाद्य द्वितीयान्वये बोध्यस्योपायनिरूपणार्थं जगत् प्राणायेत्यादिना नमसोऽर्थमाह-

जगत् प्राणायात्मने तस्मै नमः ।

स्यान्नमस्त्वैक्यं प्रवदेत् प्राक् गुणेनेति ॥२॥

स्वरक्षणोपायः स्वरक्षणप्रवृत्तिश्च 'मः' जीवात्मनो न स्यात् किन्तु जगत्प्राणस्य श्रीरामचन्द्रस्यैव, जगत्प्राणायेत्येतावन्मात्रोक्तौ वाय्वादावतिव्याप्तिः स्यात् तद्वारणायाह आत्मने इति, आत्मशब्दस्य चेतनबोधकत्वात् । अत्र षष्ठ्यर्थेचतुर्थी, जगत्प्राणस्यात्मनः श्रीरामस्यैव, द्वितीयो नमः शब्दः काकाक्षि गोलकन्यायेन वीजेन तद्विवरणेन चान्वेति, द्वितीय नमः पदं जीवपरमात्मनोरैक्यं प्रवदेत्, यथा वस्त्रादीनां गुणाः शुक्लादयः गुणगुणिनोरैक्यं गमयति तथैवानयोः । अत्र उपायस्वरूपज्ञानं चतुर्विधम् सम्बन्धज्ञानं, सम्बन्धयाथात्म्यज्ञानं सम्बन्धस्वरूपज्ञानं सम्बन्धस्वरूपयाथात्म्यज्ञानमिति भेदात् । श्रीरामस्य निरुपाधिकशेषित्वज्ञानं स्वस्य निरूपाधिकशेषत्वज्ञानं सम्बन्धज्ञानम् । श्रीरामस्य निरुपाधिकशरीरित्वं स्वस्य च शरीरत्वं इतिसम्यग् ज्ञात्वा स्थिति सम्बन्धयाथात्म्यज्ञानं, श्रीरामस्य धर्मित्वं स्वस्य च धर्मत्वं सम्यग् ज्ञात्वा स्थितिः, सम्बन्धस्वरूपज्ञानं, श्रीरामस्य स्वस्य च निरुपाधिकत्वेन धर्मिधर्मयोरैक्यज्ञानं सम्बन्धस्वरूपयाथात्म्यज्ञानम् । ऐक्यज्ञानञ्च विशेष्यविशेषणेसत्यपि स्वस्य स्वातन्त्र्येण प्रकाशनं यथा न भवतीति प्राग् गुणेनेति, जगत् प्रवेशित्वेन गुणेन जगदन्तः प्रविष्टस्य श्रीरामस्य नियामकतया शेषित्वं नियाम्यत्वाज्जगतः शेषत्वं गोगोत्ववद् धर्मिधर्मयोरभेदः । तेनैक्यं सिद्धम् । अत्र सखण्डाखण्डभेदेन नमः पदं द्विविधं, अखण्डं नमः पदं तन्त्रेणोक्तम् तत्रवीजोत्तरमास्थाय जीवोपायवाची, सखण्डञ्च मकारः जीववाची नकारो निषेधवाची, द्वितीयो जीववाची । नमः पदेन साधनान्तरत्यागः तथा 'द्रौपदीसहिताः सर्वे नमश्चक्रुः जनार्दनमित्युक्तेः शरणागतिः । गच्छध्वमेनं शरणं शरण्यमिति मार्कण्डेयवचनात् पाञ्चरात्रोक्तेश्च नमः शब्दस्य शरणपदस्थाने प्रयोगः । जीवात्मन उद्धाराय श्रीरामस्य शरणागति रेवोपाय इत्यर्थतोबोधः । इतिशब्द उपनिषत्प्रकरणसमाप्त्यर्थः ॥२॥

इसप्रकार वीजार्थ प्रतिपादन द्वारा जडचेतनात्मक संसार का सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी का शेषत्व प्रतिपादन करके द्वितीय अन्वय के द्वारा ज्ञान कराने योग्य उपाय अर्थ का प्रतिपादन करने के लिये जगत्प्राणाय इत्यादि ऋचा के द्वारा नमः पद का अर्थ प्रतिपादन करते हुए कहते हैं-

सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी का शेषस्वरूप जीव अपने संरक्षण का उपाय और अपने संरक्षण की प्रवृत्ति 'म' अर्थात् जीवात्मा का नहीं होगा। किन्तु समस्त संसार के प्राण स्वरूप भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का ही है, क्योंकि सभी का नियामक एवं प्रवर्तक श्रीरामजी ही हैं। यहां यदि केवल 'जगत्प्राणाय' ही कहेंगे तो वायु आदि में अति व्याप्ति होगी, अतः उसे रोकने के लिये 'आत्मने' कहते हैं आत्मन् शब्द का चेतन अर्थबोधक होने के कारण। इन पदों में चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग षष्ठी विभक्ति के अर्थ में किया गया है। तो इसका यह अभिप्राय प्रकट होता है कि-समस्त चराचर जगत् का प्राण स्वरूप श्रीरामचन्द्रजी का ही यह है अन्य का नहीं है। दूसरा 'नमः' पद जिस तरह कौआ के आंख में एक ही पुतली होती है लेकिन दोनों दिशाओं में जुडती है उसी नियम के अनुसार 'नमः' पद वीज के साथ एवं विवरण के साथ दोनों से समन्वित होता है द्वितीय 'नमः' पद जीवात्मा एवं परमात्मा की एकता अर्थात् अभेद अर्थ को कहता है। जिसप्रकार वस्त्र आदि द्रव्यत्व से पृथक् होते हैं किन्तु शुक्ल आदि गुण वस्त्रादि से अभिन्न स्वरूप में स्थित होते हैं। जैसे गुण और गुणी की एकरूपता को कहते हैं। उसीप्रकार इन जीव और ब्रह्म की एकता स्वरूप अभेद है। प्रस्तुत ऋचा द्वारा कराया जानेवाला उपायज्ञान चार तरह से होता है। जीवात्मा एवं परमात्मा का सम्बन्ध ज्ञान, सम्बन्ध याथात्म्य का ज्ञान, सम्बन्ध के स्वरूप का ज्ञान एवं सम्बन्ध के स्वरूप का याथात्म्य ज्ञान, इन चार भेदों से उपाय ज्ञान होता है। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का विना किसी उपाधि के शेषित्व का ज्ञान, और उपासक भक्त का विना किसी उपाधि का शेषत्व ज्ञान होना यह शेष शेषित्व भाव ज्ञान सम्बन्ध ज्ञान है। श्रीरामचन्द्रजी का निरूपाधिक शरीरी होने का ज्ञान का होना एवं उपासक का विना किसी उपाधि के शरीरत्व का ज्ञान होना इन तत्त्वों का वास्तविक ज्ञान करके स्थित का बोध होना सम्बन्ध का याथात्म्य ज्ञान है। श्रीरामचन्द्रजी का निरुपाधिक धर्मित्व ज्ञान एवं उपासक का रूपाधिक धर्मत्व का ज्ञान होना इन सवको सम्यक् तया

जानना स्थिति का सम्बन्ध स्वरूप ज्ञान है। श्रीरामजी का एवं स्वयं का निरुपाधिक रूपसे धर्मी एवं धर्म की एकता का ज्ञान होना सम्बन्ध स्वरूप याथात्म्य ज्ञान कहा जाता है। और एक रूपता का ज्ञान विशेष्य विशेषण भाव होने पर भी उपासक के स्वयं का स्वतन्त्र रूपसे प्रकाशन जिसप्रकार नहीं होता है इसलिये ऋचा में कहा गया है 'प्राग् गुणेन' यह पद। अर्थात् संसार प्रवेश शीलता एवं रूप गुण के द्वारा अखिल जगत् के अन्दर प्रवेश प्राप्त किये हुए श्रीरामचन्द्रजी का नियामक भाव होने के कारण शेषित्व है। तथा समस्त चराचर जगत् को श्रीरामजी द्वारा नियमन करने योग्य होने से समस्त जगत् का शेषत्व है। जिसप्रकार गो एवं गोत्व का परस्पर धर्मिधर्म भाव सम्बन्ध है इसलिये अभेद स्वरूप सम्बन्ध है उसीप्रकार श्रीरामजी एवं जगत् का धर्मिधर्म सम्बन्ध होने से एकरूपता है। इससे दोनों की एकता सिद्ध होती है।

इस ऋचा में सखण्ड एवं अखण्ड इन दोनों भेदों से 'नमः' पद दो प्रकार का है। अखण्ड नमः पद तन्त्र द्वारा कहा गया है। एक शब्द का अनेक अर्थ परक व्यवहार को तन्त्र कहा जाता है। अतः अखण्ड नमः पद का यहां पर दो अर्थों में व्यवहार किया गया है। उसमें वीज मन्त्र के पश्चात् नमः पद को मानकर नमः पद का जीवात्मा के उपाय वाची नमः पद है। द्वितीय नमः पद जीव वाची है इसप्रकार एक रूप में दिखता हुआ नमः पद का दो अर्थ हुआ। नमः पद के द्वारा प्रतीत होता है कि-श्रीरामचन्द्रजी को छोड़कर संसार के समस्त साधनों का परित्याग ऐसा अर्थ बोध होता है। इसप्रकार 'द्रौपदी के सहित सभी युधिष्ठिर भीम आदि जनार्दन श्रीकृष्णजी को प्रणाम किये' यह कहे जाने से प्रतीत होता है कि-तथा 'इन शरणागत वत्सल इनकी शरणागति को प्राप्त करो, इस महर्षि मार्कण्डेय के वचन से नमः शब्द का अर्थ 'शरण' पद के स्थान पर प्रयोग किया जाना समझा जाता है। जीवात्मा का संसार सागर अर्थात् जन्म मरण परम्परा से उद्धार करने के लिये सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी की शरणागति ही एकमात्र उपाय है। यह अर्थवशात् अभिप्राय ज्ञान होता है। इति इस उपनिषद् के प्रकरण समाप्ति सूचन हेतु व्यवहार किया गया है ॥२॥

**विना यन्त्रेण पूजाचेत् देवता न प्रसीतीति पूर्वमुक्तम् तत्र यन्त्र स्वरूपं किमिति जिज्ञासायां चतुर्थोपनिषत् प्रारभ्यते, तत्रोपेयस्वरूपं चतुर्थ्यर्थमाह जीववाचीति-**

**जीववाचिनमो नाम चात्मारामेति गीयते ।**
**तादात्मिका न्या चतुर्थीतया चायेति कथ्यते ॥१॥**

अत्र नमः पदे 'न' इति प्रतिषेधार्थकमव्ययं मेति प्रथमान्तः जीववाची आत्मा तथा मकारेण पञ्चविंशः प्रकीर्तितः इतिस्मृतेः । वेदस्य परोक्षवादत्वादिय मुक्तिः । जीववाची नमः शब्दः स्यात् आत्मा रामेति गीयते' इतिवक्तव्ये, 'नमो' इतिकथनं कश्चनाचार्यवानधिकारी एव जानात्विवितिभावः । वेदस्य परोक्ष-वचनप्रियत्वात् । तथैव रामेति प्रातिपदिकेनात्मापरमात्मा च कथ्यते । किन्त्वत्र नमोमकारस्य जीववाचित्वात् परमात्मपरत्वमेव । स्वतः प्रमाणत्वाद् वेदस्य यथा दृष्टव्याख्यानेनात्र तादात्म्ये चतुर्थी, तेन तस्मै रामाय जीवः तादात्म्यं बोधयति । तदुक्तम्-

षडक्षरोवह्निपूर्वस्तारकस्त्वभिधीयते । महापातकिनां पापदहने दहनोपमः ॥

नमः शब्दस्य सादनान्तरसन्त्यागोप्यर्थः स्मर्यते यथा-

'साधनान्तरसन्त्यागो नमः शब्दो हि संशति ।
अनेन शरणापत्तिः परमैकान्तिनां मतेति ॥

विना यन्त्र के द्वारा यदि पूजा की जाती है तो देवता प्रसन्न नहीं होते हैं यह पूर्व में कहा जा चुका है । उस पूजा में यन्त्र का स्वरूप क्या होगा ऐसी जिज्ञासा होने पर कहते हैं । इसलिये ही चतुर्थ उपनिषत् प्रारम्भ करते हैं । उसमें उपेय का स्वरूप चतुर्थी विभक्ति का अर्थ जीव वाची है-

जीव वाचक नमो यह पद है उसकी तात्विक आत्मा श्रीरामजी हैं यह कहा जाता है, उस स्वरूप को बताने वाली जो चतुर्थी विभक्ति है उसके द्वारा 'रामाय' में 'आय' यह कहते हैं ।

इसमन्त्र में 'नमः' पद में न यह प्रतिषेध अर्थ बोधक अव्यय है । 'म' यह प्रथमान्त पद है । जो जीव अर्थ का वाचक है । इसप्रकार मकार के द्वारा पचीसवां तत्त्व आत्मा कहा गया है । वेद का परोक्षवाद प्रियत्व के कारण यह कथन है । जीव वाचक 'नमः' शब्द होता है । आत्मा 'राम' यह कहे जाते हैं । यह कहा जाना चाहिये था । पुनः 'नमः' यह कथन, कोई सद् गुरु के शरणागत आचार्य सम्पन्न अधिकारी ही समझ पाये इस भावना से कहा है । क्योंकि वेद का परोक्ष वस्तु तत्त्व कथन प्रिय

जीववाचिनमोनामेति नमः शब्दस्य जीववाचकत्वमपि । अन्येनापि प्रकारेण श्रीराममहामन्त्रार्थोवर्ण्यते यथा-परीक्ष्यलोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेदमायात्....प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्यामित्यादिश्रुत्या अव्यक्तादि स्थावरान्तान् लोकान् धर्माधर्मजनितान् ज्ञात्वा ब्रह्मज्ञानाभिलाषी निर्विण्णः गुरोः शरणापन्नो भवति यतो हि सर्वे सांसारिकाः पदार्थाः कर्मकृता अनित्याश्चेति अक्षरस्य पुरुषस्य विज्ञानार्थं शमदमादिसम्पन्नं गुरुमभिगच्छेत् श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठ मित्यादि-रिक्तहस्तस्तुनोपेयाद् राजानं देवतां गुरुमिति वचनात् समित् पाणिः स परमविरक्ताय ब्रह्मविद्यां तत्त्वतः प्रोवाच । ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति ।

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामायेऽस्य हृदिस्थिताः ।
अथमर्त्योऽमृतोभवति अत्रब्रह्म समश्नुते ॥

है। उसीप्रकार 'राम' इस प्रातिपदिक के द्वारा परमात्मा कहा जाता है । किन्तु यहां पर 'नमः' के मकार का जीव वाचक होने के कारण परमात्मपरत्व ही है। वेद के स्वतः प्रमाण होने के कारण जैसा देखा गया है वैसा व्याख्यान करने से यहां पर तादात्म्य अर्थ में चतुर्थी विभक्ति है । इससे उस 'राम' के लिये जीव तादात्म्य का बोध कराता है ऐसा कहा गया है ।

वह्नि वीज का 'र्' अक्षर पूर्व में है जिसके ऐसा छ अक्षरों वाला मन्त्र तारक होने के कारण तारक कहा जाता है। जिसप्रकार आग सभी वस्तुओं को जला देता है उसीप्रकार महापापियों के भी समस्त पापों को वह्निरूप यह 'र' वीज जला देता है।

'नमः' शब्द का अन्य साधनों का परित्याग भी अर्थ है, ऐसा स्मृति कहती है। अन्य साधनों का सम्यक् प्रकार से परित्याग करना 'नमः' शब्द कहता है । जीव वाचक 'नमः' यह प्रातिपदिक है इस प्रमाण से 'नमः' शब्द का जीव वाचकत्व भी है। दूसरे प्रकार से भी मन्त्र का अर्थ वर्णन किया जाता है जैसे कि-कर्म सञ्चित लोकों को सभी तरह से विचार कर तत्त्व ज्ञानाभिलाषी ब्राह्मण परमवैराग्य को प्राप्त किया....उस अधिकारी को ब्रह्मविद्या नाम से ख्यात ज्ञानोपदेश दिया । अव्यक्त से आरम्भ कर स्थावर पर्यन्त संसार को धर्म अधर्म से उत्पन्न जानकर, ब्रह्मज्ञान का अभिलाषी परम विरक्त होकर गुरु का शरणागत होता है । क्योंकि सांसारिक समस्त पदार्थ कर्म जनित है एवं नश्वर है अविनाशी पुरुष का तात्विक ज्ञान के लिये शम

वेदोऽवेदज्ञस्य वेदज्ञानाभावं बोधयति, ब्रह्मज्ञानमन्तरा च सायुज्यमुक्तिर्न भवति । ब्रह्मापरोक्षज्ञानमन्तरा संशयनिवृत्तिरपि न जायते ।

भिद्यते हृदयग्रन्थिः छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥ इति ॥

वेदेन ब्रह्मणः स्वरूपं विज्ञाय ब्रह्मनिष्ठोपदेशेन ब्रह्मणः साक्षात्कारो भवति । ततो मन्त्रार्थविज्ञानतत्परस्य श्रीरामाख्यब्रह्मसाक्षात्कारो जायते, अतो मन्त्रार्थविचारतत्परेण भाव्यम् । वेदानां कारणमोंकारः । ॐकारविज्ञानेन सर्ववेदार्थविज्ञानम् । कारणविज्ञानेन कार्यविज्ञानात् तस्यापि प्रणवस्य कारणम् तारकं षडक्षरश्रीराममन्त्रम् । तथाह्यत्रोपनिषदि 'किं तारकं किं तरति' इति प्रश्ने याज्ञवल्क्य आह-तारकं दीर्घानलं विन्दुपूर्वकं पुनः दीर्घानलं माय नमः'' इतितारकस्य स्वरूपमभिधाय, 'ब्रह्मात्मकांसच्चिदानन्दाख्या इत्युपासितव्यम्' इत्युपासनीयत्वमुक्तम् ।

दम आदि से परिपूर्ण गुरु को जानकर श्रोत्रिय एवं ब्रह्मनिष्ठ आचार्य के पास जाना चाहिये 'श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ' इत्यादि कहा है । राजा और गुरु के पास खाली हाथ नहीं जाना चाहिये इस वचन से समिधा हाथ में लेकर जाना कहा है । उस तत्त्वज्ञ गुरु ने परम विरक्त शिष्य को ब्रह्मविद्या का उपदेश किया ।

ब्रह्मज्ञानी ब्रह्म के समान होता है । जब ब्रह्म जिज्ञासु की मनः स्थित अन्य समस्त इच्छाये नष्ट हो जाती हैं इसके पश्चात् मनुष्य अमर हो जाता है । इसके वाद ब्रह्म साक्षात्कार जनित आनन्दानुभव करता है । वेद कहते हैं कि जो वेदज्ञ नही है उसे ज्ञान नहीं होता है । ब्रह्म ज्ञान होने के पश्चात् मुक्ति होती है उसके अभाव में नहीं होती है । जब तक ब्रह्म का साक्षात्कार नहीं होता है तब तक सन्देह का निवारण नहीं होता है ।

उस परावर परब्रह्म का साक्षात्कार हो जाने के पश्चात् ज्ञाता के हृदय की गांठ टूट जाती है सभी प्रकार के सन्देह नष्ट हो जाते हैं, तथा जन्म जन्मान्तर से सञ्चित समस्त कर्म नष्ट हो जाते हैं । यह विषय वेद के द्वारा ब्रह्म का स्वरूप जानकर ब्रह्मनिष्ठ के उपदेश से ब्रह्म का साक्षात्कार से होता है । तत्पश्चात् मन्त्रार्थ विज्ञानी को 'राम' नामक परब्रह्म का साक्षात्कार हो जाता है । अतः मन्त्रार्थ का विचार करने में तत्पर हो जाना चाहिये । वेदों का ॐकार कारण है । ॐकार के विज्ञान से सभी वेदों का

ननु जडानामक्षराणां कथं सच्चिदानन्दात्मकत्वम् ? नेमे जडा, अपितु सच्चिदानन्दात्मकाः । एतत् षडक्षरम् प्रणवस्वरूपम्, ननु षडक्षराणां कथं त्रिवर्णात्मकमिति जिज्ञासायामाह-त्रिवर्णात्मकस्य षडक्षरकार्यत्वम् । अकारः प्रथमाक्षरः, उकारो द्वितीयाक्षरः, मकारस्तृतीयाक्षरः अर्धमात्राचतुर्थाक्षरः विन्दुः पञ्चमाक्षरः, नादः षष्ठाक्षरः तारकत्वात् तारकः । इत्थं मन्त्रार्थज्ञानवतः सर्ववेद वित्त्वं निष्पद्यते । नावेदविन्मनुतेबृहन्तमितिश्रुतेः । रां वीजस्य चराचरत्वोक्तेश्च, सकलचराचरसहितसर्ववेदमन्त्रादीनां रकारबीजे स्थितिनिरूपणात् तारकमन्त्राद्य क्षरस्य सर्वलोकवेदेश्वराद्यश्रयत्वात् रकार ज्ञानेन ब्रह्मज्ञानित्वसिद्धेः न श्रुति-विरोधः ।

अभिप्राय विज्ञान हो जाता है । क्योंकि कारण विज्ञान से कार्य विज्ञात होने से ॐकार विज्ञान से सर्ववेदार्थ विज्ञात होता है । और उस प्रणव का कारण षडक्षर तारक श्रीराम महामन्त्र है । क्योंकि उसीप्रकार इस श्रीरामतापनीय उपनिषद् में-क्या तारक है और क्या तारता है' ऐसी जिज्ञासा होने पर महर्षि श्रीयाज्ञवल्क्यजी कहते हैं-तारक दीर्घानल है ऐसे दीर्घानल जिसके विन्दु पूर्व में है ऐसे 'म' के लिये प्रणाम है । इसतरह तारक का स्वरूप कहकर ब्रह्म स्वरूप सच्चिदानन्द जिनका नाम है इसकी उपासना करनी चाहिये । ऐसा कहकर तारक की उपायनीयता को कहा ।

अब प्रश्न उठता है कि जड (चेतना हीन) अक्षरों की सच्चिदानन्द स्वरूपता कैसे होती है ? ये अक्षर जड नहीं हैं अपितु सत् चित् आनन्द स्वरूप हैं । ये षडक्षर प्रणव स्वरूप हैं । ये छ अक्षर कैसे तीन वर्ण रूप होते हैं ? तो कहते हैं-यह त्रिवर्णात्मक ॐ षडक्षर का कार्य है 'रामनाम्नः समुत्पन्नः प्रणवोमोक्षदायकः' श्रीराम नाम से उत्पन्न ॐकार मोक्ष देनेवाला है ऐसा श्रीमद्रामायण में लिखा है । अकार प्रथम अक्षर उकार द्वितीय अक्षर, मकार तीसरा अक्षर आधी मात्रा चतुर्थाक्षर विन्दु पञ्चम अक्षर और नाद छठा अक्षर है । यह उद्धारक होने से तारक कहा जाता है । इस तरह मन्त्रार्थ ज्ञान सम्पन्न की सर्ववेदज्ञता सिद्ध होती है । जो वेदवित् नहीं है वह सर्व महान् ब्रह्म को नहीं जानता है यह श्रुतिवचन प्रमाण है ।

और 'रां' वीज की चराचरमयता कहे जाने से समस्त चराचर के सहित सभी वेद सभी मन्त्र आदि का रकार बीज में स्थिति बताये जाने के कारण तारक मन्त्र के आदि अक्षर 'र्' में स्थित समस्त लोक वेद देवता आदि को आधारत्व होने से 'र'

**तथा च 'सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति, तद्विष्णोः परमंपदमित्यादिश्रुतेः, वेदैश्च सर्वैरहमेववेद्य इत्यादिस्मृतेश्च ब्रह्मणः सर्ववेदवेद्यत्वमुक्तं भवति । सच्चिदानन्दात्मकं ब्रह्मणः स्वरूपं, तत् प्राप्त्युपायं च तद्विरोधिस्वरूपं वेद स सर्वार्थवित्त्वेनोच्यते । तारकाद्यक्षरस्य परंब्रह्मस्वरूपं यो वेद स सर्वार्थवित् सर्ववेदार्थविज्ञानित्वात् ब्रह्मज्ञानीति सिद्ध्यति ॥१॥**

**तारकमन्त्रस्य प्रथमाक्षरे रेफे आरूढस्य प्रथमाक्षरस्य अकारस्य ब्रह्मवाचकत्वम्, द्वितीयस्याकारस्य विष्णुवाचकत्वम् 'अनन्तोऽग्न्यासनेन्दुर्नाशामेकाक्षरोवतु' इतिविष्णुवाचकत्वस्मृतेः, मकारः शिववाचकः, 'मः शिवः चन्द्रमाः**

कार के ज्ञान से ब्रह्म ज्ञानित्व सिद्ध होता है। इसलिये श्रुति वचन का विरोध नहीं है ''यावद्वेदार्थगर्भम्'' आदि श्लोक से आनन्दभाष्यकारजी ने श्रीराम वीज को सभी वेदों से गर्भित यानी सभी वेदसमुदाय 'रां' इस वीज में अन्तर्हित हैं ऐसा विस्तार पूर्वक निरूपण किया है विशेषार्थी वहीं मेरी टीका में देखें और इसप्रकार 'सभी वेद जिसके पद को कहते हैं' वह विष्णु का परम पद है इत्यादि श्रुतिवचनों से प्रमाणित है। और सभी वेदों से मैं ही जानने योग्य हूँ इत्यादि स्मृति से ब्रह्म का सर्ववेद ज्ञेयत्व प्रतिपादित होता है कि सत् चित् तथा आनन्दमयता ब्रह्म का स्वरूप है। और उस ब्रह्म के प्राप्ति का उपाय, तथा ब्रह्मस्वरूप के साक्षात्कार का प्रतिबन्धक स्वरूप को जो जानता है वह समस्त अर्थ तत्त्व का ज्ञाता होने के रूपमें कहा जाता है। तारक मन्त्र के आद्यक्षर रूप को जो जानता है वह सर्वार्थ ज्ञानी है क्योंकि सर्ववेदार्थ ज्ञानी होने से ब्रह्मज्ञानी है यह सिद्ध होता है ॥१॥

तारक मन्त्र के प्रथम अक्षर रेफ पर आरूढ प्रथम अक्षर अकार ब्रह्म वाचक है, द्वितीय अकार विष्णु वाचक है रेफ अग्नि का वाचक है अतः ऐसे विष्णु स्वरूप आकार एक अक्षर नासिका की रक्षा करें। इसप्रकार अकार का विष्णु वाचकत्व कहा गया है। मकार शिव अर्थ का वाचक है, म का अर्थ शिव चन्द्रमा और ब्रह्मा अर्थ होता है ऐसा कोश है। इससे ब्रह्मा आदि का वाचक रेफ है यह सिद्ध होता है। क्योंकि मन्त्रों के अर्थ शब्दानुसारी है इसलिये जप करना चाहिये। और समस्त वाच्य अर्थों के वाचक होने से भी जप करना चाहिये। इस मन्त्र में क्रिया है-मेरी आत्मा श्रीराम है, मेरे शरीरी श्रीरामजी हैं, वे ही ऐह लौकिक पारलौकिक फलों के दाता होने से मेरे अनन्य लाभकारी एवं संरक्षण कारी हैं। और वे ही उद्धार के उपाय स्वरूप

वेधाः' इतिकोशः । तेन ब्रह्मादीनां वाचकोऽयमितिसिद्धम् । मन्त्राक्षराणा मन्वर्थकत्वात् जप्तव्यत्वं सर्ववाच्यवाचकत्वञ्च । तत्र क्रिया ममात्मा 'रामः' मच्छरीरी स एव ऐहलौकिकपारलौकिकफलदत्वात् मम योगक्षेमकारी, स एव चोपायभूतः, नान्य इतिबुद्धिव्यापारः । कर्म इज्यपदसान्निध्यात् तत् कैङ्कर्यस्वरूपं कर्म, तज्जपेन च स सर्वेश्वरश्रीरामः पूजनीयः । 'स्तवैरर्चेन्नरः सदा' इतिस्मृतेः । तदाराधकत्वात्तच्छेषभूतः । श्रीरामस्य जगद् व्यापारकत्वात् जीवस्यान्तर्ब हिर्भूतत्वम् । जीवस्य स्थितिप्रवृत्यादीनां श्रीरामाधीनतया श्रीरामशेषत्वमेव जीवस्वरूपम्, 'प्रकृतिं विद्धि मे परां जीवभूता' मितिगीतोक्तेः भगवच्छेषत्वम् ।

जीवात्मपरमात्मनोः सम्बन्धः शेषशेषिभावः, स च चतुर्विधः, सम्बन्ध ज्ञानम्, सम्बन्धयाथात्म्यज्ञानम्, सम्बन्धस्वरूपज्ञानम्, सम्बन्धस्वरूप याथात्म्यज्ञानम्, चेति । श्रीरामस्य निरुपाधिकशेषित्वज्ञानम् स्वस्य च निरुपाधिकशेषत्वज्ञानम् सम्बन्धज्ञानम् । तत् सम्यक् ज्ञात्वास्थितिः सम्बन्धयाथात्म्यज्ञानम् । श्रीसीतापतेः श्रीरामस्य निरुपाधिकशरीरित्त्वं स्वस्य च

हैं दूसरा नहीं इसप्रकार की बुद्धि की क्रिया है । कर्म एवं इज्य पद के सान्निध्य से उन श्रीरामजी की सेवा स्वरूप कर्म है । और 'राम' नाम के या मन्त्र के जप के द्वारा श्रीरामजी ही पूजनीय हैं । जैसे कि स्मृति में कहा है उनके स्तुति वचनों से मानव सदैव उनकी पूजा करे । श्रीरामजी का आराधक होने से श्रीरामजी का जीव शेषभूत है । श्रीरामजी का सर्वलोक व्यापक होने से और जीव मात्र के अन्दर एवं बाहर सर्वत्र ओत प्रोत होने से, तथा जीव की स्थिति प्रवृत्ति आदि का श्रीरामजी के अधीन होने से श्रीरामजी का शेषत्व है । यही जीव का स्वरूप है । 'मेरी पराप्रकृति समझो वह जीव भूत है' इत्यादि गीता के वचनानुसार जीव के अन्दर बाहर श्रीरामजी व्यापक रूपसे हैं ।

जीवात्मा और परमात्मा का सम्बन्ध शेष शेषीभाव है । जीव शेष है एवं परमात्मा शेषी हैं । वह सम्बन्ध चार प्रकार का है । सम्बन्ध ज्ञान सम्बन्ध का याथात्म्य ज्ञान, सम्बन्ध स्वरूप ज्ञान, एवं सम्बन्ध स्वरूप याथात्म्य ज्ञान ये चार सम्बन्ध ज्ञान हैं । भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का विना किसी उपाधि के शेषित्व ज्ञान और अपना निरुपाधिक शेषत्व ज्ञान सम्बन्ध ज्ञान है । और इस शेष शेषीभाव को जानकर तदनुसार अपनी स्थिति रखना सम्बन्ध याथात्म्य ज्ञान है । श्रीसीतानाथ श्रीरामचन्द्रजी का

**निरुपाधिकशरीरत्वज्ञानम्, सम्बन्धस्वरूपज्ञानम् । श्रीरामस्य निरुपाधिकधर्मित्वं स्वस्य च निरुपाधिकधर्मत्वज्ञानं सम्बन्धस्वरूपयाथात्म्यज्ञानम् । धर्मधर्मिणोः ऐक्यं ज्ञातमेव । एवम्भूतस्य मन्त्रस्य मननात् मननपूर्वकं जपात् जपकर्तुः त्राणनं संसाराद् रक्षणं परिपालनं करोति तस्मान् मन्त्र उच्यते । यथा शरीरवाचकाः शब्दाः शरीरिणि पर्यवस्यन्ति तद्वाचकाः भवन्ति । अन्यथा शरीरं त्यक्त्वापित्रादि लोकगतानां जीवानां पिण्डोदकप्रदानानुपपत्तेः । अयं मन्त्रः ब्रह्मणः समत्वात् ब्रह्म, गर्भजन्मजरामरणसंसारभयादितारकत्वात् तारकमुच्यते, अन्वर्थोऽयं मन्त्रः इतिसंज्ञां प्रकाश्य, सर्वेषां भगवन्मन्त्राणां संसारनिवृत्तिपूर्वकम् मोक्षप्रदानसामर्थ्य साम्येऽपि श्रीराममहामन्त्रस्य झटिति संसारतारणशक्तेः आधिक्यात् श्रेष्ठत्व-**

निरुपाधिक शरीरित्व एवं स्वयं का निरुपाधिक शरीरत्व का ज्ञान सम्बन्ध स्वरूप का ज्ञान है। श्रीरामजी का निरुपाधिक धर्मित्व एवं स्वयं का निरुपाधिक धर्मत्व ज्ञान सम्बन्ध स्वरूप याथात्म्य ज्ञान है। धर्म एवं धर्मी की एकात्मता का ज्ञान सर्व विदित ही है। इसप्रकार के मन्त्र का मनन करने के कारण अर्थात् मनन पूर्वक जप के कारण जप करनेवाला साधक का त्राणन अर्थात् संसार से संरक्षण अर्थात् परिपालन करता है इसलिये मन्त्र कहा जाता है। जैसे शरीर वाचक शब्द शरीरी में सुस्थिर होता है। अर्थात् शरीर वाचक शब्द शरीरी वाचक होते हैं। अन्यथा शरीर छोडकर पितृ आदि लोकों को गये हुए जीवों को पिण्ड एवं जल प्रदान करना असंगत हो जायगा। उसी तरह यह मन्त्र ब्रह्म के समान होने से ब्रह्म कहा जाता है। गर्भ जन्म बुढापा मृत्यु संसार आदि भयों से उद्धारक होने से यह तारक कहा जाता है। यह मन्त्र अर्थानुगत है इसलिये इसके नाम का प्रकाशन कर, सभी भगवान् के उन मन्त्रों का संसारादि विचार पूर्वक मोक्ष प्रदान करने के सामर्थ्य की समानता होने पर भी श्रीराममन्त्र के अति शीघ्र संसार से तारण की शक्ति के अधिकता होने से श्रेष्ठता कही गयी है। अतः इससे सिद्ध होता है कि श्रीराम महामन्त्र ही उपासनीय एवं जानने योग्य है। 'हे सौम्य जैसे एक ही कारणभूत मृत्तिका पिण्ड के विज्ञान से समस्त मृत्तिका कार्य घट शराव आदि का ज्ञान हो जाता है' इस कारण विज्ञान श्रुति के द्वारा षडक्षर ब्रह्मतारक के विज्ञान से सभी मन्त्रों का अर्थ विज्ञात हो जाता है यह अभिप्राय है। इसीलिये यही श्रीराम महामन्त्र उपासना योग्य है, मन्त्र में क्रिया पद इसलिये है कि श्रीराम महामन्त्र को छोडकर दूसरा कोई उपाय नहीं है। कर्म पद अनन्य भोग्यत्व को कहता है। इज्य

मुक्तम्। एतेनास्यैवोपास्यत्वं ज्ञेयत्वञ्च। 'यथा सौम्य एकेन मृत्पिण्डेन विज्ञातेन सर्वं मृण्मयं विज्ञातं भवति' इतिकारणविज्ञानश्रुत्या षडक्षरब्रह्मतारकश्रीराममन्त्र विज्ञानेन सर्वमन्त्राणामर्थविज्ञानम्भवतीतिभावः। अतएव एतदेवोपास्यम्। मन्त्रे क्रियापदमनन्योपायत्वम्। कर्मपदमनन्यभोग्यत्वम्, इज्यपदमनन्यशेषत्वम् वदति। तेन जपकर्तुः आकारत्रयसम्पन्नत्वं ज्ञापितं भवति। अत्रेज्यपदेन सर्वजीव स्वामित्वशेषित्वस्वरूपं श्रीरामस्य बोध्यम्।

श्रीरामभिन्नेशेषित्वबुद्धिः उपायबुद्धिः फलबुद्धिश्च विरोधिन्यः। अर्थ पञ्चकविज्ञादेवमन्त्रः ग्राह्यः। पञ्चविधाः तदुक्तम्

प्राप्यस्य ब्रह्मणोरूपं, प्राप्तुश्च प्रत्यगात्मनः।
प्राप्त्युपायं फलं प्राप्तेः तथा प्राप्तिविरोधिनः॥

अयमेव सर्ववेदेतिहासादिसारार्थः। तदैव ब्रह्मणि नितरां तिष्ठति ब्रह्म निष्ठः। वह्निबीजतद्वाच्यश्रीरामयोः सृष्ट्यादिकारणत्वात् जगद् श्रीरामयोः शेषशेषिभावः। स च स्वयं प्रकाशरूपः। ॐकाराक्षरं शक्त्यारजःसत्वतमोगुणैः

पद अनन्य शेषत्व अर्थ को प्रकाशित करता है। इसलिये जप कर्ता का आकारत्रय १-अनन्य शरणत्व २-अनन्य भोग्यत्व एवं ३-अनन्य शेषत्व से सम्पन्नत्व बोध कराया जाता है। यहां पर इज्य पद के द्वारा सभी जीवों का स्वामीत्व एवं शेषित्व स्वरूप श्रीरामजी का समझना चाहिये।

भगवान् श्रीरामजी से भिन्न देव में स्व शेषित्व बुद्धि तथा स्व के हेतु सायुज्य मुक्ति की उपाय बुद्धि और फल दातृत्व बुद्धि स्व विरोधी है। जो अर्थ पञ्चक के विज्ञानी है उन्हीं आचार्य से श्रीराम महामन्त्र की दीक्षा लेनी चाहिये। वे पांच प्रकार के कहे गये हैं-

प्राप्त करने योग्य परब्रह्म का स्वरूप, और प्राप्त करनेवाला जीवात्मा का स्वरूप, तथा परब्रह्म के प्राप्ति का उपाय, परब्रह्म के प्राप्ति का फल तथा परब्रह्म प्राप्ति के विरोधियों को जानता है वह अर्थ पञ्चक ज्ञाता कहलाता है। यही सभी वेदों एवं इतिहासादि का सारभूत अर्थ है। तब ही ब्रह्म में अतिशय स्थित रहता है इसलिये ब्रह्मनिष्ठ कहा जाता है। वह्नि बीज 'र्' एवं उसका अर्थ तथा 'राम' इनका सृष्टि आदि का कारणत्व होने से संसार एवं 'राम' का शेष शेषीभाव सम्बन्ध है। और वह स्वयं प्रकाश स्वरूप है, ॐकार अक्षर चित् शक्ति स्वरूप श्रीसीतादेवीजी के नाम से प्रसिद्ध

जगत् सृष्टिस्थितिलयकारणम् । चिद् रूपया श्रीसीताख्यया शक्त्या रजः सत्व तमोगुणैः सृष्टिस्थितिलयकारणत्वेन तिष्ठति, तेन श्रीसीताद्वारा श्रीरामस्य जगत्कारणत्वं श्रीरामतापनीये प्रतिपाद्यते । तदुक्तम्-

श्रीरामसान्निध्यवशाज्जगदानन्ददायिनी ।
उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणी सर्वदेहिनाम् ॥
सा सीता भगवती ज्ञेया मूलप्रकृति संज्ञिका ॥

प्रणवत्वात् प्रकृतिः । नतु जडा अतो वटवीजवत् सर्वलयस्थानत्वं श्रीरामे निर्वाधम् ॥२॥

ब्रह्मविष्णुमहेश्वराणां जगत् सृष्टिस्थितिसंहारकर्तृत्वात् तेषां स्वामित्वं तेन च शेषरूपस्य जगच्छ्रीरामयोर्ब्रह्मविष्णुमहेश्वराणां सामान्यरूपेण शेषित्वं मा भूदितिरेफारूढत्वमुक्तम्, ततस्तेषां ब्रह्मादीनामपि रेफाश्रितत्वात् श्रीराम शेषत्वमेव न तुशेषित्वम् 'रकाराज्जायते ब्रह्मेत्यादिस्मृतेश्च । इत्थञ्च श्रीरामस्यानन्यशेषित्वंनिर्वाधम् । इत्थं वटवीजश्रुत्याजगतः ब्रह्मादीनाञ्च रेफवाच्य शक्ति के द्वारा रजो गुण सत्व गुण एवं तमो गुण से संसार की उत्पत्ति स्थिति एवं संहार कारण रूपमें स्थित है' इससे श्रीसीताजी द्वारा श्रीरामजी का जगत् कारणत्व श्रीरामतापनीय उपनिषद् में प्रतिपादन किया जाता है । यही कहा भी है-

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के सान्निध्य के कारण समस्त जगत् को आनन्द प्रदान करनेवाली सभी शरीर धारियों के उत्पत्ति पालन एवं संहार कारिणी जो शक्ति है उसे 'सीता' समझना चाहिये उसी का नाम मूल प्रकृति है । प्रणव रूपता से वह प्रकृति है किन्तु जड नहीं । इससे वटवीज न्याय से श्रीरामजी में सभी का लय स्थानत्व बाधा रहित सिद्ध है ॥२॥

ब्रह्मा विष्णु और शिव का संसार की सृष्टि स्थिति और संहार का कर्तृत्व होने से स्वामित्व सिद्ध होता है इससे शेष स्वरूप जगत् एवं श्रीरामजी का भी ब्रह्म विष्णु और महेश्वर का सामान्य रूपसे शेषित्व सिद्ध न हो जाय इसलिये 'रेफारूढामूर्तयः स्युः' यह कहा गया है । इससे सभी ब्रह्मा विष्णु और महेश्वर आदि को रेफाश्रिततत्व होने से श्रीरामजी का शेषत्व ही उन तीन देवों में है यह नियत है । 'रेफ से ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं' इत्यादि स्मृति में भी यही कहा है । इसप्रकार श्रीरामजी का अनन्य शेषित्व सिद्ध होता है । इसप्रकार 'यथैव वटवीजस्थ' इस श्रुति से संसार का एवं

**श्रीरामानन्यशेषत्वं श्रीरामाख्यपरब्रह्मब्रह्मविष्णुमहेश्वरमयस्य वह्निवीजस्य चराचरजगत् कारणत्वं रेफश्रीरामयोस्तादात्म्येन श्रीरामस्य शेषित्वं ज्ञायते । अतएव श्रीसीतारामयोः पूज्यत्वं ज्ञेयत्वञ्च 'राम एव परंब्रह्म राम एव परंतपः । राम एव परं तत्त्वं श्रीरामोब्रह्मतारकम्' 'रामः भुवनेषु प्राविशत् । तत् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्' इत्यादिश्रुतेः। 'रामः' मानवः-मा-प्रभा तया, नवः-नवावयवः, जगत्प्राणायात्मने तस्मै नमः, इत्यस्यायमर्थः, यथा प्राणं विना शरीरस्य स्थितिः न भवतिः, तथैव जगत्प्राणं श्रीरामं विना जगत्स्वरूपस्थितिः न भवतीतिभावः । अतएव सर्वजीवशरीरिणः श्रीरामस्य सर्वयोगक्षेमकारित्वं सिद्ध्यति । अत्रा लब्धस्य स्वस्य प्रापणं योगः स्वप्राप्तस्य संसारगमनाद् रक्षणं क्षेमः । शेषशेषिणोः**

ब्रह्मा आदि का रेफ शब्द वाच्य श्रीरामजी का अनन्य शेषत्व और श्रीराम नामक परब्रह्म का ब्रह्मा विष्णु महेश्वरमयत्व होने से वह्नि का चराचर जगत् का कारणत्व सिद्ध होता है। इसीलिये श्रीसीतारामजी का सर्वलोक पूज्यत्व एवं ज्ञेयत्व नियत है भगवान् श्रीरामजी समस्त भुवनों में व्यापक रूपसे प्रविष्ट हुए । संसार की रचना करके स्वयं उसमें प्रविष्ट हुए श्रीरामजी ही परब्रह्म एवं परतत्त्व आदि हैं इत्यादि श्रुति से । 'राम' मानव हैं इसका अर्थ है कि मा-अर्थात् प्रभा उससे नूतन अवयवों वाला, संसार प्राण एवं आत्मा स्वरूप उस 'राम' के लिये प्रणाम । इसका यह अभिप्राय है कि-जिस तरह प्राण के विना शरीर की स्थिति नहीं होती है। उसी तरह संसार के प्राण स्वरूप श्रीरामचन्द्रजी के विना संसार के स्वरूप की स्थिति नहीं हो सकती है। अत एव समस्त चराचर जीव शरीर का शरीरी श्रीरामचन्द्रजी का सभी का योगक्षेमकारीत्व प्रतीत होता है यह सिद्ध होता है। यहां पर अप्राप्त अविदित भगवान् के स्वरूप का विशेष रूपसे ज्ञात कराना योग है। भगवदनुकम्पा से भगवत् साक्षात्कार किये हुए जीव का पुनः संसार अर्थात् जन्म मरण परम्परा में पडने से रक्षा करना क्षेम कहा जाता है । शेष और शेषी जीवात्मा और परमात्मा का तादात्म्य स्वरूप सम्बन्ध है। कुछ भेद की सहनशीलता होते हुए भेद की सहिष्णुता का अभाव होना तादात्म्य सम्बन्ध कहा जाता है। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के तादात्म्य का अनुभव करते हुए और अनन्य भाव से चिन्तन करते हुए ब्रह्मतारक षडक्षर श्रीराम महामन्त्र का जप करे। यही विषय सुन्दरी तन्त्र में श्रीजानकीजी के द्वारा अपने पिता के प्रति कहा गया है।

मैं 'राम' हूँ मैं श्री 'राम' से भिन्न नहीं हूँ। मैं 'ब्रह्म' हूँ ब्रह्म से भिन्न शोक

जीवपरमात्मनोः तादात्म्यलक्षणः सम्बन्धः । किञ्चिद् भेदसहिष्णुत्वे सति भेदासाहिष्णुत्वं तादात्म्यम् । श्रीरामतादात्म्यमनुभवन् ध्यायंश्च मन्त्रं जपेत् । तदुक्तं सुन्दरीतन्त्रे जानक्या स्वजनकं प्रति-

अहं रामो न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवाहं नशोकभाक् ।
सच्चिदानन्दरूपोऽहं नित्यमुक्तस्वभाववान् ॥ तथा-

'यथा रामस्तथाऽहं च भेदः कश्चिन्नचावयोः ।
सर्वेश्वरी यथा चाहं रामः सर्वेश्वरस्तथा ।
षड्गुणो भगवान् रामः षड्गुणाहं स्वभावतः'

इत्यादिकं श्रीवशिष्ठसंहितायाञ्च यथा स्वकरेण निजकेशसंस्कारे-कृतेऽन्योन्यमुपकारबोधो न भवति, तथैवावयवभूतेनात्मना अवयविनः श्रीरामस्य क्रियमाणे कैङ्कर्ये कृतेनोपकारभानं भवति । अयमेव रामोऽहम्, ब्रह्मैवाहम्, सर्वं भाजन जीव नहीं हूँ । मैं सत् चित् आनन्द स्वरूप हूँ । तथा नित्यमुक्त स्वभाव वाला परब्रह्म ही हूँ । जैसे श्रीरामजी हैं वैसी ही मैं हूँ इन दोनों में कोई भेद नहीं है । जैसे श्रीरामजी सर्वेश्वर हैं वैसे ही मैं भी स्वभावत सर्वेश्वरी हूँ जैसे श्रीरामजी षड्गुण ऐश्वर्य से युक्त हैं वैसे ही मैं भी स्वभावत षड्गुण ऐश्वर्य से युक्त हूँ' ऐसा श्रीवशिष्ठ संहिता में कहा है अतः दोनों तत्त्व एकन्हैं । जिस प्रकार कोई व्यक्ति अपने हाथों के द्वारा अपने केशों का संस्कार करता है, तो हाथ ने केश का उपकार किया ऐसी अनुभूति नहीं होती है, उसीप्रकार भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का कैङ्कर्य किये जाने पर, अवयव स्वरूप जीव के द्वारा अवयवी स्वरूप श्रीरामजी की सेवा से उपकार का बोध नहीं होता है । यही भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के साथ तादात्म्य भाव का अनुशीलन है । और जिस प्रकार महासागर के जल में पडा हुआ रुई के कण के अन्दर वाहर सर्वत्र जल अनुस्यूत होता है अतः जलके ही रूप में बोध होता है । उसी प्रकार श्रीरामचन्द्रजी के द्वारा अन्दर वाहर सर्वत्र व्याप्त होने से जीव की श्रीरामरूप से ही प्रतीति होती है । यही है मैं साक्षात् श्रीराम स्वरूप हूँ, मैं ब्रह्म स्वरूप ही हूँ, ब्रह्म स्वरूप से अतिरिक्त नहीं हूँ । सबकुछ दृश्य जगत् ब्रह्म स्वरूप ही है । यह आत्मा ब्रह्मात्मक है । इत्यादि जीव ब्रह्मैक्य विषयक श्रुति वचनों का यही तात्पर्य है । ब्रह्म तत्त्व का विज्ञानी उपासक अपने आत्मा के स्वरूप में ही परमात्मा की उपासना करे, यही उपास्य की उपासना का विधान है । अन्य प्रकार से उपासना नहीं करे । यही कहते हैं नमः शब्द जीव

ह्येतद् ब्रह्म, अयमात्मा ब्रह्म, इत्यादिश्रुतीनामाशयः । ब्रह्मविदुपासकः स्वात्मतयैवोपास्यमुपासीत नान्यथा । तदाह-नमः शब्दः जीववाचकः, रामशब्द आत्मार्थबोधकः ततः आय इति तादात्म्यबोधकः सम्बन्ध इति निर्गलितार्थः ॥३॥ वाचक है 'राम' शब्द आत्मा वाचक है उसके वाद आय जोडते हैं वह तादात्म्य सम्बन्ध बोधक है यह सारभूत अर्थ है ॥३॥

ननु जीवः श्रीरामाधीनस्वरूपस्थित्यादिभिरपृथक् सिद्धः । तादात्म्यानुभवेन 'रामोऽहं' मितिचिन्तयेदितिश्रीराममन्त्रस्यार्थ इतिचेत् तदा श्रीरामतन्मन्त्रयोर्वाच्य वाचकप्रसिद्धिहानिः स्यादत आह-

मन्त्रोऽयं वाचको रामो वाच्यः स्याद्योग एतयोः ।
फलदश्चैव सर्वेषां साधकानां न संशयः ॥२॥

यथा गामानयेत्युक्ते सामान्यस्यैव गवादेर्वाच्यत्वम् । नतु कपिलत्वादि विशिष्टस्य, तथैव अयं मन्त्रः वाचकः श्रीरामस्तु वाच्यः, सामान्यविशेष योरविनाभावात् ।एवं जीवपरमात्मनोः शेषशेषिभावात् जगत् शेषी इत्यर्थबोध कोऽपि मन्त्रः श्रीरामस्यैव वाचकः । ननु मन्त्रोजप्यः अर्थानुसन्धानेन किम्, अथ वा अर्थोऽनुसन्धेयः किं जपेन इत्यत आह-जपतदर्थानुसन्धानयोः योगः समेषां साधकानां मोक्षफलदः इत्यर्थः । सर्वेषां साधकानां मोक्षफलदत्वं दृढं कुर्वन्नाह न संशयः इति । तेन वाच्यार्थानुशीलनपूर्वकं वाचकानुष्ठानं साधकानां फलप्रदं भवति । अतोऽन्यवाच्यं वाचकं वा मत्वा येऽनुष्ठानं कुर्वन्ति तेषां मोक्षशून्यत्वं जायते । स्वरूपविशेषानुसन्धानपूर्वकं नाम्नः शक्तिविशेषः विशिष्टफलसाधको भवति । तथा लोकेऽपिशक्तिमत्पदार्थविशेषनामोच्चारणाद् भूतप्रेतप्रभृतयः पलायन्ते, न तु शक्तिहीननामोच्चारणात् । मन्त्रार्थानुसन्धानपूर्वकजपादेव, ब्रह्मविद् ब्रह्मैवभवति, योयद्रूपं स्मरति स तद्रूपोभवति ।

यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ॥

इत्यादिश्रुतिस्मृतिवचनानां विरोधसमाधानम्भवति । स्मृतीतिहास पुराणादिवचनेभ्यो वेदार्थरहस्यबोधात्, तेषु च बहुशः जीवानामीश्वरनियम्यत्वेन श्रवणात् शेषत्वबोधः, तदेकत्वावबोधस्तु स्वरूपस्थितिप्रवृत्यादीनामीश्वरनि

**यम्यतया तदपृथक्त्वसिद्धिः । विवर्तवादस्वीकारेतु मायाप्रेरकस्येश्वरस्यासेव्यत्व प्रसंगः प्रबन्धगुरुशिष्यादिपरम्परावैकल्यञ्च । तस्मात् स्वरूपानुसन्धानपूर्वकं नामिनोमन्त्रस्मरणं समुचितं सकलेष्टफलप्रदञ्च ॥२॥**

प्रश्न उठता है कि जीव का भगवान् श्रीरामजी के अधीन होने के कारण अपने स्वरूप स्थिति प्रवृत्ति आदि से श्रीरामजी से अभिन्न सिद्ध है। श्रीरामजी के साथ जीव तादात्म्यानुभव के द्वारा मैं श्रीराम स्वरूप हूँ यह चिन्तन करे यह यदि ब्रह्मतारक श्रीराम मन्त्र का अर्थ है तो भगवान् श्रीरामजी और उनका मन्त्र इनमें वाच्य वाचक भाव प्रसिद्धि की हानि होगी अत एव मन्त्रारम्भ करते हैं-

यह मन्त्र वाचक है भगवान् श्रीरामजी वाच्य हैं इन दोनों का परस्पर सम्बन्ध है। और सभी साधकों को मन्त्रार्थानुसन्धान पूर्वक जप करने से सायुज्य मोक्ष स्वरूप विशिष्ट फल प्रदान करनेवाला यह मन्त्र है, इसमें किसी तरह का सन्देह नहीं। जैसे गाय लाओ इस वाक्य का उच्चारण करने पर सामान्य (जाति वाचक) ही गो आदि अर्थ वाच्य होता है। न कि कपिलत्व श्रृङ्गित्व आदि विशिष्ट अर्थ का वाचक है। उसीप्रकार यह मन्त्र वाचक है, और श्रीराम अर्थ तो इस मन्त्र का वाच्यार्थ है। समान्य और विशेष का अविनाभाव सम्बन्ध है। अर्थात् विशेष सामान्य के विना नहीं रहता है। और सामान्य विशेष के विना नहीं रहता है। इसी तरह जीव और परमात्मा का शेष शेषीभाव सम्बन्ध होने के कारण से समस्त चराचर जगत् का अर्थ वशात् बोधक भी यह मन्त्र श्रीरामजी का ही वाचक है। अब प्रश्न उठता है कि मन्त्र जप करने योग्य है, फिर अर्थानुसन्धान से क्या प्रयोजन ?। अथवा मन्त्रार्थ अनुशीलन करने योग्य है, उसके जप करने से क्या फल ऐसी आशङ्का होने पर कहते, मन्त्र का जप और उसके अनुशीलन का परस्पर सम्बन्ध समस्त मन्त्र के साधकों (उपासकों) को सायुज्य मोक्ष फलप्रदान करनेवाला यह मन्त्र है यह भाव है। सभी साधकों को मोक्ष प्रदायकता को दृढ करते हुए, उपनिषद् कहती है इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है। इससे सिद्ध होता है कि वाच्यार्थ का अनुशीलन करते हुए वाचक श्रीराममन्त्र का जपानुष्ठान साधकों को मोक्ष फल प्रदायक होता है। अत एव अन्य वाचक मन्त्र अथवा अन्य वाच्य अर्थ को समझकर जो अनुष्ठान करते हैं, उनको मोक्ष फल प्राप्ति की शून्यता होती है। स्वरूप विशेष का अनुशीलन पूर्वक श्रीराम नाम में विशेष शक्ति है, और विशिष्ट फल का साधक तारक मन्त्र होता है। इस तरह लोक व्यवहार में भी शक्तिमान्

पदार्थ विशेष का नामोच्चारण करने से भूतप्रेत पिसाच आदि भाग जाते हैं, ऐसा देखा जाता है। न कि शक्तिहीन नाम के उच्चारण से भागते हैं। अतः मन्त्र के अर्थ का अनुशीलन पूर्वक जप से ही, ब्रह्म तत्त्व का विज्ञानी ब्रह्म स्वरूप होता है जो जिस स्वरूप का स्मरण करता है वह उसी स्वरूप को प्राप्त करलेता है। गीता में भी कहा है-जिन जिन भावों को साधक स्मरण करता हुआ अपने अन्त काल में इस शरीर को छोडता है, वह उन-उन भावों को ही प्राप्त करता है। हे अर्जुन वह साधक उन भावों के संस्कार से संस्कृत होने के कारण संस्कार वश उन रूपों को प्राप्त करता है। इत्यादि श्रुति स्मृति वचनों के विरोधों का समाधान भी होता है। स्मृति इतिहास और पुराण आदि के वचनों से वेदों के अर्थ का गूढरहस्य का बोध होने के कारण, और स्मृतिपुराणेतिहासादि में बहुत वार जीवों का ईश्वर के द्वारा नियन्त्रित करने योग्य के रूपमें सुने जाने से शेषत्व का बोध होता है। शेष एवं शेषी के तादात्म्य रूप एकत्व का बोध तो स्वरूप स्थिति प्रवृत्ति आदि का ईश्वर के द्वारा नियमन्त करने योग्य होने से ईश्वर एवं जीव में अपृथक्त्व की सिद्धि होती है। विवर्तवाद स्वीकार करने पर तो माया का प्रेरक ईश्वर का असेव्यत्व प्रसंग होगा। तथा अनेक दिव्य प्रबन्ध गुरु शिष्य परम्परा आदि की निष्फलता भी हो जायेगी। इसलिये मन्त्रार्थ स्वरूप का अनुसन्धान पूर्वक नामी के मन्त्र का स्मरण करना समुचित है यही समस्त अभिमत फल प्रदायक है ॥२॥

**परब्रह्मणः प्राप्तये तत्स्वरूपस्यानुसन्धानमावश्यकम्-इतिवक्ष्यमाणं विषयं हृदिनिधाय केवलध्यानादिना स्वरूपसाक्षात्कारो भवतीति पक्षस्य निराशाय वाचकोपासनया एव वाच्यः साक्षात्कृतोभवति तदवश्यमुपासनीयमित्याह-**

**यथा नामीवाचकेन नाम्ना योभिमुखोभवेत् ।**
**तथा वीजात्मकोमन्त्रोमन्त्रिणोऽभिमुखो भवेत् ॥३॥**

जिसका नाम होता है वह नामी कहा जाता है जिस प्रकार नामी वाचक नाम का उच्चारण करने से अनभिमुख या विमुख नामी सम्मुख हो जाता है उसी प्रकार वह्नि वीज है आत्मा जिसकी ऐसा यह वीजात्मक ब्रह्म तारक श्रीराम महामन्त्र है जिस मन्त्र का उच्चारण करने से मन्त्र वाच्य परब्रह्म सम्मुख हो जाते हैं अर्थात् मन्त्र का जप करने से परब्रह्म स्वरूप भगवान् श्रीरामजी अपने दृष्टि गोचर हो जाते हैं ।३।

**यस्य नाम भवति स नामी उच्यते । यथा देवदत्तादिः । तत्र देवदत्तादिनाम्ना समुच्चारितेन स अभिमुखोभवति विमुखोऽपि सम्मुखोभवति । तथैव वीजात्मकः अयं तारकमन्त्रः वह्निवीजरूपः षडक्षरः श्रीराममहामन्त्रः संकीर्त्यमानः मन्त्रिणः मन्त्रप्रतिपाद्यस्य श्रीरामस्य बोधकोऽस्ति । तेन तदुच्चारणेन श्रीराममन्त्रः श्रीरामं सम्मुखं करोति । अतः अयं श्रीराममन्त्रः सर्वेश्वरश्रीरामसाक्षात्काररहेतुरस्ति ।**

**पूर्वज्ञातोऽज्ञातस्वरूपो वा नामी नामोच्चारणेन सम्मुखोभवति तथैव ईश्वरोऽपि स्वनामोच्चारणमात्रेण साक्षात्कृतोभवति । स्वरूपस्मरणात् नामोच्चार णस्याधिकं महत्वमस्ति । अतएवोक्तं 'राम? त्वत्तोऽधिकं नामेति । यतोहि शरीरी विनासेतुनिर्माणेनैव नामजपेनापारं भवसागरं तरतीतिभावः ॥३॥**

परब्रह्म की प्राप्ति के लिये परब्रह्म के स्वरूप का अनुशीलन करना आवश्यक है इसलिये आगे कहा जाने वाला विषय को मनमें रखकर केवल ध्यान आदि के द्वारा ही स्वरूप साक्षात्कार होता है इस पक्ष का खण्डन करने के लिये । भगवत् स्वरूप वाचक मन्त्र की उपासना से ही मन्त्र वाच्य अर्थ का अर्थात् परब्रह्म का साक्षात्कार होता है । अतः परब्रह्म वाचक मन्त्र की उपासना अवश्य करनी चाहिये यह विचार कर मन्त्र का अवतरण करते हैं-

जिसका नाम होता है वह नामी कहा जाता है जैसे देवदत्त आदि । वहां पर देवदत्त आदि नाम समुच्चारित करने से वह देवदत्त सम्मुख हो जाता है विमुख होने पर भी सम्मुख होता है उसी प्रकार वीजात्मक यह तारक श्रीराम मन्त्र अग्नि वीज रूप यह षडक्षर श्रीराम मन्त्र सम्यक् उच्चारण करने पर मन्त्र प्रतिपाद्य श्रीरामजी का बोधक होता है । अतः मन्त्र के उच्चारण से मन्त्र श्रीरामजी को सम्मुख कर देता है। इसलिये यह श्रीराम मन्त्र भगवत् साक्षात्कार का कारण है ।

पहले से जाना गया स्वरूप अथवा अज्ञात स्वरूप वाला भी नामी नामोच्चारण से अभिमुख होता है उसीतरह परमेश्वर श्रीरामजी भी नामोच्चारण मात्र से साक्षात् दृष्टिगोचर होते हैं । स्वरूप का स्मरण करने के अपेक्षा नामोच्चारण का अधिक महत्व है इसलिये कहा गया है कि 'हे राम आपसे बढकर अधिक महत्त्वशाली आपका नाम है । क्योंकि प्राणी विना सेतु निर्माण के ही आपका नाम जपने से अपार भवसागर को पारकर जाता है ॥३॥

अथ वक्ष्यमाणपूजांगतया वीजादिन्यासमाह-

**वीजशक्तीन्यसेद्दक्षवामयोस्तनयोरपि ।**

**कीलोमध्येविनाभाव्यः स्ववाञ्छाविनियोगवान् ॥४॥**

वीजम् प्रथमाक्षरं शक्तिः अन्त्याक्षरं क्रमशः दक्षिणवामयोः स्तनयोः न्यसेत् । कीलः वीजशक्तिभ्यां पार्थक्येन चिन्तनीयः मध्यगतमक्षरत्रयं द्वयोर्मध्ये न्यसेत् । वीजशक्तिमध्येसंश्लिष्टतया वा उपासनीयः । स्वाभिलाषासिद्ध्यर्थं जपे विनियोगः कर्तव्यः ॥४॥

भगवदुपासना का अंग होने के कारण वीज आदि के अंगन्यासादि प्रकार कहते हैं वीज और शक्ति को वाम एवं दक्षिण स्तनों पर न्यास करे । श्लिष्ट अक्षर को मध्य में कीलक के मध्य में न्यास करे, अपनी अभिमत सिद्धि के लिये मन्त्र का विनियोग करे ।

वीज का अर्थ है प्रथम अक्षर, शक्ति का अर्थ है अन्तिम अक्षर इन दोनों को दाहिना एवं वायां स्तनों पर न्यास करे । कील का वीज एवं शक्ति से पृथकता पूर्वक चिन्तन करना चाहिये । अर्थात् मध्य के तीन अक्षर कील है उसे वीज और शक्ति के मध्य में न्यास करे । वीज और शक्ति के मध्य में कील अक्षर को संश्लिष्ट होने से सभी की एक साथ उपासना करनी चाहिये अपनी अभिलाषा की सिद्धि के लिये । जप में विनियोग करना चाहिये यह आवश्यक है ॥४॥

वीजशक्तिकीलन्यासाः सर्वेषु मन्त्रेषु सामान्याः इत्यत आह-

**सर्वेषामेव मन्त्राणामेषः साधारणः क्रमः ।**

**अत्र रामोऽनन्तरूपस्तेजसा वह्निना समः ॥५॥**

अत्र मन्त्रे रेफाश्रयत्वेन प्रणवहेतुत्वं शक्तित्रयं सहितमूर्तित्रयाश्रितत्वेन वह्नि वीजस्य प्रणवहेतुत्वं चराचरकारणत्वञ्च, सकलप्राणिमोक्षादिप्रदायकत्वञ्च । उपायोपेयफलविरोध्यादिबोधकत्वं मन्त्रार्थः ज्ञायते । अतोऽवगम्यते सर्वेषामेव मन्त्राणामेकार्थपरत्वम् । षडक्षरतारकश्रीराममन्त्रस्य तु सर्वकारणत्वं द्योत्यते । कारणस्वरूपविज्ञानेन कार्यस्वरूपविज्ञानात् । तेन षडक्षरज्ञानान्तरं सर्वमन्त्र विज्ञानंभवति । एषः क्रमः सर्वेषामेवमन्त्राणां सामान्यक्रमः । ऋते ज्ञानान्नमुक्तिरितिश्रुतिवचनात् स्वरूपादिज्ञानरहितस्य मुक्तिनिषेधात् । षडक्षरश्रीराम महामन्त्रद्वारैव सर्वेषां मुक्तिरिति निश्चीयते । 'ज्ञानमार्गञ्च नामतः' इतिश्रुत्या

**श्रीरामनाम्नो ज्ञानहेतुत्वम् । अन्येषां भगवन्मन्त्राणां स्वरूपादिज्ञानाजनकत्वेन न मोक्षप्रदातृत्वम् । अत्र सर्वेश्वरश्रीरामोऽनन्तरूपः परिच्छेदरहितम् । द्विभुजादिसहस्त्रभुजान्तंरूपं यस्य तथोक्तः । तदुक्तम्-'उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना । 'सर्वेषामवताराणामवतारीरघूत्तमः' 'सर्वेषामवताराणामावामेवा वतारिणौ' इत्याद्यागमोक्त्या च सर्वेश्वरश्रीरामस्य सर्वावतारित्वं सिद्धम् । तेजसा तेजस्वरूपेणैकगुणेन वह्नितुल्यः । तदुक्तम् 'अहं वैश्वानरोभूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः । पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमोभूत्वा रसात्मकः । इत्यादिस्मृतेः सर्वशरीराणां शरीरीविशिष्टस्वभावः । जगत्पालनार्थमग्निसोमनिष्ठभोक्तृभोग्यत्व गुणद्वयप्रधानः श्रीरामः अनन्तः वह्निसदृश इतिभावः ।।५।।**

वीज शक्ति कीलकादि न्यास सभी मन्त्रों में समान ही होता है अतः कहते हैं- सभी देवताओं के मन्त्रों का वीजादिन्यास समान क्रम से होता है। इस मन्त्र में भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अनन्त रूप धारी हैं जो अमित प्रभाव से अग्नि तुल्य हैं। इस ब्रह्मतारक षडक्षर श्रीराम मन्त्र में रेफ के प्रणव एवं ब्रह्मा आदि का आश्रय होने से प्रणव का कारणत्व है, तीन शक्ति के सहित तीन मूर्तियों को रेफाश्रित होने से वह्नि वीज का प्रणव हेतुत्व एवं चराचर जगत् कारणत्व ज्ञात होता है। उपाय उपेय फल और विरोधी आदि का बोधकत्व मन्त्र का अर्थ ज्ञात होता है। इसीलिये समझा जाता है सभी मन्त्रों का ही एक प्रयोजन परत्व है। लेकिन षडक्षर तारक मन्त्र का तो सर्वमन्त्र लोकादि कारण प्रकाशित होता है। कारण स्वरूप का विशिष्ट ज्ञान हो जाने से समस्त कार्य स्वरूप का विशिष्ट ज्ञान हो जाता है। इस कारण से षडक्षर तारक मन्त्र ज्ञान के वाद सभी मन्त्रों का विज्ञान हो जाता है। यह क्रम सभी मन्त्रों के विज्ञान में सर्व साधारण क्रम है। 'विज्ञान के विना मुक्ति नहीं होती है' इस श्रुति वचन से उपास्य देवता के स्वरूपादि ज्ञान से रहित उपासक के मुक्ति का निषेध होने से षडक्षर तारक मन्त्र के द्वारा ही सभी की मुक्ति होती है यह निश्चय किया जाता है। 'ज्ञान मार्ग को नाम जप से प्राप्त करे इस श्रुति से भगवान् श्रीरामजी के नाम का ज्ञान हेतुत्व सिद्ध है। अन्य भगवान् के मन्त्रों का स्वरूपादि ज्ञान जनक नहीं होने से मोक्ष प्रदायकत्व नहीं है। इस मन्त्र में भगवान् श्रीराम अनन्त स्वरूपधारी नामरूपादि गणना सीमा से अतीत दो भुजाधारी से लेकर सहस्त्र भुजा तक जिनका रूप है ऐसे, ऐसा कहा है, उपासकों के कार्य के लिये ब्रह्म की रूपकल्पना की गयी है, इस श्रुति वचन एवं सभी अवतारों

के अवतारी रघुकुलमणि श्रीरामजी हैं और 'सभी अवतारों के अवतारी हम दोनों अर्थात् श्रीसीतारामजी हैं' इन आगम वचनों से सर्वेश्वर श्रीरामजी का सर्वावतारित्व सिद्ध होता है। विलक्षण तेज स्वरूप एक गुण से भगवान् अग्नि तुल्य हैं। यही गीता में भी कहा है-मैं वैश्वानर (अग्नि) बनकर प्राणी मात्र के देह में आश्रित हूँ। चन्द्रमा बनकर समस्त ओषधियों को पुष्ट करता हूँ' इत्यादि वचनों से। सभी प्रकार के शरीरों का शरीरी विशिष्ट स्वभाव युक्त भगवान् श्रीरामजी हैं यह नियत है जगत् का पालन करने के लिये अग्नि चन्द्र निष्ठ भोक्तृत्व भोग्यत्व-ये दो गुण प्रधान हैं जिन में ऐसे श्रीरामचन्द्रजी अनन्त अग्नियों के समान हैं ॥५॥

**अथ श्रीरामस्य सोमात्मकत्वंबोधयन् श्रुतिराह-**

**सत्वनुष्णगुविश्वश्चेदग्निसोमात्मकं जगत्।**
**उत्पन्नं सीतया भाति, चन्द्रश्चन्द्रिकया यथा ॥६॥**

वे श्रीरामचन्द्रजी तो अनुष्णाशीत गुणात्मक चन्द्र हैं यह गतिशील संसार अग्निसोमात्मक है। अनन्त चन्द्र तुल्य आह्लादकारी हैं जिनसे परस्पर विपरीत गुणात्मक जगत् उत्पन्न हुआ वे जिस तरह चन्द्रमा चन्द्रिका से नित्य युक्त है उसी तरह श्रीरामजी श्रीसीताजी के साथ सुशोभित होते हैं ॥६॥

**वह्निरूपः स अनुष्णगु अनुष्णाशीतः गावः किरणाः यस्य चन्द्रविभूतिकत्वात् चन्द्रतुल्यः अनेकचन्द्रतुल्य इतिभावः, जगत्कारणस्य विलक्षणशक्तिमत ईश्वरस्य विपरीतगुणवदग्निसोमात्मकत्वेऽपि न हानिः। विश्वरूपः परेशश्रीरामो यदि अग्निसोमात्मकस्तदा तदुत्पन्नं जगदपि तद्रूपं भवितुमर्हिति। यथा चन्द्रः चन्द्रिकया शोभते तथा श्रीसीतया श्रीरामः शोभते ॥६॥**

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का सोमात्मकत्व प्रकाशित करती हुई श्रुति कहती है-

वह वह्नि रूप श्रीराम अनुष्णाशीत किरण जिसका है, ऐसे चन्द्र विभूति वाला होने से चन्द्र तुल्य हैं। अर्थात् अनेक चन्द्रों के तुल्य हैं। संसार के कारण विलक्षण शक्तिमान् ईश्वर का विपरीत गुण वाला अग्निसोमात्मक होने पर भी कोई दोष नहीं है। विश्वरूप श्रीरामजी यदि अग्निसोमात्मक हैं तो उससे उत्पन्न संसार भी अग्नि एवं सोम के समान ही शीत एवं ऊष्ण हो सकता है। जैसे चन्द्र चन्द्रिका से शोभित होता है, उसी तरह सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी अभिन्न स्वरूप से श्रीसीताजी के साथ शोभा प्राप्त करते हैं ॥६॥

**प्रकृत्या सहितः श्यामः पीतवासा जटाधरः ।**

**द्विभुजः कुण्डलीरत्नमालीधीरोधनुर्धरः ॥७॥**

श्यामः इन्द्रनीलमणिकान्तिः पीताम्बरधरः केशवान् जटाशब्दस्य केशोपलक्षकत्वात् बाहुद्वययुक्तः 'बाहूराजन्यः कृतः' इतिश्रुतेः धनुर्धरः, आयुध स्यातिप्रियत्वेन नित्यसहचारित्वम्, कुण्डली कुण्डलाभूषणसम्पन्नः, रत्नमाली, बहुमूल्यरत्नमालाधरः धीरः विकारकारणसत्यपि क्षोभरहितः श्रीरामोराजते ॥७॥

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी इन्द्र नीलमणि के समान नील कान्ति युक्त, पीतवर्ण कौशेयधारी सुन्दर श्यामल केश सम्पन्न, यहां पर जटा शब्द केश का उपलक्षक है, क्योंकि रत्नमाली कुण्डली आदि राज धर्मोपलक्षक है। दो भुजाओं वाले, क्योंकि वेद में बाहु शब्द में द्विवचन निर्दिष्ट है पुरुषसूक्त वेद वाक्य का यथार्थ विवेचन पुरुषसूक्त प्रकाश में किया हूँ अतः विशेषार्थी वहीं देखें। धनुष नामक आयुध को भगवान् का अतिशय प्रिय होने के कारण नित्य सहचारित्व है। कुण्डल नामक कर्णाभूषण धारी बहुमूल्य रत्नों की माला पहने हुए, विकार के विविध कारणों के होने पर भी किसी प्रकार के क्षोभ से रहित भगवान् श्रीरामचन्द्रजी विराजते हैं ॥७॥

**प्रसन्न वदनोजेता धृत्यष्टकविभूषितः ।**

**प्रकृत्या परमैश्वर्याजगद्योन्यांकितांकभृत् ॥८॥**

सदा प्रसन्नाननः सर्वविजयी धृष्टिप्रभृतिभिः अष्टाभिः मन्त्रिभिः समलङ्कृतः, प्रकृतिसहित्योक्तं विशेषेणाह-ब्रह्मादीनामपि नियमनकर्त्र्या चिद् रूपया स्वाभिन्नस्वरूपया प्रकृत्या श्रीसीतादेव्या निखिलजगत्कारणस्वरूपया अङ्कितः चिह्नितः वामाङ्कस्तं बिभर्ति स श्रीसीतासंश्लिष्टः श्रीरामः शोभते ॥८॥

सर्वदा प्रसन्नमुख कमलवाले सभी चराचर जगद् विजयी धृष्टि आदि आठ नित्य अमात्यो से सम्यक् अलङ् कृत, यद्यपि पहले प्रकृति सहित श्रीराम कह चुके हैं पुनः विशेष रूपसे कहते हैं-चित् स्वरूप प्रकृति अभिन्न रूपसे नित्य सहचारिणी श्रीसीतादेवीजी जो समस्त जगत् के कारण स्वरूपा हैं उनसे चिह्नित अङ्कित जिनका वाम अङ्ग है ऐसे श्रीसीतादेवीजी से संश्लिष्ट भगवान् श्रीरामजी शोभित हैं ॥८॥

**हेमाऽऽभया द्विभुजया सर्वालङ्कारया चिता ।**

**श्लिष्टकमलधारिण्या पुष्टः कोशलजात्मजः ॥९॥**

**पुनः परेशश्रीरामस्य विशेषतां प्रकाशयति-कोशलजा श्रीकौशल्या तस्या आत्मजः तनयः हेम्नः आभा इव आभा यस्या तया द्विभुजधारिण्या सर्वाभरणभूषितया चिद्रूपया जनकात्मजया कमलमालाधारिण्या श्रीसीतया श्लिष्टः श्रीसीताश्लिष्टजानन्दपरिपूर्णः श्रीरामः शोभते ।**

**अत्रोपनिषदि प्रकृतिजगद्योनिचिताप्रभृतिविशेषणैः श्रीसीतायाः जगत् कारणत्वम् परमैश्वर्यपूर्णत्वेन ब्रह्मादिनियामकत्वम् । श्रीसीतारामयोः परंप्रेम विह्वलत्वेन सर्वजनानन्दप्रदत्वञ्च विज्ञायते । लीलाविभूतिस्थस्य श्रीरामस्य परविभूतिनायकत्वज्ञापनाय कोशलजात्मज इत्युक्तम् ॥९॥**

पुनः भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की विशेषता को श्रुति प्रकाशित करती है→कोशल नरेश तनया श्रीकौशल्याजी के आत्मज श्रीरामचन्द्रजी सुवर्ण सदृश कान्तिशालिनी द्विभुज धारिणी सभी तरह के आभरणों से समलङ्कृत चित्स्वरूपिणी जनक तनया श्रीसीताजी जो कमल मालालंकृत हैं ऐसी श्रीसीतादेवीजी के संश्लेष जनित आनन्द से परिपूर्ण होकर सुशोभित हैं।

इस श्रीरामतापनीय उपनिषद् में प्रकृति जगद्योनि चित् आदि विशेषणों से वर्णित श्रीसीताजी का जगत् कारणत्व एवं ऐश्वर्य से पूर्ण होने से ब्रह्मा आदि का नियामकत्व कहा है। श्रीसीतारामजी के अभिन्न स्वरूप के वर्णन से सर्वानन्द प्रदत्व बताया गया है। लीला विभूति में स्थित श्रीरामजी का परम विभूति नायकत्व बोध कराने के लिये कोशलजात्मज शब्द से कथन है प्रकृत मन्त्र में "कमलधारिणी" विशेषण सर्वेश्वरी श्रीसीताजी के हेतु प्रयुक्त है। इसी विशेषण के कारण कतिपय साम्प्रदायिक साहित्यों में "कमलादेवी" लिखने की परिपाटि देखी जाती है एवं तदनुरूप ही अनेक साधकों को ज्ञान भी है तथा कमलादेवी का स्थान या उनकी छवी का अन्वेषण भी करते हैं पर वह कमलादेवी नाम की कोई अन्य देवी नहीं है इस वेदमन्त्र में लिखित 'कमलधारिणी' से ही कमलादेवी कहने की प्रथा वर्षों से चली आ रही है अतः साधकों को "देवी श्रीः" ऐसा सुधारकर शुद्ध पाठ तैयार करलेना चाहिये। श्रीवैष्णवों की देवी वेद एवं श्रीमद्रामायण विहीत सर्वेश्वरी श्रीसीताजी ही हैं अन्य नहीं ॥९॥

श्रीरामस्य वामाङ्के श्रीसीतयाश्लिष्टत्वमभिधाय, दक्षिणे श्रीलक्ष्मणेनालङ्कृतत्वमभिधत्ते-

**दक्षिणे लक्ष्मणेनाथ सधनुः पाणिना पुनः ।**
**हेमाभेनानुजेनैव तदा कोणत्रयं भवेत् ॥१०॥**

अथ अपरे दक्षिणे भागे अनुजेन भ्रात्रा धनुर्धरेण श्रीलक्ष्मणेन पुनः सम्बद्धः । तदा श्रीसीतारामलक्ष्मणाः त्रयः प्रतिपादिताः, तेषामाश्रयत्वेन त्रिकोणंभवेत् । त्रिकोणस्य परस्पराकारतया श्रीरामदेहभूतयन्त्राकारस्य जगद्हेतुत्वमुक्तम् । श्रीलक्ष्मणस्य च सर्वरक्षाभारसहत्वमुक्तम् ॥१०॥

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का वाम अङ्ग में श्रीसीताजी आश्लिष्ट होना कहकर इस मन्त्र में दक्षिण भाग में श्रीलक्ष्मणजी से अलंकृत होना कहते हैं→इसके वाद श्रीरामजी के दक्षिण भाग में श्रीरामजी के पश्चात् अवतार ग्रहण करनेवाले हाथ में धनुष वाण को धारण किया हुआ स्वर्णिम कान्ति परिपूर्ण श्रीलक्ष्मणजी से श्रीरामजी सम्बद्ध सुशोभित होते हैं । श्रीसीताजी और श्रीलक्ष्मणजी से श्रीरामजी को सम्बद्ध होने पर इन श्रीसीताजी श्रीरामजी और श्रीलक्ष्मणजी का आश्रय होने के पश्चात् त्रिकोण बन जायगा । त्रिकोण रेखा में एक एक रेखा के परस्पर आश्रित होने से एक दूसरे का आकार बनता है जो श्रीरामजी का देहभूत यन्त्र के आकार का जगद् हेतुत्व कहा गया है । और श्रीलक्ष्मणजी को सर्वरक्षा भारसहत्व कहा गया है ॥१०॥

श्रीलक्ष्मणस्यापि पूजाङ्गभूतो मन्त्रो वर्तते, तदाह-

**तथैव तस्य मन्त्रश्च यश्चाणुश्च स्वडेन्तया ।**
**एवं त्रिकोणरूपं स्यात् तं देवा ये समाययुः ॥११॥**

यथैव श्रीरामस्य मन्त्रस्तथैव श्रीलक्ष्मणस्यापि मन्त्रस्तमुद्धरन्नाह श्रीलक्ष्मणसम्बन्धी अणुः यो मन्त्रः स स्वङेन्ततया वोद्धव्यः, स्वशब्देन बीजनाम्नीज्ञेये, चकारः नमोऽन्तसमुच्चयार्थः, तेन 'लँ लक्ष्मणाय नमः' इत्याशयः । 'सीतारामौ तन्मयावत्र इतिश्रीराममन्त्रस्यैव श्रीसीतामन्त्रज्ञापनात् न पृथक् श्रीसीतामन्त्रः इतिकेचित् । किन्तु मन्त्रेऽस्मिन् प्रथमचकारः नमोऽन्तसमुच्चयार्थः द्वितीयचकारः श्रीजानकीमन्त्रसमुच्चयायातः 'श्रीं सीतायै स्वाहा' इतिनिष्पन्नः । यथाऽगस्त्यसंहितायाम्-श्रीवीजादयोपि सीतायै स्वाहान्तोऽयं षडक्षरः । एवं श्रीराम

**मन्त्राद्यधिष्ठितं त्रिकोणमुपसंहरति । इत्थं श्रीजानकीलक्ष्मणोपेतं देवं श्रीरामचन्द्रं रावणपीडिता देवा इन्द्रादयः शरणं समाजग्मुः ॥११॥**

श्रीलक्ष्मणजी का भी पूजा का अङ्गभूतमन्त्र है इस आशय को प्रकाशित करते हैं कि श्रीलक्ष्मणजी के मन्त्र का भी उद्धार करते हैं-श्रीलक्ष्मणजी सम्बन्धी जो मन्त्र है वह लक्ष्मण के अन्त में ङे विभक्ति चतुर्थी एक वचन जोडकर समझना चाहिये, यहां पर स्व शब्द से मन्त्र का वीज लं एवं नाम लक्ष्मण में चतुर्थी विभक्ति जोडकर समझें । च शब्द का प्रयोग अन्त में नमः शब्द जोडने पर पूर्ण मन्त्र होता है । इससे 'लं लक्ष्मणाय नमः' यह मन्त्र का स्वरूप है, यह अभिप्राय है, 'सीतारामौ तन्मयावत्र पूज्यौ' इस कथन के द्वारा श्रीराम मन्त्र के अन्तर्गत ही श्रीसीता मन्त्र है अतः श्रीराम मन्त्र से अलग श्रीसीता मन्त्र नहीं वताई गई है यह कुछ साधकों का मत है । किन्तु इस मन्त्र में प्रथम चकार श्रीलक्ष्मण मन्त्र में नमः बोधक है एवं द्वितीय चकार श्रीसीता मन्त्र बोधक है जैसे 'श्रीं सीतायै स्वाहा' यह छ अक्षरों वाला मन्त्र है । इस प्रकार श्रीराम मन्त्र आदि में अधिष्ठित त्रिकोण का उपसंहार करते हैं । यही अगस्त्य संहिता में कहा है-'श्रीं' इस आदि वीज के सहित 'सीतायै स्वाहा' यह षडक्षर मन्त्र है । इसप्रकार श्रीजानकीजी एवं श्रीलक्ष्मणजी के सहित भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के रावण से पीडित इन्द्रादि देवगण शरणागत हुए ॥११॥

**स्तुत्या प्रभुः श्रीरामः प्रसीदतीतिनिरूपयन्नाह-**

**स्तुतिं चक्रुश्च जगतः पतिं कल्पतरौस्थितम् ।**
**कामरूपाय रामाय नमो मायामयाय च ॥१२॥**

**कल्पतरोः अधः रत्नसिंहासने स्थितं सर्वलोकस्वामिनं सर्वेश्वरश्रीरामं तुष्टुवुः । हे स्वामिन् ? कामदेव इव सुन्दरदिव्यदेहधारिणे, अथवा स्वेच्छया द्विभुजादिसहस्त्रभुजान्तरूपधारिणे कामेन-स्वेच्छयारूपाणि यस्य स कामरूपः तस्मै इति व्युत्पत्तेः । मायामयाय ज्ञानमयाय, अथवा त्रिगुणात्मिकायामायाया आमयायरोधकाय योगिनां रमणस्थानाय ते नमः ॥१२॥**

स्तुति के द्वारा ही प्रभु श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्न होते हैं यह प्रतिपादन करते हुए कहते हैं-कल्पवृक्ष के छाया में बहुमूल्य रत्नसिंहासन पर विराजमान समस्त चराचर लोक के स्वामी श्रीरामचन्द्रजी की देव वर्ग स्तुति किये । हे स्वामी ? कामदेव के

समान अत्यन्त सुन्दर दिव्य देह को धारण करने वाले अथवा अपनी इच्छानुसार दो भुजाओं वाला से लेकर सहस्रभुज पर्यन्त स्वरूप को धारण करनेवाले। कामेन-अपनी इच्छा से ही अनन्त रूप जिनके हो जाते हैं उसे काम रूप कहते हैं। इस व्युत्पत्ति से स्वेच्छानुसार अनन्त रूपधारी मायामय ज्ञानमय अथवा त्रिगुणात्मिका माया के आमय प्रतिरोधक तथा योगियों के रमण स्थान सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी को प्रणाम है। ऐसी स्तुति सभी वर्गों के साधकों ने किये ॥१२॥

**नमो वेदादिरूपाय ओंकाराय नमोनमः ।**
**रमाधराय रामाय श्रीरामायात्ममूर्तये ॥१३॥**

**वेदानादिः मूलम् तस्य वह्निवीजं तदेव स्वरूपं यस्यात एव ॐ काराय प्रणवस्वरूपाय, वह्निवीजवाच्यत्वेन तत्कार्यभूतप्रणवस्य वाच्याय 'यस्य निःश्वसितं वेदाः' इतिवेदाविर्भावकारणाय रमां श्रीसीतां प्रीत्याधिक्यात् स्ववामाङ्केध रति तस्मै श्रीरामाय सर्वाभिरामाय, श्रियं रमयति 'रामोरमयतां वरः' इति श्रीमद्रामायणोक्तेः स्तस्मै अथवा-श्रियाभिन्नः श्रीरामस्तस्मै 'अनन्याराघवेणाहं भास्करेण यथा प्रभा' 'अनन्या च मया सीता भास्करेण प्रभा यथा' इत्यादि रूपेण श्रीमद्रामायणोक्तत्वात् श्रीरामाय नमः ॥१३॥**

वेद अनादि है, उस वेद का मूल आधार श्रीराम महामन्त्र का वीज 'रां' है, वही स्वरूप है जिसका यही यहां कहते हैं इसीलिये ॐकार स्वरूप प्रणव स्वरूप के लिये वह्नि वीज का वाच्यत्व होने से ॐकार ''रां' वीज का कार्य है उस ॐकार के लिये कहा भी है जिस परमात्मा का निःश्वास सभी वेद हैं अर्थात् वेद के आविर्भाव के कारण, रमा श्रीसीताजी को प्रेम की अधिकता के कारण अपने वाम अङ्क में वाणी स्वरूपा होने से धारण करते हैं उस श्रीरामजी के लिये अर्थात् सभी के लिये सभी तरह से रमणीय हैं जो श्री को आनन्दित करते हैं, अथवा जो श्रीसीताजी से अभिन्न स्वरूप श्रीरामजी हैं उन श्रीरामजी के लिये प्रणाम है ॥१३॥

**जानकीदेहभूषाय रक्षोघ्नाय शुभाङ्गिने ।**
**भद्राय रघुवीराय दशास्यान्तकरूपिणे ॥१४॥**

**जानक्याः श्रीसीतायाः देहः दिव्यशरीर एव भूषाशरीरालंकारो यस्य श्रीजानकीदेहभूषाभूषणरूपो वा तस्मै राक्षसगणहन्त्रे शोभनाङ्गाय मङ्गलरूपाय**

रघुवंशिनाम् मध्ये वीराय दशास्यो रावणः तस्य अन्तको यमः तस्य रूपं यस्य तस्मै, इत्थं परेशश्रीरामस्य स्वाश्रितजनरञ्जनकत्वं तद्विरोधिनां च विरोधित्वं सूचितं भवति ॥१४॥

जनकतनया श्रीसीताजी का दिव्य देह ही शरीर का अलङ्कार है जिनका, अथवा श्रीजानकीजी के देह में जो आभूषण स्वरूप हैं ऐसे श्रीरामचन्द्रजी के लिये राक्षस गण का विनाश करनेवाले सुन्दर है शरीर का अवयव जिनका परम मङ्गल स्वरूप रघुवंशियों के मध्य में श्रेष्ठतम वीर पुरुष दशमुख रावण का वध करने के लिये यमराज स्वरूप भगवान् श्रीरामचन्द्रजी को प्रणाम-स्तुति हो, इस मन्त्र से श्रीरामजी का अपने आश्रिजन मन रंजकत्व एवं अशरणजन विरोधित्व प्रकाशित होता है ॥१४॥

**रामभद्र?महेष्वास? रघुवीर?नृपोत्तम ? ।**
**भो दशास्यान्तकास्माकं रक्ष देहि श्रियञ्च ते ॥१५॥**
**त्वमीश्वर्यादापयाथ सम्प्रत्याश्वरिमारणम् ।**
**कुर्वितिस्तुत्वा देवाद्यास्तेन सार्धं सुखं स्थिताः ॥१६॥**

भद्राणि कल्याणानि यस्मात् तादृशः हे राम ? महद् दिव्यं इष्वासं शार्ङ्गधनुः यस्य स रघुवंशिमध्येश्रेष्ठवीरनृपेषु उत्तमः तत् सम्बोधने हे दशमुखस्य रावणस्य अन्तक? अस्मान् रक्ष अत्र कर्मणिषष्ठी, रावणोपद्रवात् त्राहि ॥१५॥

ते रक्षाश्रियौ ददाति या ईश्वरी तया श्रीसीतादेव्या श्रीरामापेक्षया अधिकं दयाशीलत्वं 'पापानां वा शुभानां वा वधार्हाणामथापि वा । कार्यं कारुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति' 'भवेयं शरणं हि वः' इत्यादिश्रीमद्रामायणोक्त्या श्रीसीतायां व्यञ्जितम् सम्प्रति रावणोपद्रवकालेऽधुना आशु रावणनामकमरिं जहि । इतिस्तुतिं कृत्वा देवाद्याः साक्षात् कृतेन श्रीरामेण सार्धं सुखपूर्वकं यथा स्यात् तथा स्थिताः ।

अत्र देवैः ऋषिभिश्च कालभेदेन श्रीरामस्य स्तुतिकृता इत्यवगम्यते । देवस्तुतौ कल्पतरोरधः स्थितः श्रीरामोविषयः, तथा च स्तुतिं चक्रुः इतिभूतकाल निर्देशः, तेन वनसावात् पूर्वकालीनत्वसंकेतः, तत्र कुण्डलीरत्नमालीत्याद्युक्तेः ऋषिस्तुतौ वनस्थः श्रीरामोविषयः, तत्र स्तुवन्तीति वर्तमाननिर्देशः, इत्थं रावणवधार्थं देवादिभिः प्रार्थितः श्रीरामः विहारभूमिस्थोऽपि विष्णवादिभिरवध्यं

**तं ज्ञात्वा परमकारुणिकोदेवादीनामभिमतसिद्धये, रावणस्य नित्यसुखप्राप्तये च वधघटनार्थं कैकेयीदशरथवरयाञ्चादिमिषेण वनं गतवान् तत्र रावणवधार्थं पुनः ऋषयस्तुवन्तीति निर्गलितार्थः ॥१६॥**

भद्र अर्थात् विविध प्रकार के कल्याण जिनसे होता है ऐसे हे श्रीराम ? जिनका विशाल दिव्य धनुष है रघुवंशी राजाओं के मध्य श्रेष्ठ वीर ? हे दशमुख रावण के अन्तक हे श्रीरामजी ? सभी की आप रावण जनित कष्टों से रक्षा करें । अस्माकम् पद में कर्म अर्थ में षष्ठी विभक्ति है । अतः रावण के उपद्रव से रक्षा करें ऐसा अर्थ सम्पन्न होता है ॥१५॥

ते यह स्त्री लिङ्ग का द्विवचन है, रक्षा एवं लक्ष्मी को देनेवाली ईश्वरी श्रीसीतादेवीजी के द्वारा यहां पर श्रीरामजी की अपेक्षा अधिक करुणाशीलता श्रीसीतादेवीजी में अभिमत है क्योंकि श्रीमद्रामायण में 'पाप करनेवाले हों या शुभ करनेवाले हों या वध के योग्य हों उन सभी पर परेश श्रीरामजी को दया करनी चाहिये' 'यदि आप सव मेरे शरण आई हैं तो सवकी रक्षा करुंगी' इसप्रकार पीडा पहुँचाने वाले सभी को अभय प्रदान की । इस समय राक्षसराज रावण नामक शत्रु को आप मार डालें, इसप्रकार स्तुति करके देवता आदि स्तुतिवश दृष्टिगोचर हुये श्रीरामचन्द्रजी के साथ निवास किये ।

इस उपनिषद् में देवताओं एवं ऋषियों के द्वारा कालभेद निर्देश के कारण भिन्न भिन्न समय में स्तुति की गयी यह प्रतीत होता है । भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की जब देवताओं के द्वारा स्तुति की गयी है, उस समय कल्पवृक्ष के तल में स्थित भगवान् श्रीरामजी का स्तुति विषय है । तथा क्रिया पद में परोक्षभूत कालका निर्देश कर 'स्तुतिं चक्रुः' कहा है । इससे वनवास काल से पूर्वकालीनत्व स्तुति की सूचना होती है । क्योंकि वहां पर कुण्डली रत्नमाली आदि विशेषण दिया गया है । ऋषियों की स्तुति में वनवास में स्थित भगवान् श्रीरामजी की स्तुति के विषय हैं । वहां पर 'स्तुवन्ति' यह वर्तमान काल की क्रिया का निर्देश किया गया है । इसप्रकार दशमुख रावण का वध करने के लिये देवताओं आदि के द्वारा प्रार्थित होने पर श्रीरामजी बिहार भूमि में स्थित होने पर भी श्रीविष्णु आदि देवताओं के द्वारा नहीं मारा जा सकने वाला उस रावण को जानकर परम कारुणिक भगवान् श्रीरामजी देवताओं की अभीष्ट सिद्धि के लिये, और रावण को नित्य सुख की प्राप्ति हेतु रावण वध की योजना बनाने के

लिये कैकेयी माता का राजा दशरथजी से वरदान मांगना आदि वहाने से वनवास में गये। वन में पुनः भगवान् से ऋषिगण रावण वध के लिये प्रार्थना करते हैं। यह प्रार्थनाओं का अभिप्राय है ॥१६॥

**स्तुवन्त्येवं हि ऋषयः तदा रावण आसुरः ।**
**रामपत्नीं वनस्थां यः स्वनिवृत्यर्थमाददे ॥१७॥**

**पूर्वोक्तप्रकारेण ऋषिवर्गाणां प्रार्थनासम्पादनेऽपि गाढापराधाभावात् शिवभक्तस्य रावणस्य वधानौचित्यमिति, स्वकर्मानुसारेणान्तर्यामिप्रेरितोराव णोघोरमपराधं कृतवान् परिणामस्वरूपतः छायास्वरूपां श्रीसातां जहार ऋषीणां स्तुतिकाले एव आसुरस्वभावोरावणः वने स्थितां श्रीरामपत्नीं श्रीसीतां यः स्वसंसारनिवृत्तिहेतोः स्वमरणोत्तरकाले श्रीरामप्राप्तिजनितानन्दोपलब्धये श्रीरामा भिन्नरूपामपि छायावैगुण्यमात्रां श्रीसीतामाजहार "अपिचास्या विशालाक्ष्या न किञ्चिदुपक्षये । विरूपमपि चाङ्गेषु सुसूक्ष्ममपि लक्षणम् ॥ छायावैगुण्यमात्रं तु शङ्के दुःखमुपस्थितम् । अदुःखार्हामिमां देवीं वैहायसमुपस्थिताम्" इतिश्रीमद्रा-मायणोक्तेः ॥१७॥**

रावण के वध हेतु पूर्वोक्त रूपसे ऋषि एवं देव वर्ग के स्तुति करने पर भी कठोर अपराध के विना भगवान् शङ्कर के भक्त रावण का वध किया जाना उचित नहीं है। इसलिये अपने कर्म के अनुसार अन्तर्यामी श्रीरामजी के द्वारा प्रेरित होकर रावण भयङ्कर अपराध के परिणाम स्वरूप रावण छाया स्वरूपा श्रीसीताजी का हरण किया। यानी उन ऋषिगण के स्तुति काल में ही आसुर स्वभाव वाला वह राक्षस रावण वन में निवास करती हुई भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की धर्मपत्नी श्रीसीताजी को अपनी जन्म मरण परम्परा स्वरूप संसार की निवृत्ति के लिये अर्थात् अपनी मृत्यु के परवर्ती समय में श्रीरामजी की प्राप्ति (साक्षात्कार) जनित आनन्द की उपलब्धि के लिये 'छाया वैगुण्यमात्रं तु शङ्के दुःखमुपस्थितम्' इस श्रीमद्रामायण के वचनानुसार श्रीरामजी से अभिन्न स्वरूपा होने पर भी मात्र छाया स्वरूपा श्रीसीताजी का आहरण किया ॥१७॥

**अथ श्रीरामशब्दस्य रा इत्यादाय वनस्थामित्यस्य वनशब्देन रावणस्य निर्वचनं कुर्वन्नाह ।**

**स रावण इतिख्यातो यद्वा रावाच्च रावणः ।**
**तद् व्याजेनेक्षितुं सीतां रामोलक्ष्मण एव च ॥१८॥**
**विचेरतुस्तदाभूमौ देवीं सन्दृश्य चासुरम् ।**
**हत्वा कवन्धं शवरीं गत्वा तस्याज्ञयातया ॥१९॥**
**पूजिता वीरपुत्रेण भक्तेन च कपीश्वरम् ।**
**आहूय संशतां सर्वमाद्यन्तं रामलक्ष्मणौ ॥२०॥**

रुशब्दे रावाद् रावणः, रावयतिरोदयति इति रावणः । तेन दुराचरणात् रावणः प्रसिद्धोऽभूत् । श्रीसीताहरणोत्तरसमये श्रीसीतान्वेषणव्याजेन श्रीराम लक्ष्मणौ श्रीसीतामवलोकयितुं वने विचेरतुः श्रीसीतान्वेषणमिषेणैव कवन्ध नामकमसुरं भूमौ दृष्ट्वा तञ्च कवन्धं हत्वा, अभिमुखमागत्यविज्ञापितवत्या तत्रोपगम्य शवर्यापूजितः तस्या निर्देशेन अथवा तया पूजितौ, ईरयति इति ईरः वायुः तस्य पुत्रेण श्रीहनुमता द्वारेण कपीश्वरं सुग्रीवमाहूय सर्ववृत्तमाद्यन्तं शंसता मुक्तवन्तौ । श्रीरामलक्ष्मणौ वायुपुत्रेण सुग्रीवमाहूय सर्ववृत्तान्तं कथयामासतुः ॥१८/१९/२०॥

रु का शब्द करना अर्थ होता है । लोक को क्रन्दन कराने वाला रावण हुआ। जो रुलाता है उसे रावण कहते हैं। इसलिये दुराचरण करने से रावण प्रसिद्ध हुआ। श्रीसीताजी के हरण के पश्चाद् वर्ती समय में श्रीसीताजी का अन्वेषण करने के वहाने भगवान् श्रीरामचन्द्रजी एवं श्रीलक्ष्मणजी श्रीसीताजी को देखने के लिये वन में विचरण किये । और श्रीसीताजी को ढूढने के वहाने ही कवन्ध नामक असुर को भूमि पर देखे वधार्थी उस कवन्ध को मारे दिव्य शरीर उसके अपने सामने उपस्थित होकर निवेदन करने पर शवरी के आश्रम में जाकर शवरी के द्वारा पूजित हुए । उसके निर्देश से अथवा उसके द्वारा पूजित होने के वाद । ईर का अर्थ है प्रेरणा, जो प्रेरित करता है, वह ईर अर्थात् वायु उनका पुत्र श्रीहनुमानजी के द्वारा कपीश्वर सुग्रीव को बुलाकर आदि से लेकर अन्त तक समस्त समाचार कहे । श्रीरामजी और श्रीलक्ष्मणजी श्रीहनुमानजी के द्वारा सुग्रीव को बुलाकर उसको सम्पूर्ण समाचार सुनाये ॥१८/१९/२०॥

**स तु रामे शङ्कितः सन् प्रत्ययार्थं च दुन्दुभेः ।**
**विग्रहं दर्शयामास यो रामस्तमचिक्षिपत् ॥२१॥**

स तु श्रीसुग्रीवो बालिवधस्वरूपं महत् कार्यं सम्पादयितुमयं श्रीरामः सक्षमो नवेति परेशश्रीरामविषये सन्दिग्धः सन्नभूत् । ततः श्रीरामः श्रीसुग्रीवस्य सन्देहनिवारणार्थं विश्वासजननार्थं च, दुन्दुभिनामकस्य दैत्यस्य शरीरं अवालोकयामास, बालिं विहाय अन्यस्यावध्यस्य दुन्दुभिदैत्यस्य शरीरदर्शनेन श्रीरामस्य बालिवधसामर्थ्यं ज्ञातं भवतीति । अस्थिपर्वत इव दुन्दुभेः शरीरं दृश्यतेस्म । तं दर्शयामास । यः परेशश्रीरामः सुग्रीवेण जिज्ञासितः, सन् श्रीरामो दुन्दुभेः शरीरमनायासेनाङ्गुल्यग्रभागेन शतयोजनमचिक्षिपत् ॥२१॥

श्रीसुग्रीवजी ने यह विचार किया कि बालि वधरूपी महान् कार्य को सम्पादन करने में सक्षम होंगे कि नहीं इसतरह परेश श्रीरामजी के सामर्थ्य के विषय में सन्देह ग्रस्त हो गये । तत्पश्चात् श्रीरामजी को श्रीहनुमानजी ने सन्देह निवारण करने के लिये और श्रीसुग्रीवजी के विश्वास को उत्पन्न करने के लिये दुन्दुभि नामक दैत्य का शरीर दिखलाये । बालि को छोडकर किसी अन्य व्यक्ति के द्वारा नहीं वध करने योग्य दुन्दुभि नामक दैत्य का शरीर को देख लेने के वाद श्रीरामजी का बालि वध करने का सामर्थ्य को श्रीहनुमानजी के द्वारा ज्ञात करलिया जायगा । मानो हड्डियों का पहाड हो ऐसा दुन्दुभि का शरीर दिखाई देता था, उसे श्रीहनुमानजी ने श्रीरामजी को दिखाया । जो सुग्रीव के द्वारा जिज्ञासा का विषय बनाया गया था उस दुन्दुभि के शरीर को अनायास ही अंगुली के आगे के भाग से बहुत दूर फेंक दिया, यानी श्रीरामजी ने दश योजन पर्यन्त अस्थि पर्वत को फेंक दिया ॥२१॥

**सप्ततालान् विभिद्याशुमोदते राघवस्तदा ।**
**तेन हृष्टः कपीन्द्रोऽसौ सरामस्तस्य पत्तनम् ॥२२॥**

आशु शीघ्रं सप्ततालवृक्षान् विपरीतदिक्षुस्थितान् एकेन बाणेन विशेषेणभिन्नान् विधाय तस्मिन् समये श्रीरामः प्रसन्नतामनुभवतिस्म । अद्भुतेन कर्मणाऽनेन चकितः कपीन्द्रः असौ सुग्रीवः परेशश्रीरामेण सहितः बालिनोनगरं प्रसन्नः सन् जगाम ॥२२॥

दुन्दुभि नामक दैत्य के अस्थिकाय फेंकने के वाद अपना शौर्य परिचय के लिये

सात ताल वृक्षों जो परस्पर विपरीत दिशाओं में स्थित थे उन्हें एक ही बाण से विशेष रूपमें काटकर उस समय भगवान् श्रीरामजी प्रसन्नता का अनुभव किये, और आश्चर्य कारक इस कार्य से चकित वानरेन्द्र सुग्रीवजी के साथ श्रीरामजी बालि के नगर किष्किन्धा में प्रसन्नता पूर्वक गये ॥२२॥

**जगामागर्जदनुजो बालिनो वेगतो गृहात् ।**
**बाली तदा निर्जगाम, तं बालिनमथाहवे ।**
**निहत्य राघवो राज्ये सुग्रीवं स्थापयेत्ततः ॥२३॥**

**अनुजः सुग्रीवः बालिनः गृहं गतवान् अगर्जत्-गर्जनां च कृतवान्, तदा सुग्रीवगर्जनसमकाले गृहात् वेगेन बाली निर्गतवान्, अथ तं बालिनं आहवे युद्धे श्रीरामः सुग्रीववैरीभूतं मारयित्वा तस्य कनीयासं भ्रातरं सुग्रीवं राज्ये अस्थापयत् ॥२३॥**

बालि का छोटा भाई सुग्रीव बालि के नगर किष्किन्धा जाकर गर्जना किया। उस सुग्रीव के गर्जन काल में ही बालि अपने घर से वेग के साथ निकल पडा। इसके वाद संग्राम में भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ने बालि को मारकर उसके छोटे भाई सुग्रीव को राज्य सिंहासन पर वैठाये ॥२३॥

**हरीनाहूय सुग्रीवस्त्वाह चाशाविदोऽधुना ।**
**आदाय मैथिलीमद्य ददताश्वाशु गच्छत ॥२४॥**

**अथ राजा सुग्रीवः वानरान्नाकार्य तान्नाह हे दिशां ज्ञातारो वानराः यूयमधुना अस्मिन्नेव समये वेगातिशयेनशीघ्रं मैथिलीमानीय राघवस्य कृते ददत, अतो यूयं यथाशीघ्रं गच्छत ॥२४॥**

इसके पश्चात् किष्किन्धा के राजा सुग्रीवजी ने वानरों को बुलाकर उन वानरों को कहा कि तुम लोग इसी समय में अतिशय वेग पूर्वक श्रीमैथिलीजी को पता लगाकर आओ एवं उन्हें श्रीरामचन्द्रजी को दे दें। हे दिशाओं के जानकार आप लोग यथा शीघ्र पता लगाने के लिये जायें ॥२४॥

**ततस्ततार हनुमान् अब्धिं लङ्कां समाययौ ।**
**सीतां दृष्ट्वाऽसुरान् हत्वा पुरं दग्ध्वा तथा स्वयम् ॥२५॥**

**आगत्य रामेण सह न्यवेदयत तत्त्वतः ॥२६॥**

तत्पश्चात् महावीरः श्रीहनुमान् समुद्रं लङ्घितवान् पुनः लङ्कां च समाययौ, लङ्कायां श्रीसीतां साक्षात्कृत्य, अनेकान्नक्षयकुमारप्रभृतिराक्षसांश्च हत्वा, लङ्कापुरीं भष्मसात् कृत्वा स्वयमक्षतः श्रीहनुमान् श्रीरामसान्निध्यमागत्य याथातथ्येन निखिलं समाचारं श्रीरामचन्द्राय आवेदयत् ॥२५/२६॥

तत्पश्चात् महान् वीर श्रीहनुमानजी श्रीसीताजी का पता लगाने के लिये समुद्र को लाङ्घ गये, पुनः रावण पालित लङ्का नगर में प्रवेश किये। लङ्का नगरीस्थ अशोक वन में श्रीसीताजी से मिलने के वाद अक्षय कुमार आदि बहुत से राक्षसों को मारकर, लङ्का नगरी को जला डाला। तत्पश्चात् स्वयं अक्षत श्रीहनुमानजी श्रीरामचन्द्रजी के पास आकर, जैसा लङ्का में देखा था उसे वास्तविक रूपसे समस्त वृतान्त श्रीरामचन्द्रजी को निवेदित किया ॥२५/२६॥

**तदा रामः क्रोधरूपी तानाहूयाथ वानरान् ।**
**तैः सार्धमादायास्त्रांश्च पुरींलङ्कां समाययौ ॥२७॥**

श्रीहनुमता श्रीसीतासमाचारनिवेदनानन्तरम् भगवान् श्रीरामचन्द्रः रावणदुर्विनयजनिताविष्कृतं क्रोधरूपं यस्य स तान् वानरान् आहूय तैः वानरैः सह अस्त्रान् आदाय तां लङ्काभिधानां नगरीम् समाययौ ॥२७॥

श्रीहनुमानजी के द्वारा श्रीसीताजी के विषय में श्रीरामजी को समाचार निवेदन करने के पश्चात् भगवान् श्रीरामचन्द्रजी रावण के दुर्विनय पूर्ण आचरण से उत्पन्न प्रकट किया गया है क्रोधरूप जिनका ऐसे वे उन सभी वानरों को बुलाकर उन वानरों के साथ अस्त्र शस्त्रों को लेकर उस लङ्का नाम से प्रसिद्ध नगरी में उपस्थित हो गये ॥२७॥

**तां दृष्ट्वा तदधीशेन सार्धं युद्धमकारयत् ।**
**घटश्रोत्रसहस्राक्षजिद्भ्यां युक्तं तमाहवे ॥२८॥**
**हत्वा विभीषणं तत्र स्थाप्याथजनकात्मजाम् ।**
**आदायाङ्कस्थितां कृत्वा स्वपुरं तैर्जगाम सः ॥२९॥**

भगवान् श्रीरामचन्द्रः तां लङ्कानगरीं दृष्ट्वा लङ्काधिपतिना रावणेन सह

संग्राममकरोत् । अत्र कृधातोः स्वार्थेणिच् । कुम्भकर्णमेघनादाभ्यां सह रावणं संग्रामे हत्वा, तस्यां लङ्कायां रावणस्य कनीयांसं भ्रातरम् विभीषणमधिपति रूपेण संस्थाप्य अनन्तरं जनकतनयां श्रीसीतां स्वक्रोडस्थितां विधाय स्वमयोध्या नगरं जगाम । अत्र श्रीसीताया अङ्कस्थापनेन श्रीरामस्य परमहार्दभावं विज्ञायते। तैः इतिकथनेन श्रीहनुमद्विभीषणसुग्रीवादयोऽपि श्रीरामेण सार्धमयोध्यां जग्मुः इतिध्वन्यते ॥२८/२९॥

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी लङ्का नामक नगरी को देख कर लङ्कापुरी के अधिपति रावण के साथ संग्राम किये । यहां पर कृ धातु से स्वार्थ में णिच् प्रत्यय किया गया है । वहां पर युद्ध में भगवान् श्रीरामचन्द्रजी कुम्भकर्ण और मेघनाद के साथ रावण को युद्ध में मारकर उस लङ्का नगरी में रावण के छोटा भाई विभीषण को लङ्काधिपति पद पर स्थापित करके इसके पश्चात् जनकतनया श्रीसीताजी को अपनी अंक में वैठा कर अपनी अयोध्या नगरी में आ गये । यहां पर श्रीसीताजी को अङ्क स्थित करके कहा है, इससे प्रतीत होता है कि श्रीरामजी में परम हार्दभाव था । यहां तैः कहा है इससे श्रीहनुमानजी श्रीविभीषणजी श्रीसुग्रीवजी आदि भी श्रीरामजी के साथ अयोध्या गये ॥२८/२९॥

**ततः सिंहासनस्थः सन् द्विभुजो रघुनन्दनः ।**
**धनुर्धरः प्रसन्नात्मा सर्वाभरणभूषितः ॥३०॥**

भगवतः श्रीरामस्य अयोध्यागमनानन्तरं राज्याभिषेकोऽभूत्, ततः राज्याभिषेकानन्तरं द्विभुजः श्रीरामचन्द्रः धनुर्धरः द्वयोः भुजयोः मुद्राधारणत्वं वक्ष्यमाणमस्त्यतस्तस्य धनुषः नित्यसंयोगित्वद्योतनायोल्लेखकृतः प्रसन्नमानसः सर्वालङ्कारालंकृतः आसीत् ॥३०॥

भगवान् श्रीरामजी के अयोध्या आ जाने के पश्चात् उनका राज्याभिषेक हुआ, तत्पश्चात् राज्य सिंहासन पर स्थित रहकर अपने स्वाभाविक दो भुजाओं को धारण करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी धनुष को धारण किये हुए यद्यपि दोनों भुजाओं में मुद्रा धारण करना कहा जाने वाला है, तथाऽपि श्रीरामजी का धनुष के साथ नित्य संयोगित्व अर्थ को प्रकाशित करने के लिये यहां धनुष बाण का उल्लेख किया गया है प्रसन्न चित्त सभी प्रकार के अलंकारों से अलंकृत होकर विराजित हुए ॥३०॥

**मुद्रां ज्ञानमयीं यामे वामे तेजः प्रकाशनम् ।**
**धृत्वा व्याख्याननिरतश्चिन्मयः परमेश्वरः ॥३१॥**

पुनः श्रीरामं वर्णयति, श्रीरामो यामे-दक्षिणे हस्ते ज्ञानमयीं ज्ञानपूर्णां मुद्रां धृत्वा, वामे सव्ये च तेजः प्रकाशनं तेजसः द्योतिकां मुद्रां धृत्वा 'कनिष्ठा द्यङ्गुलित्रयं प्रसार्य हृदयाभिमुखतर्जन्यङ्गुष्ठसंयोगो ज्ञानमुद्रा' 'वामजानुमण्डलं वामभुजया बलेनापीड्य' तेजः प्रकाशनं भवति । यथा च व्याख्याननिरतः इत्यनेन शास्त्रोपदेशकत्वं प्रकाश्यते, अग्रे श्रीहनुमन्तं श्रोतारमिति वक्ष्यमाणत्वात् । शासनार्ह एव शिष्य उच्यते, तेन श्रीहनुमतः श्रीरामशिष्यत्वं द्योत्यते । अतएव श्रीहनुमतिश्रोतृत्वमुच्यते । श्रीराममालामन्त्रे श्रीरामस्य सकलमन्त्रागमाचार्यत्वेन स्मरणात् । इत्थं तस्य श्रीसम्प्रदायप्रवर्तकत्वमभिव्यज्यते तथैवोक्तं 'इममेव मनुं पूर्वं साकेतपतिर्मामवोचत् । अहं हनुमते मम प्रियाय प्रियतराय स वेद वेदिने ब्रह्मणे स विशिष्टाय स पराशराय स व्यासाय स शुकाय इत्येषोपनिषद् इत्येषा ब्रह्मविद्या' तेन श्रीहनुमदनुयायिनां तस्यानन्यभक्त इव श्रीरामानन्यभक्तानां श्रीरामसम्प्रदायस्थत्वेन श्रीरामगोत्रत्वं ज्ञेयम् । चिन्मय इति श्रीरामशरीरस्यापि चिद् रूपत्वं ज्ञायते, अन्यथा जीवस्यापि चिद्रूपत्वात्, चिन्मयत्व प्रतिपादनमनर्थकं स्यात् । 'चिन्मयः परमेश्वरः' इतिकथनेन सर्वेश्वरश्रीरामस्य ब्रह्मादीनामपि नियामकत्वं प्रकाशितं भवति ॥३१॥

उपनिषद् पुनः श्रीरामचन्द्रजी का वर्णन करती है-भगवान् श्रीरामचन्द्रजी याम अर्थात् दक्षिण भुजा में ज्ञान से परिपूर्ण ज्ञान मुद्रा को धारण करके और वाम भुजा में दिव्य तेज को प्रकाशित करने वाली प्रभाव का द्योतक मुद्रा को धारण करके कनिष्ठिका आदि तीन अङ्गुलियों को फैलाकर हृदय के अभिमुख तर्जनी एवं अंगुष्ठ को संयुक्त करके जो हाथ की मुद्रा होती है उसे ज्ञान मुद्रा कहते हैं । वाम जानु मण्डल पर भुजा के द्वारा बल पूर्वक दवाकर, तेजः प्रकाशन मुद्रा होती है । और जैसे 'व्याख्यान निरतः' इस कथन के द्वारा शास्त्र तत्त्वों का उपदेशकत्व प्रकाशित होता है। आगे सुनने वाले श्रीहनुमानजी को यह कहा जाने वाला होने से शासन करने योग्य जो होता है उसे शिष्य कहते हैं । इससे श्रीहनुमानजी का श्रीराम शिष्यत्व प्रकाशित होता है । इसीलिये श्रीहनुमानजी में श्रोतृत्व प्रकाशित होता है । श्रीराम माला मन्त्र

में श्रीरामचन्द्रजी का समस्त मन्त्रों के आगमाचार्यत्व के स्वरूप में स्मरण किये जाने से श्रीरामजी सम्प्रदाय प्रवर्तक के स्वरूप में अभिव्यक्त होते हैं श्रीमैथिलीमहोपनिषद् में श्रीजानकीजी ने महर्षियों से कहा है कि-इसी ब्रह्मतारक श्रीराम महामन्त्र का उपदेश श्रीसाकेतपतिजी ने साकेत में मुझे दिया मैंने मेरे प्रियतम शिष्य श्रीहनुमानजी को दिया उन्होंने श्रीब्रह्माजी को श्रीब्रह्माजी ने श्रीवशिष्ठजी श्रीवशिष्ठजी ने श्रीपराशरजी को श्रीपराशरजी ने श्रीव्यासजी को श्रीव्यासजी ने श्रीशुकदेवजी को...इसप्रकार परम्परा का वर्णन है। इसलिये श्रीहनुमानजी के अनुयायियों का जैसे श्रीहनुमानजी का अनन्य भक्त होना प्रकाशित होता है उसी तरह श्रीरामचन्द्रजी के अनन्य भक्तों का श्रीरामचन्द्रजी के सम्प्रदाय (परम्परा) में स्थित होने से श्रीरामजी का गोत्र परम्परा होती है यह समझा जाना चाहिये। यहां पर 'चिन्मय' कहा है इससे श्रीरामजी के शरीर का भी चिन्मयत्व होना प्रतीत होता है। अन्यथा जीव का भी चित् स्वरूप होने से श्रीरामजी का चिन्मयत्व प्रतिपादन निरर्थक हो जायगा। क्योंकि चिन्मय परमेश्वर श्रीरामजी को कहा है इससे ब्रह्मा आदि का भी शासकत्व या नियामकत्व श्रीरामचन्द्रजी में प्रकाशित होता है ॥३१॥

**तदत्र श्रीरामस्य चरित्रोपक्रमेऽनन्तरूपस्तेजसा वह्निना समः रत्नमाली धनुर्धरत्वादयो जगत्कारणत्वद्योतनत्वमुक्त्वा द्विभुजत्वधनुर्धरत्वादिकं स्वाभाविकमिति स्पष्टीकृतम्। अयं धर्मो न केवलं दाशरथेरेव, अन्यथाऽनन्तरूपादिकस्य वैयर्थ्यं, 'बाहूराजन्यः कृतः' इतिश्रुतेश्च विरोधः स्यात्। तापनीयोपबृंहणभूते श्रीवाल्मीकीयेऽपि-**

**भ्रातृभिः सह देवाभैः प्रविशस्व स्वकां तनुम्।**
**विवेश वैष्णवं तेजः सशरीरः सहानुजः ॥१॥**

**तथा च-शरा नानाविधाश्चैव धनुरायतमुत्तमम्।**
**पञ्चायुधाश्च ते सर्वे ययुः पुरुषविग्रहाः ॥२॥**

**इत्यादिवचोभिर्द्विभुजस्य श्रीसाकेतारोहणोक्तेः शंखादिपञ्चायुधानां मूर्तिमतामेव गमनोक्तेश्च, तापनीयोक्तस्य चतुर्भुजत्वलिङ्गस्यान्यथासिद्धत्वम् 'गदाब्दशङ्खादिधरं भवारिं यो ध्यायेदिति वचनस्य गदाद्युपलक्षितं यो ध्यायेदिति बोधात्, सहनीतत्वाच्च तत् समीपेऽन्तर्धानतयास्थितानां प्रकटीभूयान्तर्धानत्वं गम्यते ॥३१॥**

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के चरित्र की भूमिका में अनन्त रूप, प्रभाव से अग्नि के समान...बहुमूल्य रत्नों की माला धारण किये धनुष धरत्व आदि गुण समुदाय समस्त लोक कारणत्व प्रकाशित करने के लिये कहकर द्विभुजत्व धनुर्धरत्व आदि स्वाभाविक धर्म है यह विषय सुस्पष्ट किया गया। यह द्विभुजत्व आदि धर्म केवल दशरथ तनय श्रीरामजी का ही होता तो अनन्त रूपत्व आदि प्रतिपादन निरर्थक हो जाता ? और 'बाहू राजन्यः कृतः' में द्विवचन निर्देश का भी विरोध होता। श्रीरामताप नीय उपनिषद् का विस्तार रूप श्रीवाल्मीकीय श्रीमद्रामायण में भी कहा है-देवताओं के समान जिनकी कान्ति है ऐसे भाइयों के साथ आप अपने मुख्य दिव्य शरीर में प्रवेश करें। यह प्रार्थना करने पर विष्णु सम्बन्धी तेज के समान अपने भाइयों के साथ अपने दिव्य शरीर सहित दिव्यधाम श्रीसाकेत में प्रवेश कर गये। इसीप्रकार और भी-विभिन्न प्रकार के शक्तिशाली वाण समुदाय, तथा श्रेष्ठ एवं विशाल उत्तम धनुष एवं पांच प्रकार के आयुध ये सभी दिव्य पुरुष के स्वरूप को धारण किये हुए सभी श्रीरामचन्द्रजी के साथ गये ॥१-२॥ इत्यादि वचनों से दो भुजाओं को धारण करनेवाले श्रीरामजी का स्वर्गारोहण कहे जाने से शङ्ख चक्र गदा पद्मादि पांच प्रकार के आयुधों का जो साकार रूप धारण किये हुए थे उनका गमन कहे जाने से, श्रीरामतापनीय में कहा गया चतुर्भुजत्व लिङ्ग का श्रुति के अपेक्षा दुर्बल होने से अन्यथा सिद्ध ज्ञात होता है। 'गदा कमल शङ्ख आदि को धारण करने वाले संसार (जन्म मृत्यु परम्परा) का शत्रु को जो ध्यान करे इस वचन का गदा आदि से उपलक्षित भगवान् के स्वरूप का जो ध्यान, यह बोध होने से एवं मूर्त स्वरूप में साथ ले जाये जाने से भगवान् के पास में अन्तर्हित स्वरूप में वर्तमान आयुधों का प्रकट होकर पुनः अन्तर्धान होना प्रतीत होता है ॥३१॥

**अथ च यन्त्रोद्धारमाह-**

**उदग् दक्षिणयोः स्वस्य शत्रुघ्नभरतौधृतः ॥३२॥**

**हनूमन्तं च श्रोतारमग्रतः स्यात् त्रिकोणकम्।**

**भरताधस्तु सुग्रीवं शत्रुघ्नाधोविभीषणम् ॥३३॥**

**पुनः श्रीरामं विशेषयन्नाह भगवान् श्रीरामचन्द्र आत्मन उत्तरदक्षिणयोः भागयोः श्रीशत्रुघ्नभरतौ धृतवान्। तथा च स्वस्य अग्रतः श्रोतारमुपदेश वचनाकर्णयितारं श्रीहनुमन्तं पवनतनयं धृतवान्। श्रीरामस्याग्रभागे श्रीहनूमतः**

स्थितिवर्णनात् तस्य स्थितिः पूर्वभागे इतिसूचयति, पूजकस्य पवनात्मजस्य श्रीरामसन्मुखस्थितिः समुचिता । पूज्यपूजकयोर्मध्ये पूर्वं स्यादितिस्मृतेः । पश्चिमे श्रीलक्ष्मणस्य स्थितिस्तेन तस्य श्रीहनुमत् सन्मुखत्वं, ततः त्रिकोणस्थितिः, श्रीभरताधस्तात् तु सुग्रीवं निरूपयति, शत्रुघ्नाधस्तात् विभीषणमिति त्रिकोण द्वयेन षट्कोणावयवभूतमन्यत् त्रिकोणमिति यन्त्रस्वरूपमवगमयति ॥३२/३३॥

इसके वाद पुनः यन्त्रोद्धार कहते हैं-पुनः भगवान् श्रीरामजी का विशेष रूपसे वर्णन करते हुए श्रुति कहती है-भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अपने उत्तर तथा दक्षिण भागों में क्रमशः श्रीशत्रुघ्न एवं श्रीभरतजी को धारण किये । और उसीप्रकार अपने अग्र भाग में उपदेश वचन को सुनने वाले शिष्य श्रीहनुमानजी को स्थापित किये । भगवान् श्रीरामजी के अग्र भाग में श्रीहनुमान् की स्थिति का वर्णन करने से श्रीहनुमानजी की स्थिति भगवान् के आगे पूर्व दिशा में है इस विषय को सूचित करता है । भगवान् की पूजा करनेवाले पवनतनय श्रीहनुमानजी की भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के सम्मुख स्थित होना समुचित है । पूज्य एवं पूजक के मध्य में पूजक की पूर्व दिशा में स्थिति हो यह स्मृति वचन से भी प्रमाणित है । पश्चिम में श्रीलक्ष्मणजी की स्थिति है । इस कथन से श्रीलक्ष्मणजी का श्रीहनुमानजी के सम्मुख स्थिति होना ज्ञात होता है । इससे त्रिकोण की स्थिति ज्ञात होता है । श्रीभरतजी से निचला भाग में सुग्रीव की स्थिति बतायी गयी है । एवं श्रीशत्रुघ्न के भिन्न भाग में विभीषण की स्थिति प्रतिपादित की गयी है । इसतरह दो त्रिकोणों से यन्त्र की षट्कोण स्थिति है, षट्कोण का अङ्ग बना हुआ त्रिकोण यह दूसरा त्रिकोण है इसप्रकार यन्त्र के स्वरूप का बोध कराता है ॥३२/३३॥

**पश्चिमे लक्ष्मणं धृत्वा धृतच्छत्रञ्च चामरम् ।**
**तदधस्तौ तालवृन्तकरौ त्र्यस्त्रं पुनर्भवेत् ॥३४॥**

बीजस्य पश्चिमदिग्भागे द्वितीयत्रिकोणस्येत्यर्थः श्रीलक्ष्मणं धृतवान् यः धृतच्छत्रः आसीत् । तत्र सचामरं छत्रं च धृतवान् इत्यर्थः । तदधस्तात् सुग्रीवविभीषणौ तु व्यजनहस्तावास्तामत्र तयोरधः इत्यनेन श्रीभरतशत्रुघ्नयोर धस्तात् व्यजनहस्तौ धृतवान् इत्यर्थः । त्र्यस्त्रं त्रिकोणम् एतेन द्वितीयत्रिकोणस्योप संहारोऽभवदिति प्रकाशितम् भवति ॥३४॥

बीज मन्त्र की पश्चिम दिशा में अर्थात् द्वितीय त्रिकोण के पश्चिम भाग में श्रीलक्ष्मणजी को स्थापित किये। जो श्रीलक्ष्मणजी छत्र को धारण किये हुए थे। वहां पर यह चामर और छत्र को धारण किया यह अभिप्राय है। उसके निम्न भाग में सुग्रीव तथा विभीषण तो तालवृन्त (पंखा) हाथ में धारण किये हुए स्थापित करे। ये दोनों हाथों में व्यजन धारण किये थे। यहां पर इन दोनों के निम्न भाग में इस कथन से श्रीभरत और श्रीशत्रुघ्न के निम्न भाग में क्रमशः व्यजन धारण किये हुए सुग्रीव और विभीषण हैं त्र्यस्त्र शब्द का अर्थ त्रिकोण है, इससे द्वितीय त्रिकोण का उपसंहार सम्पन्न हुआ यह अभिप्राय प्रकाशित होता है ॥३४॥

**एवं षट्कोणमादौ स्वदीर्घाङ्गैरेष संयुतः ।**
**द्वितीयं वासुदेवाद्यैराग्नेयादिषु संयुतः ॥३५॥**

श्रीरामयन्त्रे पूर्वं षट्कोणं विलिख्य, तन्मध्ये श्रीरामस्वरूपं 'रां' इति वह्निवीजं लिखेत् । बीजस्य दक्षिणभागे प्रथमत्रिकोणदक्षिणकोणबहिर्भागे, भरतबीजं लिखेत्, बीजस्योत्तरकोणवहिर्भागे शत्रुघ्नबीजं लिखेत्, बीजस्य पूर्वकोणबहिर्भागे हनुमद् बीजं लिखेत्, द्वितीयत्रिकोणदक्षिणकोणे भरत कोणाधस्तात् सुग्रीववीजं लिखेत्, तस्यैवोत्तरदिग् भागस्थे कोणे शत्रुघ्नबीज स्याधस्तात् विभीषणवीजं लिखेत्, त्रिकोणस्य पश्चिमदिग् भागस्थे कोणे वहिः लक्ष्मणवीजं लिखेत्, इत्थं सबीजं षट्कोणं कुर्यात् ।

अथ पूजनीयस्य श्रीरामस्य पौर्वापर्यक्रमेणाङ्गाद्यावरणानि निरूपयन्नाह– आदौ प्रथमत्रिकोणस्यान्तर्गतं स्वदीर्घाङ्गैः प्रथमावरणे श्रीहनुमदादीनां चतुर्था वरणे पूज्यत्व कथनात् प्रथमकर्णिकस्थः श्रीरामः षट्सु कोणेषु आ ई ऊ ऐ औ अः इति षड्भिः दीर्घैः योजिताः रां रीं रूं रैं रौं रः इतिभवन्ति तैः युक्तानि हृदयादीनि षडङ्गानि पूजनीयानि । तथा चाङ्गपूजास्थानानि आग्नेय नैर्ऋत्यवायव्येशानकोणेषु हृदयाय नमः शिरसे स्वाहा, शिखायै वषट् कवचाय हुम् इति । पूर्वतः नेत्राय वौषट् पश्चिमे अस्त्राय फडिति, अथ च द्वितीयावरणे वर्तुलाकारां रेखां कृत्वा क्रियमाणाष्टदलमूले आग्नेयीमारभ्य कोणेषु आत्मने नमः, अन्तरात्मने नमः, परमात्मने नमः, ज्ञानात्मने नमः इति । प्राचीमारभ्य दिक्षु निवृत्यै नमः, प्रतिष्ठायै नमः, विद्यायै नमः, शान्त्यै नमः, इति द्वितीयं ज्ञेयम् ।

अगस्त्यसंहितायां तथोक्तत्वात् । वासुदेवादीनां यदत्र द्वितीयत्वं निरूपितम्, तत्रावरणापेक्षया द्वितीयत्वात् । अथवा अष्टदलमध्योक्तावरणस्य द्वितीयत्वम्, ततः अष्टदलस्य पत्रेषु आग्नेयादिषु, वासुदेवाय नमः, संकर्षणाय नमः, प्रद्युम्नाय नमः, अनिरुद्धाय नमः, श्रियै नमः, सरस्वत्यै नमः, प्रीत्यै नमः, इत्यै नमः । इतितृतीयावरणे वासुदेवाद्यैः संयुतः श्रीरामः । इत्थमाग्नेयादिषु दिक्षु पूज्यः ॥३५॥

श्रीराम यन्त्र में पहले षट्कोण लिखकर, उस षट्कोण के मध्य भाग में श्रीराम स्वरूप 'रां' इस वह्नि वीज को लिखे । बीज के दाहिना भाग में प्रथम त्रिकोण के दक्षिण दिशा में कोण के बाहरी भाग में भरत बीज को लिखे । बीज के उत्तर भाग में स्थित कोण के बाह्य भाग में शत्रुघ्न बीज को लिखे । वीज के पूर्व दिशा में स्थित कोण के वाहरी भाग में हनुमद् वीज को लिखे । उसी हनुमद् वीज के अर्थात् द्वितीय त्रिकोण के दक्षिण कोण में भरत वीज के निम्न भाग में सुग्रीव वीज को लिखे । उसी के उत्तर दिशा में स्थित कोण में शत्रुघ्न वीज के नीचे विभीषण वीज को लिखे, त्रिकोण के पश्चिम भाग में लक्ष्मण वीज को लिखे । इसप्रकार वीज सहित षट्कोण बनावें ।

इसके पश्चात् पूजनीय भगवान् श्रीरामजी के पूर्वापर के क्रम से अङ्ग आदि आवरणों को प्रतिपादन करते हुए कहते हैं→ सर्व प्रथम अपने दीर्घ स्वरावयवों से प्रथम आवरण में श्रीहनुमानजी आदि का चतुर्थावरण में पूज्यत्व कहे जाने से प्रथम कर्णिका में स्थित 'राम' के छ कोणों में 'आ ई ऊ ऐ औ अः' इन छ दीर्घ स्वरों से योजित कर 'रां रीं रूं रैं रौं रः' ये स्वरूप होते हैं, उनसे युक्त हृदय आदि छ अङ्गों को पूजित करना चाहिये । जैसे कि अङ्गों को पूजा के स्थान हैं आग्नेय नैर्ऋत्य वायव्य और ईशान कोणों में हृदयाय नमः, शिरसे स्वाहा, शिखायै वषट् कवचाय हुम्, पूर्व में नेत्राय वौषट् एवं पश्चिम में अस्त्राय फट् । और इसके वाद द्वितीय आवरण में गोलाकार रेखा बनाकर, बनाये जाते हुए अष्टदल के मूल में अग्निकोण से आरम्भ कर कोणों में, आत्मने नमः, अन्तरात्मने नमः, परमात्मने नमः, ज्ञानात्मने नमः, यों पूजा करें । पूर्व दिशा से आरम्भ कर चारों दिशाओं में निवृत्यै नमः प्रतिष्ठायै नमः, विद्यायै नमः, शान्त्यै नमः, यह द्वितीय वरण पूजा समझनी चाहिये । क्योंकि अगस्त्य संहिता में ऐसा ही कहा गया है । वासुदेव आदि को जो इस श्रीरामतापनीय उपनिषद्

में द्वितीयत्व बताया गया है। उनमें आवरणों की अपेक्षा आत्मा आदि का अन्य स्थानों पर द्वितीय कहे जाने के कारण द्वितीयत्व कहा गया है। और षट्कोण की अपेक्षा द्वितीयत्व होने से भी कहा है। अथवा अष्टदल के मध्य में उक्त आवरण का द्वितीयत्व है। तत्पश्चात् अष्टदल के पत्रों में आग्नेय आदि कोणों में वासुदेवाय नमः, संकर्षणाय नमः, प्रद्युम्नाय नमः, अनिरुद्धाय नमः, श्रियै नमः, सरस्वत्यै नमः, प्रीत्यै नमः, इत्यै नमः, इसप्रकार तृतीय आवरण में वासुदेव आदि से संयुक्त श्रीराम यह तात्पर्य है। इसप्रकार आग्नेय आदि कोणों में एवं दिशाओं में पूजा करनी चाहिये ॥३५॥

**अथ चतुर्थावरणमाह–**

**तृतीयं वायुसूनुञ्च सुग्रीवं भरतं तथा।**
**विभीषणं लक्ष्मणञ्च अङ्गदं चारिमर्दनम् ॥३६॥**

**तस्यैवाष्टदलस्य पत्रान्तर्भागेषु पूर्वां दिशमारभ्य पवनतनयं सुग्रीवं भरतं विभीषणं लक्ष्मणमङ्गदं शत्रुघ्नं जामबन्तमिति चतुर्थावरणं रचयेत्। तैः सहितः श्रीरामस्तत्रपूज्यः। अत्रापि पवनतनयादीनां तृतीयत्वमष्टदलोक्ततृतीयत्वा-पेक्षयाबोध्यम्।**

**सुन्दरीतन्त्रे प्रथमाष्टदलमूले आत्मादीनां दलमध्ये वासुदेवादीनामन्ते च पवनतनयादीनामावरणानां पूजनं निरूपितम् ॥३६॥**

इसके पश्चात् चतुर्थावरण पूजन प्रकार कहते हैं। उसी पूर्व वर्णित अष्टदल के पत्रों के मध्य भागों में पूर्व दिशा से प्रारम्भ कर क्रमशः श्रीहनुमानजी श्रीसुग्रीवजी श्रीभरतजी श्रीविभीषणजी श्रीलक्ष्मणजी श्रीअङ्गदजी श्रीशत्रुघ्नजी और श्रीजाम्बवानजी इनसे चतुर्थावरण की रचना कर, उनके सहित श्रीरामजी पूजनीय हैं।

यहां पर भी श्रीहनुमानजी आदि का जो तृतीयत्व है, वह अष्टदल में वर्णित तृतीयत्व की अपेक्षा से है यह समझना चाहिये।

सुन्दरी तन्त्र में प्रथम अष्टदल के मूल में आत्मा आदि का, दल मध्य में वासुदेव आदि का एवं दल के अन्त भाग में श्रीहनुमानजी आदि का आवरण पूजन बताया गया है ॥३६॥

**पञ्चमावरणमाह–**

**जामवन्तञ्च तैर्युक्तस्ततो धृष्टिर्जयन्तकः।**

विजयश्च सुराष्ट्रश्च राष्ट्रवर्धन एव च ॥३७॥

अकोपो धर्मपालश्च सुमन्त्रस्त्वेभिरावृतः ।

ततः सहस्त्रदृग् वह्निधर्मरक्षोवरुणानिलाः ॥३८॥

इन्द्वीशधात्रनन्ताश्च दशभिस्त्वेभिरावृतः ।

वहिस्तदायुधैः पूज्यो नीलादिभिरलङ्कृतः ॥३९॥

जाम्बन्तः चतुर्थावरण उक्तत्वात् ततो धृष्टिरिति पञ्चमावरणमाह-प्रथमाष्ट दलानन्तरं गोलाकारां रेखां विधाय तद्बहिपुनरष्टदलं विधाय तस्याष्टदलपत्रेषु प्राचीमारभ्य धृष्ट्यादीन् संस्थाप्य तैः सहितः श्रीरामः पञ्चमावरणे पूज्यः । ततः षष्ठावरणे इन्द्रादीन् संस्थाप्य पूर्वेशानयोर्मध्ये धातारं नैऋत्यपश्चिमयोर्मध्येऽनन्तं शेषञ्च विन्यस्य ऐभिर्दशभिरावृतः श्रीरामः षष्ठावरणे पूज्यः, षष्ठावरणाद् बहिः सप्तमावरणे तेषामायुधैः वज्रशक्तिदण्डखड्गपाशध्वजगदाशूलपद्मचक्रैः दशायुधैः सहितः श्रीरामः पूज्यः । ततः षोडशदले नीलनलसुषेणमैन्दद्विविदसरभ-चन्दनगवाक्षकिरीटकुण्डलश्रीवत्सकौस्तुभशङ्खचक्रगदापद्मैरलङ्कृतः श्रीरामः अष्टमावरणे पूज्यः इतिभावः ॥३७/३८/३९॥

जाम्बवान् को चतुर्थावरण में कहे जाने के कारण 'ततो धृष्टिः' इत्यादि द्वारा पञ्चम आवरण की पूजा कहते हैं। प्रथम अष्टदल के पश्चात् वर्तुलाकार की रेखा बनाकर उसके अष्टदल के पत्रों में पूर्व दिशा से आरम्भ कर धृष्टि जय विजय सुराष्ट्र राष्ट्र वर्धन अकोप धर्मपाल एवं सुमन्त्र से आवृत श्रीरामजी की पञ्चम आवरण में पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् छठा आवरण कहते हैं उस आवरण में इन्द्र आदि की सम्यक् प्रकार से स्थापना करके पूर्व और ईशान के मध्य में धाता को, नैऋत्य एवं पश्चिम के मध्य में अनन्त एवं शेष की संस्थापित करके, इन्द्र वह्नि आदि दशदिक् पालों के सहित इन सभी से आवृत श्रीरामजी की पूजा करनी चाहिये। इसप्रकार षष्ठावरण पूजा विधान निरूपित हुआ। षष्ठ आवरण से आयुधों से आवृत अर्थात् वज्र शक्ति दण्ड खड्ग पाश ध्वज गदा शूल पद्म चक्र इन दश आयुधों के सहित श्रीरामजी की पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् षोडशदल में नील नल सुषेण मैन्द द्विवद सरभ चन्दन गवाक्ष किरीट कुण्डल श्रीवत्स कौस्तुभ शङ्ख चक्र गदा तथा पद्म से अलङ्कृत श्रीरामजी की अष्टमावरण में पूजा करनी चाहिये ॥३७/३८/३९॥

वशिष्ठवामदेवादिमुनिभिः समुपासितः ॥४०॥

ततो नवमावरणे श्रीवशिष्ठवामदेवजाबालिगौतमभरद्वाजविश्वामित्र वाल्मीकिनारदसनकसनन्दनसनातनसनत्कुमाराभिधैर्मुनिभिर्विधिवदुपासितः श्री-रामः सम्पूजनीयः । तत्र नवमावरणे द्वादशदलं विधाय तैः सह पूजयेत् । ननु षोडशदलानन्तरं द्वादशदलं क्रमविरुद्धमिति शङ्कनीयम् ? वक्ष्यमाण-यन्त्रोद्धारानुरोधेन ध्रुवादिदशमावरणस्याभिमतत्वात् श्रीयन्त्रादौ चतुर्दशदला नन्तरमष्टदलदृष्टत्वाच्च । तत्र धुव्रादयः अष्टौवसवः, वीरभद्रादयः एकादशरुद्राः । वरुणादयः द्वादशादित्या संस्थापनीयाः तैः सहितः श्रीरामः पूजनीयः । इत्थं क्रमेण दशावरणानां पूजां विधाय

अभीष्टसिध्दिं मे देहि शरणागतवत्सल ? ।

भक्त्या समर्पये तुभ्यं प्रथमावरणार्चनम् ॥

एवमेव द्वितीयादयः । क्रमेण प्रत्यावरणपूजां तत्फलञ्च श्रीरामाय समर्प्य, अंगुष्ठतर्जनीभ्यां पुष्पमादाय यन्त्रराजमध्ये चतुरः प्राणप्रतिष्ठामन्त्रान् दशवारं त्रिवारं वा पठित्वा सावरणस्य श्रीरामस्य ( १ ) इह प्राणा तिष्ठन्तु ( २ ) इह जीवः ( ३ ) इह वाङ्मनः चक्षुः श्रोत्रं घ्राणः प्राणाः इहागत्य सुखंचिरं तिष्ठन्तु स्वाहा, इत्थं सावरणस्य श्रीरामस्य प्राणप्रतिष्ठां विधाय पुनः यन्त्रराजं पूजयेत् । तन्मन्त्रा यथा-ॐ आं ह्रीं क्रौं यं रं लं वं शं षं सं हं सः श्रीरामस्य इह प्राणः स्थितः । अनेनैव मन्त्रेण श्रीरामस्य जीवसर्वेन्द्रियाणि, वाङ् मनः चक्षुश्रोत्रघ्राणप्राणा-इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा इति यन्त्रोद्धारं कुर्यात् ॥४०॥

अष्टम आवरण के पश्चात् श्रीवशिष्ठ वामदेव जाबालि गौतम भरद्वाज विश्वामित्र वाल्मीकि नारद सनक सनन्दन सनातन सनत्कुमार नामक मुनियों के साथ विधान पूर्वक उपासित श्रीराम विधिवत् पूजनीय हैं । इस नवम आवरण में द्वादशदल कमल की रचना कर उन मुनियों के साथ श्रीरामजी की पूजा करें ।

यहां प्रश्न उठता है कि पहले षोडश दल कमल फिर द्वादशदल कमल की रचना करना यह क्रम के विपरीत है । ऐसा सन्देह नहीं किया जाना चाहिये । क्योंकि आगे कहा जाने वाला यन्त्रोद्धार के अनुरोध से ध्रुव आदि दश आवरणों का विधान शास्त्र के अभिमत है एवं श्रीयन्त्र आदि में चतुर्दश दल कमल के पश्चात् अष्टदल कमल का विधान देखा गया है । अतः दशमावरण में ध्रुवाय नमः इत्यादि मन्त्र से ध्रुव धर

सोम आप (अद्भ्यः) अनिल अनल प्रत्यय प्रभाष ये दश वसु, वीरभद्राय नमः इत्यादि मन्त्र से वीरभद्र, शम्भु गिरीश, अजैकपाद (अजैकपदे) अहिर्बुघ्न पिनाकी भुवनेश कपाली, दिक्प्रति स्थाणू भर्ग ये एकादश रुद्र वरुण सूर्य वेदांग भानु इन्द्र, रवि गभस्ति यम हिरण्यरेतस् दिवाकर मित्र विष्णु ये द्वादश आदित्य के सहित श्रीराम दशमावरण में पूजनीय हैं इनकी चतुर्थ्यन्त 'नमः' शब्दान्त मन्त्र से आवरणों की धूप दीप नैवेद्यादि के सहित पूजन करने के पश्चात् प्रार्थना करें कि-हे शरणागत वत्सल भगवान् श्रीरामचन्द्रजी मुझे अभिमत फल की सिद्धि प्रदान करें, मैं भक्तिभाव पूर्वक आपको प्रथमावरण की अर्चना समर्पित करता हूँ। इसी प्रकार इसी मन्त्र से द्वितीयावरण से लेकर दशम आवरण पर्यन्त की अर्चना का समर्पण करके, सभी आवरणार्चन में भगवान् श्रीरामजी को फल समर्पण करने के पश्चात् अंगुष्ठा एवं तर्जनी अङ्गुली के सहयोग से पुष्प लेकर यन्त्रराज के मध्य में चारों प्राणप्रतिष्ठा करके, प्राणप्रतिष्ठा मन्त्रों को प्रत्येक को दशवार अथवा तीनवार पढे। इसमें आवरण सहित श्रीरामजी का यहां पर प्राणप्रतिष्ठा हो-यहां जीव। यहां वाणी मन आंख कान नाक प्राण प्रतिष्ठित हो यहां पर आकर सुख पूर्वक चिरकाल तक स्थित हो इसप्रकार आवरण सहित श्रीरामजी की प्रतिष्ठा करके पुनः यन्त्र राज की पूजा करे। जैसे कि यन्त्रराज पूजन के मन्त्र हैं→ ॐ आं ह्रीं क्रौं यं रं लं वं शं षं सं हं हंसः इस मन्त्र से श्रीरामजी के प्राण यहां पर स्थित हो, इसीतरह पूर्व में निरूपित ॐ आं ह्रीं आदि मन्त्र से ही श्रीरामजी का जीव श्रीरामजी की समस्त इन्द्रियां वाणी मन आंख कान नाक प्राण यहां आकर चिरकाल तक सुख पूर्वक रहें। यहां पर प्रत्येक प्रतिष्ठा में पूर्व वर्णित अक्षर वीज मन्त्र से अलग अलग पढकर प्रतिष्ठा करें। प्रत्येक प्रतिष्ठा में दश वार या तीव वार मन्त्र को पढना चाहिये यही यन्त्रोद्धार का क्रम तन्त्रों में बताया गया है ॥४०॥

**एवमुद्देशतः प्रोक्तं निर्देशस्तस्य चाधुना ॥४१॥**

**पूर्वोक्तविधिना संक्षेपरूपेण यन्त्रस्वरूपनिरूपणं कृतम्। सम्प्रतिपूजितस्य यन्त्रस्य कण्ठेधारणविधिः प्रतिपाद्यते, पूजनप्रकारस्तु पूर्वमेव निर्दिष्टमिति ॥४१॥**

केवल नामोच्चारण करके वस्तु का कथन उद्देश कहा जाता है। जो पूर्वोक्त विधि के द्वारा संक्षिप्त रूपसे यन्त्र का स्वरूप एवं पूजन विधि कही गयी है। वर्तमान उस पूजित यन्त्रराज का कण्ठ में किस प्रकार धारण करना चाहिये यह विधि आगे बतायी जा रही है। यन्त्रराज पूजन प्रकार तो पहले ही सविस्तार बताया गया है ॥४१॥

त्रिरेखापुटमालिख्यमध्येतारद्वयं लिखेत् ।

तन्मध्ये वीजमालिख्य तदधः साध्यमालिखेत् ॥४२॥

द्वितीयान्तं च तस्योर्ध्वं षष्ठ्यन्तं साधकं तथा ।

कुरुद्वयं तत् पार्श्वे लिखेद् बीजान्तरे रमाम् ॥४३॥

तत्सर्वं प्रणवाभ्याञ्च वेष्टयेत् शुद्धबुद्धिमान् ॥

पूर्वोक्तरीत्या षट्कोणां रेखामालिख्यमध्येकर्णिकायां तारद्वयं लिखेत् तस्य मध्ये प्रणवद्वयं मध्ये रां वीजमालिख्य, तस्य मध्ये साधनीयमर्थं द्वितीया विभक्त्यन्तं लिखेत् । तस्य बीजस्य उपरिभागे षष्ठीविभक्त्यन्तत्रं तं साधकं लिखेत् । वीजस्य पार्श्वयोः कुरुद्वयं लिखेत् । वीजस्य मध्यभागे श्रीवीजं लि-खेत्। साध्यसाधकादिसहितं परस्परसन्मुखाभ्यां प्रणवाभ्यां शुद्धबुद्धिमान् उपासकः वेष्टयेत् ॥४२/४३॥

पूर्वोक्त प्रकार से छ कोणों वाली रेखा को लिखकर उसके मध्य भाग कर्णिका में तारक द्वयं लिखेत् । अर्थात् तारक मन्त्र को दो वार लिखे । उसके मध्य भाग में दो वार प्रणव अर्थात् ॐकार दो वार लिखे । दोनों प्रणवों के मध्य भाग में 'रां' वीज को लिखकर उसके मध्य भाग में सिद्ध करने योग्य प्रयोजन को लिखे, वह साधनीय प्रयोजन द्वितीया विभक्त्यन्त लिखा जाना चाहिये । उस वीज मन्त्र के ऊपरी भाग में षष्ठी विभक्त्यन्त उस साधक का नाम लिखे । वीज के दोनों पार्श्व भाग में दो कुरु पद लिखना चाहिये । वीज के मध्य भाग में श्री वीज को लिखना चाहिये । साधन करने योग्य एवं साधन करनेवाला आदि के सहित परस्पर सम्मुख प्रणवों के द्वारा शुद्ध बुद्धि सम्पन्न उपासक उन सभी को परिवेष्टित कर देवे ॥४२/४३॥

दीर्घभाजिषडस्त्रेषु लिखेद्वीजं हृदादिभिः ॥४४॥

हृदयशिरः शिखाकवचनेत्रास्त्रैः षड्भिरङ्गैः सहितं बीजं लिखेत् । तत्र कीदृशं बीजमिति जिज्ञासायामुक्तम् दीर्घमाजि । आकारादिभिः षड्भिदीर्घवर्णै र्युक्तमितिभावः । आग्नेयनैऋत्यवायव्येशानकोणेषु हृदयादीनि लिखेत् । पूर्वतः नेत्रम् पृष्ठतश्चास्त्रं लिखेत् ॥४४॥

हृदय शिर शिखा कवच नेत्र और अस्त्र इन छ अङ्गों के सहित बीज को लिखना चाहिये । वहां पर किस तरह का बीज लिखना चाहिये ऐसी जिज्ञासा में कहते हैं-

दीर्घ युक्त आकार आदि छ दीर्घ वर्णों से युक्त वीज लिखना चाहिये । आग्नेय नैॠत्य वायव्य और ईशान कोणों में हृदय आदि चार वीज लिखें, एवं पूर्व दिशा में नेत्र एवं पृष्ठ भाग में अस्त्र वीज को लिखना चाहिये ॥४४॥

**कोणपार्श्वे रमामाये तदग्रेऽनङ्गमालिखेत् ।**
**क्रोधं कोणाग्रान्तरेषु लिखेन् मन्त्र्यभितोगिरम् ॥४५॥**

षण्णामपि कोणानां पार्श्वयोः वामभागे 'ह्रीं' इतिमाया बीजं दक्षिणे च 'श्रीं' इति रमाबीजं लिखित्वा ततः कोणानामग्रभागेषु 'क्लीं' इतिकामबीजं लिखेत् । क्रोधं कवचबीजं 'हुम्' इतिकोणाग्रामध्येषु लिखित्वा, कोणानां समन्तात् 'ऐम्' इतिवाग् बीजं लिखेत् । अत्र केचनसाम्प्रदायिकाः 'रां' बीजस्य दक्षिणवामयोः द्वे नेत्रे लिखन्ति, ऊ इति द्वौ कर्णौ ॠ लृ प्रभृतिमात्रिकाक्षराणां नासिकाकपोलादिरूपेणलेखनं कुर्वन्ति । परन्तु 'रां' वीजस्य सर्वावयवपरिपूर्णत्वात् श्रीरामरूपेण स्थितत्वाच्चानावश्यकमित्यस्योपनिषदः हार्दम् ॥४५॥

छ कोणों के दोनों बगल (भाग) में-वाम भाग में 'ह्रीं' यह माया बीज को लिखें । एवं दक्षिण भाग में 'श्रीं' यह रमा वीज को लिखें । इन्हें लिखकर सभी कोणों के अग्र भाग में 'क्लीं' यह काम वीज को लिखना चाहिये । क्रोध अर्थात् कवच वीज 'हुम्' इस मन्त्र को कोण के अग्र भाग के मध्य में लिख कर कोणों के सभी ओर 'ऐम्' इस वाग् वीज को लिखना चाहिये । इस यन्त्र के विषय में कुछ साम्प्रदायिक जन 'रां' इस वीज के दाहिना और वायां भाग में दो नेत्र लिखते हैं उसमें 'उ ऊ' इस मात्रिक अक्षरों को लिखते हैं । कर्ण आदि अवयवों के लिये ऋ ॠ लृ लॄ आदि मात्रिक अक्षरों को लिखते हैं-जो नासिका कपोल आदि स्वरूप में लिखे जाते हैं । लेकिन 'रां' वीज को सभी अवयवों से परिपूर्ण स्वरूप में होने के कारण इन मात्रिक अक्षरों का लिखा जाना आवश्यक नहीं है । यही इस श्रीरामतापनीय उपनिषद् का हार्द अभिप्राय है ॥४५॥

**वृत्तत्रयं साष्टपत्त्रं सरोजे विलिखेत् स्वरान् ।**
**केशरे चाष्टपत्रे च वर्गाष्टकमथालिखेत् ॥४६॥**

षट्कोणस्य यन्त्रस्योपरिवर्तुलाकारं रेखात्रयमष्टदलसहितं कमलं लिखित्वा, तत्राष्टदलकमले केशर इव षोडशस्वरान् लिखेत् प्रतिदलं द्वौ द्वौ स्वरौ

लेखनीयौ । ततश्च पूर्वादि दिक् क्रमेण अष्टानांपत्राणां मध्ये क च ट त प य श ल वर्गाणामष्टकं स्वरयोरुपरिभागे एकैकं वर्गं लिखेदिति भावः ॥४६॥

षट्कोण यन्त्र के ऊपर चारों तरफ गोलाकार तीन रेखायें अष्टदल सहित कमल लिखकर उन आठों पत्रों में केशर के समान सोलह स्वरों को पूर्वादि क्रम से लिखना चाहिये। प्रत्येक पत्र में दो दो स्वर के हिसाव से सोलह स्वरों को लिखना चाहिये। तत्पश्चात् पूर्वादि क्रम से आठों पत्रों के मध्य में क च ट त प य श ल इन आठ वर्गों को लिखना चाहिये। स्वर के ऊपरी भाग में एक एक वर्ग लिखने का तात्पर्य है ॥४६॥

**तेषु माला मनोवर्णान् विलिखेदूर्मिसंख्याया ।**
**अन्ते पञ्चाक्षरानेवं पुनरष्टदलं लिखेत् ॥४७॥**

तेषु अष्टदलपत्रेषु मालामन्त्रस्य सप्तचत्वारिशदक्षरान् प्रतिपत्रमूर्मिसंख्यया लिखेत् । अवसानेऽन्तिमे पत्रेऽवशिष्टान् पञ्चाक्षरान् लिखेदित्यर्थ । पूर्वलिखिताष्टदलस्योपरि पुनः गोलाकारां रेखां विधाय पुनः अष्टदलं लिखेत् ॥४७॥

उन अष्टदल के पत्रों में माला मन्त्र के सैंतालिस अक्षरों को प्रति पत्र उर्मि संख्या के अनुसार लिखें। अन्त में अन्तिम पत्र में अवशिष्ट पांच अक्षरों को लिखें। पूर्व में लिखा गया अष्टदल के ऊपर गोलाकार रेखा पुनः लिखकर उसके ऊपर पुनः अष्टदल बनावें ॥४७॥

**तेषु नारायणाष्टार्णं लिखेत् तत् केसरे रमाम् ।**
**तद्वहिर्द्वादशदलं विलिखेद् द्वादशाक्षरम् ॥४८॥**

तेष्वष्टदलेषु श्रीनारायणमन्त्रस्याष्टवर्णान् क्रमशः लिखेत् । तेष्वेव पत्रेषु प्रतिपत्रं केशरस्थानेषु श्रीबीजं लिखेत् । तच्च केशरवदेव लिखेत् । द्वितीयाष्टदलाद् बहिः पुनः वृत्ताकारां रेखां विधाय तत्र द्वादशदलं कुर्यात् । तत्र पूर्वादिशमारभ्य द्वादशाक्षरमन्त्रस्याक्षराणां प्रतिदलं लेखनं विधेयम् ॥४८॥

उन अष्टदल के पत्रों में श्रीनारायण मन्त्र जो अष्टाक्षर मन्त्र है उसके प्रत्येक अक्षर को प्रतिदल में लिखें। उन्हीं प्रत्येक दलों के केशर के ही समान 'श्रीं' इस रमा वीज को लिखें। वह केशर के ही समान लिखा जाय। द्वितीय अष्टदल के बाहर पुनः गोलाकार रेखा लिखकर उसमें बारह दलों का निर्माण करे। और उसमें पूर्व

आदि दिशाओं के क्रम से द्वादशाक्षर मन्त्र के प्रत्येक अक्षर को प्रतिदल में लेखन किया जाना चाहिये ॥४८॥

**तथोंनमो भगवते वासुदेवाय इत्ययम् ।**
**आदिक्षान्तान् केशरेषु वृत्ताकारेण संलिखेत् ॥४९॥**

**तत्र द्वादशदलेषु प्रतिदलम् 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' इतिमन्त्रस्य एकैकमक्षरं लिखेत् तस्य केशरेषु अकाराद्यारभ्य क्षकारपर्यन्तम् एकपञ्चाशद् वर्णान् लिखेत् । तत्रापि पूर्वाद्यारभ्य चतुर्षु दलेषु चतुः चतुः संख्ययाषोडश स्वरान् लिखेत्, तदनुपञ्चदलेषु पञ्चपञ्चक्रमेण कादिमान्तं वर्णान् लिखेत् दशमेदले यरलवेति चतुर्वर्णान् एकादशेशषसहेति द्वादशे च 'लं क्षं' इतिवर्णद्वयं ततोवृत्ताकारे 'रां' इतिलिखेत् ॥४९॥**

उस पूर्व वर्णित द्वादश दल में प्रत्येक दल में ॐ नमो भगवते वासुदेवाय इस मन्त्र के वारह अक्षरों को लिखें । तत्पश्चात् उन दलों के केशरों में अकार से लेकर क्ष पर्यन्त इकावन अक्षरों को लिखें । उन वर्णों के लेखन की भी यह व्यवस्था है कि पूर्वादि दिशा के क्रम से प्रथम चार दलों में चार स्वरों को लिखने के क्रम से सोलह स्वरों को लिखें । तत्पश्चात् पांच दलों में क से लेकर म पर्यन्त प्रतिदल पांच पांच वर्ण क्रमशः लिखे । दशम दल में य र ल व इन चार वर्णों को लिखे, ग्यारहवें दल में श ष स ह एवं बारहवें दल में लं क्षं इन दो वर्णों को लिखे । अन्त में गोलाकार में रां इस वीज को लिखे ॥४९॥

**तद् बहिः षोडशदलं लिखेत् तत् केशरे ह्रियम् ।**
**वर्मास्त्रनतिसंयुक्तं दलेषु द्वादशाक्षरम् ॥५०॥**

**द्वादशदलाद् बहिः मण्डलं विधाय तदुपरि षोडशदलं लिखेत् तस्य केशरस्थाने ह्रीं वीजं लिखेत् । दलेषु च षोडशाक्षरान् लिखेत् । ते च वर्णाः वासुदेवमन्त्रस्य द्वादशवर्म हुं अस्त्रं फट् नतिः नमः, हुं फट् नमः इतियोगेन षोड शाक्षरान् लिखेदितिभावः ॥५०॥**

द्वादश दलकमल के बाहर गोलाकार रेखा लिखकर उसके ऊपर षोडशदल कमल लिखे । उन दलों के केशर स्थान में ह्रीं मन्त्र को लिखे, और सोलह पत्रों में सोलह अक्षरों को लिखे, उनका विवरण इसप्रकार है कि-ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

इस मन्त्र का वारह अक्षर, वर्म हुं अस्त्र फट् नति नमः अर्थात् हुं फट् नमः इनको संकलन करने से सोलह अक्षर होते हैं उन को लिखे ॥५०॥

**तत् सन्धिष्वीरजादीनां मन्त्रान् मन्त्री समालिखेत् ।**
**हं सृं भृं बृं लृं शृं जृं चालिखेत् सम्यक् ततो बहिः ॥५१॥**

षोडशदलानां सन्धिभागेषु उपरिकरिष्यमाणवृत्तस्याधः श्रीहनुमदादीनां मन्त्राणां बीजं लिखेत् । श्रीहनुमत् सुग्रीवभरतविभीषणलक्ष्मणशत्रुघ्नजाम्बवता मङ्गदधृष्टिजयन्तविजयसुराष्ट्रराष्ट्रवर्धनाकोपधर्मपालसुमन्त्राणां पार्षदानां बीजान् लिखेत् । तत्र विन्दुशिरस्कानां नामाद्यक्षराणां बीजत्वं ज्ञेयम् । यथा 'हं हनुमते नमः' इति । श्रीहनुमदादिषोडशबीजाद् बहिः हं सृं भृं बृं लृं शृं जृं च सम्यक् लिखेत् ॥५१॥

षोडशदल कमल के सन्धि भागों में अर्थात् वाद में ऊपर की जानेवाली वृत्ताकार रेखा के नीचे श्रीहनुमान् आदि मन्त्रों के बीजाक्षर को लिखे । श्रीहनुमान् सुग्रीव, भरत, विभीषण, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, जाम्बवान् अङ्गद धृष्टि, जयन्त, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्धन, अकोप, धर्मपाल सुमन्त्र इन पार्षदों के बीजों को लिखे । बीज मन्त्र के विषय में व्यवस्था है कि नाम के आदि अक्षर के ऊपर अनुस्वार लगाने पर वीजत्व होता है जैसे-'हं हनुमते नमः' श्रीहनुमान् आदि सोलह बीजों के बाहर हं सृं भृं बृं लृं शृं जृं इन बीजों को सम्यक् प्रकार से लिखें ॥५१॥

**द्वा त्रिंशारं महापद्मं नादविन्दुसमायुतम् ।**
**विलिखेन्मन्त्रराजार्णांस्तेषु पत्रेषु यत्नतः ॥५२॥**

ततः वृत्ताकारां रेखां विधाय स्पष्टतया नादविन्दुसहितं द्वात्रिंशत् दलं महापद्मं लिखेत् । तत्र द्वात्रिंशद्दलेषु ।

'रामभद्र?महेष्वास? रघुवीर?नृपोत्तम? ।
भो दशास्यान्तकास्माकं रक्ष देहि श्रियं च ते'

इतिमन्त्रराजस्य वर्णान् पूर्वादिक्रमतः दलस्य मध्येलिखेत् केसरभागे च नादविन्दुः लिखेत् । तत्र अर्धचन्द्राकारः नादः तस्योपरि विन्दुः एव नादविन्दुः । स च प्रणवावयवबोधकः । 'अर्धमात्रात्मको रामः ब्रह्मानन्दैकविग्रहः' इत्युक्तत्वात् ॥५२॥

तत्पश्चात् वृत्ताकार रेखा लिखकर उसके ऊपर स्पष्ट रूपसे नाद विन्दु सहित द्वा त्रिंशत् (३२) दल कमल लिखे । उस वत्तीस पत्रों वाला कमल के अन्दर 'रामभद्र महेष्वास रघुवीर नृपोत्तम । भो दशास्यान्तकास्माकं रक्ष देहि श्रियं च ते' इस मन्त्रराज के वत्तीस वर्णों को पूर्व आदि दिशा के क्रम से दलके मध्य भाग में लिखे । यहां नाद विन्दु से अभिप्राय है कि अर्धचन्द्राकार रेखा को नाद कहते हैं एवं उसके ऊपर लिखा जानेवाला विन्दु विन्दु कहलाता है जिसे लोकभाषा में चन्द्रविन्दु कहते हैं। अर्धमात्रा स्वरूप ब्रह्मानन्द ही एक मात्र जिनकी आकृति है ऐसे भगवान् श्रीरामजी हैं अर्थात् मन्त्रराज के प्रत्येक वर्णों के ऊपर चन्द्रविन्दु लिखा जाना चाहिये ॥५२॥

**ध्यायेदष्टवसूनेकादशरुद्रांश्च तत्र वै ।**
**द्वादशेनांश्च धातारं वषट्कारं ततो बहिः ॥५३॥**

वृत्ताकारेण लिखितेषु द्वात्रिंशत् दलेषु श्रीरामस्य अनुष्टुभस्य मन्त्रस्य द्वात्रिंशत् वर्णान् विलिख्य तत्र पत्रेषु ध्रुवादीन् अष्टवसून्, वीरभद्रादीन् एकादश रुद्रान्, वरुणादीन् द्वादशदिवाकरान् धातारं च ध्यायेत् । अर्थात् एतेषां देवानां ध्यानपूर्वकम् पत्रेषु वर्णान् लिखित्वा ततो बहिः पत्रकोणोपरि वषट्कारं लिखित्वा पूजयेत् इतिभावः । ध्रुवादयश्च यथा-

ध्रुवोधरस्तथा सोम आपोवायुस्तथाऽनलः ।
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौ प्रकीर्तिताः ॥

वीरभद्रशम्भुगिरीशाजैकपादाऽहिर्बुध्न्यपिनाक्यपराजितभुवनाधीशकपालिदिक्पतिस्थाणवः, इति एकादशरुद्राः ।

वरुणः सूर्यवेदाङ्गौ भानुरिन्द्रोरविस्तथा ।
गभस्तिश्च यमः स्वर्णरेताचैव दिवाकरः ॥
मित्रोविष्णुरिति प्रोक्ता द्वादशामी दिवाकराः ॥५३॥

गोलाकार में लिखे गये वत्तीस पत्रों वाला कमल के प्रत्येक दल में 'रामभद्रमहेष्वास' इत्यादि अनुष्टुभ मन्त्रराज के वत्तीस अक्षरों को लिखकर उन पत्रों में ध्रुव आदि आठ वसु, वीरभद्र आदि एकादश रुद्र, तथा वरुण आदि द्वादश दिवाकर एवं धाता का पूर्व आदि क्रम से प्रत्येक पत्रों में ध्यानपूर्वक लिखकर पूजन करना चाहिये । तथा उसके ऊपर गोलाकार रेखा करके प्रत्येक पत्र के कोण के ऊपर

वषट्कार लिखकर पूजन करें । यहां ध्रुव आदि का विवरण इसप्रकार है→

ध्रुव, धर, सोम, आप, वायु, अनल, प्रत्यूष और प्रभास ये आठ वसु हैं । वीरभद्र, शम्भु, गिरीशः अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य, पिनाकी, अपराजित, भुवनाधीश, कपाली, दिक् पति और स्थाणु ये एकादश रुद्र हैं । वरुण, सूर्य, वेदाङ्ग, भानु, इन्द्र, रवि, गभस्ति, यम, स्वणरिता, दिवाकर, मित्र एवं विष्णु ये द्वादश दिवाकर हैं । तथा इनके साथ धाता को जोडने पर कुल (३२) वत्तीस वसु आदि होते हैं ॥५३॥

**भूगृहं वज्रशूलाढ्यं रेखात्रयसमन्वितम् ।**
**द्वारोपेतं च राश्यादिभूषितं फणिसंयुतम् ॥५४॥**

तस्माद् बहिः चतुरस्तं भूगृहं कुर्यात् । भूगृहस्य चतुर्णां कोणानामुपरि शूलस्य तदुपरिवज्रस्य चाकृतिं लिखेत् । सत्वरजः तमः स्वरूपाः तिस्त्रः रेखाः ताभियुक्तं प्रागादिचतुर्भिद्वारैः सहितं मेषादिभिः द्वादशसंख्याकैः राशिभिः समलङ्कृतमष्टाभिः कुलनागैर्युक्तं भूगृहं कुर्यादिति भावः । तत्र राश्युल्लेखे अयं क्रमः→पूर्वद्वारोपरिमेषपूर्वाग्निकोणान्तरालेवृषमग्निकोणदक्षिणान्तरालेमिथुनं दक्षिणद्वारोपरिकर्कमेवम् क्रमेण द्वादशराशयोलेखनीयाः । ईशानपूर्वयोरन्तराले मीनं लिखेत् । अष्टकुलनागाः-शेषवासुकितक्षकशंखश्वेतमहापद्मकम्बलाश्वत-रेलापत्रकर्कोटकाभिधानाः । तेषामप्युल्लेखो विधेयः ॥५४॥

उसके बाहर चतुरस्त्र भूगृह का उल्लेख करे । भू गृह के चारों कोणों के ऊपर शूल एवं वज्र के आकृति का लेखन करे । सत्व रजस् एवं तमस् गुण स्वरूप तीन रेखाये बनावें । उन तीनों रेखाओं के सहित पूर्व आदि चारों द्वारों से युक्त यन्त्र में मेष आदि वारह राशियों को लिखना चाहिये । उन राशियों से सुशोभित एवं आठ कुल नागों से युक्त भूगृह बनावें । उसमें राशियों का उल्लेख करने में यह क्रम है कि पूर्व द्वार के ऊपर मेष लिखे, पूर्व और अग्नि कोण के मध्य वृष, अग्निकोण एवं दक्षिण द्वार के मध्य मिथुन इसी क्रम से वारह राशियों का उल्लेख करें, दक्षिण द्वार पर कर्क एवं ईशान पूर्व द्वार के अन्तराल में मिथुन लिखे । आठ कुल नाग निम्न लिखित है→शेष, वासुकि तक्षक शङ्ख श्वेत महापद्म, कम्बालाश्वतर, इलापत्र कर्कोटक, इनका भी उल्लेख किया जाना चाहिये ॥५४॥

**एवं मण्डलमालिख्य तस्य दिक्षु विदिक्षु च ।**

**नारसिंहं वाराहं च लिखेन् मन्त्रद्वयं तथा ॥५५॥**

**इत्थं मण्डलं लिखित्वा तस्य पूर्वादिचतुर्षु दिक्षु आग्नेयादिविदिक्षुकोणेषु क्रमेण नारसिंहं वाराहं च बीजं लिखेत् । पूर्वादिषु नारसिंहं, कोणेषु च वाराहं मन्त्रं लिखेत् ॥५५॥**

इसप्रकार मण्डल लिखकर उस के पूर्व दक्षिण आदि दिशाओं में तथा अग्नि आदि कोणों में क्रमशः नरसिंह का एवं वराह भगवान् का मन्त्र लिखे । पूर्व आदि दिशाओं में नरसिंह का एवं अग्नि आदि कोणों में वराह का मन्त्र लिखे ॥५५॥

**कूटरेफानुग्रहेन्दुनादशक्त्यादिसंयुतः ।**
**यो नृसिंहः समाख्यातो ग्रहमारणकर्मणि ॥५६॥**

**कूटः क्षकार-रेफः, अनुग्रह औकार नादः विन्दु नादः प्रणवस्य षष्ठ अवयवः शक्तिः सप्तमः एवम्भूतः 'क्ष्रौं' इतिसनृसिंहप्रसिद्धः स नृसिंहः ग्रहाणां भूतप्रेतादीनाञ्च मारणकर्मणि प्रशस्तः ॥५६॥**

कूट का अर्थ क्षकार रेफ अनुग्रह से औ विन्दु नाद प्रणव का छठा अंश शक्ति से सातवां अंश इत्यादि स्वरूप वाला क्ष्रौं ऐसा नृसिंह भगवान् प्रसिद्ध हैं। जो ग्रहों एवं भूतप्रेत आदि के संहार क्रिया में लोक प्रसिद्ध हैं ॥५६॥

**अन्त्याधीशवियद् विन्दुनादैर्वीजं च सौकरम् ।**
**हुंकारं चात्र रामस्य मालामन्त्रोऽधुनेरितः ॥५७॥**

**अन्त्याधीशः शिवः तत् सम्बन्धी उकारः तेजसहितः वियत् हकारः विन्दुना नादेन च युक्तः वराहमन्त्रस्य वीजम् 'हुँ' इतिसमाख्यातम् । तदेव स्फुटयन्नाह हुंकारमिति । एवम् शास्त्रे भगवतः श्रीरामस्य मालामन्त्रः कथितः ॥५७॥**

अन्त्याधीश का अर्थ शिव है, तत् सम्बन्धी वीज उकार हुआ । उस उकार के सहित वियत् अर्थात् हकार वह नाद एवं विन्दु के सहित अर्थात् 'हुँ' यह वराह भगवान् का वीज मन्त्र है । उसी को सुस्पष्ट करते हुए उपनिषद् कहती है हुँकार । इसप्रकार शास्त्र में भगवान् श्रीरामजी का माला मन्त्र कहा गया है ॥५७॥

**तारोंनतिश्च निद्रायाः स्मृतिभेदश्च कामिका ।**
**रुद्रेण संयुता वह्निर्मेधामरविभूषिता ॥५८॥**

दीर्घाक्रूरयुताह्लादिन्यथो दीर्घासमानदा ।
क्षुधा क्रोधिन्येयथामोघाविश्वमप्यथमेधया ॥५९॥
युक्ता दीर्घा ज्वालिनी च ससूक्ष्मामृत्युरूपिणी ।
स प्रतिष्ठाह्लादिनी त्वक् क्ष्वेलः प्रीतिश्च सामरा ॥६०॥
ज्योतिस्तीक्ष्णाग्निसंयुक्ता श्वेतानुश्वारसंयुता ।
कामिका पञ्चमो लान्तस्तां तां तो धान्त इत्यथ ॥६१॥
ससानन्तो दीर्घयुतो वायुः सूक्ष्मायुतोविषः ।
कामिका कामिकां रुद्रयुक्ताथोथस्थिर स ए ॥६२॥
तापिनी दीर्घयुक्ता भूरनिलोऽनन्तगोनलः ।
नारायणात्मकः कालः प्राणोऽम्भोविद्यया युतः ॥६३॥
पीतारतिस्तथा लान्तो योन्या युक्तस्ततो नतिः ।
सप्तचत्वारिंशब्दर्णो गुणान्तः सगुणस्त्वयम् ॥
राज्याभिषिक्तस्य तस्य रामस्योक्तक्रमाल्लिखेत् ॥६४॥

'ॐ नमो भगवते रघुनन्दनाय रक्षोघ्न विशदाय मधुरप्रसन्नवदनायामित तेजसे बलाय रामाय विष्णवे नमः' इतिसप्तचत्वारिंशदक्षरात्मकः श्रीरामस्य सगुणोमालामन्त्रः । स च राज्याभिषिक्तस्य न तु वनवासिनः । तस्योद्धारं सप्तभि र्मन्त्रैरुक्तवान् ।

तद्यथा-तारः ओकारः नतिः-नमः, निद्राकला मकारः स्मृतिकलासम्बद्धः गक्कारः, मेदः सम्बन्धीवकारः कामिकलया-तकारः स च रुद्रेणैकादशस्वरेण एकारेण युक्तः । वह्निः रेफमेधाकलासम्बद्धः धकारः स च ईश्वरसम्बन्ध्युकारेण संयुतः । दीर्घकलया मकारः सचाक्रूरयुतः अनुस्वारसहितः ह्लादिनीकलया दकारः दीर्घकलया नकारः स च मामदाकलया आकारेण युतः, क्षुधासम्बद्धो यकारः क्रोधिनी सम्बद्धः रकारः अमोघासम्बन्धी क्षकारः विश्वात्मा वासुदेवः तत् सम्बन्धी ओकारः मेधासम्बन्धी घकारेण संयुक्तः नकारः ज्वालिनी सम्बन्धी वकारः स च सूक्ष्मदेवतया इकारेण संयुतः, मृत्युरूपानामकलासम्बन्धी शकारः

ह्लादिभीतः दकारः सप्रतिष्ठाया आकारेण युक्तः त्वग्धातुसम्बद्धः धकारः क्ष्वेलनेन मकारः प्रीतिकलया धकारः, सचामरेश्वरेण उकारेण संयुतः ज्योतिः रेफः तीक्ष्णाकला पकारः सचाग्निनारेफेण संयुतः श्वेतकला सम्बन्धी तकारतस्य पञ्चमो नकारः लान्तो वकारः तस्यान्तः यः यस्यान्तः दः तेन तान्तान्तेन दकारः धान्तो नकारः सानन्तः आकारेण सहितः वायुः यकारः स च दीर्घाकारेण युतः विषोमकारः स च सूक्ष्मदेवतया इकारेण युक्तः, कामिका तकारः पुनः कामिका तकारः स च रुद्रेण एकादशस्वरेण एकारेण युक्तः स्थिरकला सम्बद्धः जकारः स इति ए इति द्वयोः संयोगेन सेतापिनीकलयावकारः भूः लकारः स च दीर्घाकारेण युतः अनिलयकारः अनन्त आकारः तदङ्गः अनलः रेफ नारायणात्मकः काल आकारः तत् मकारः प्राणः यकारः, अम्भः जलं वकारः स च विद्याया इकारेण युक्तः, पीतकलया ष् कारः रतिकलया णकारः तेन संश्लिष्टः लान्तो वकारः स च योन्या एकारेण संयुक्तः ततो नति नमः शब्दः, इत्थं सप्तचत्वारिशदक्षरात्मकस्य मालामन्त्रस्योद्धारः भवति ॥५८/६४॥

'ॐ नमो भगवते रघुनन्दनाय रक्षोघ्न विशदाय मधुरप्रसन्न वदनायामित तेज से बलाय रामाय विष्णवे नमः' यह (४७) सैंतालिस अक्षरात्मक स्वरूप वाला श्रीरामचन्द्रजी का माला मन्त्र है। और वह मन्त्र प्राप्त राज्याभिषेक श्रीरामजी का मन्त्र है। नकि वनवासी श्रीरामचन्द्रजी का इस माला मन्त्र का उद्धार श्रीरामतापनीय उपनिषद् में सात मन्त्रों में निरूपण किया गया है वह इसप्रकार से है-

तारः से ॐकार नति से नमः निद्रा कला सम्बन्धी मकार स्मृति कला से गकार मेद सम्बन्धी वकार कामिकला से तकार और वह रुद्र अर्थात् ग्यारहवां स्वर एकार से युक्त, वह्नि से (२) रेफ मेधाकला सम्बन्धी घकार और वह ईश्वर (शिव) सम्बन्धी उकार से युक्त अर्थात् घु दीर्घकला से नकार और वह अक्रूर अर्थात् अनुस्वार के सहित ह्लादिनीकला से दकार दीर्घकलाकं अर्थ नकार और वह मानदाकला आकार से युक्त, क्षुधा सम्बन्धी यकार क्रोधिनीकला सम्बन्धी (२) रेफ अमोघा सम्बन्धी क्षकार विश्वात्मा वासुदेव तत् सम्बन्धी ओकार से युक्त अर्थात् क्षो, मेधा सम्बन्धी घकार वह नकार से संयुक्त ज्वालिनीकला सम्बन्धी वकार और वह सूक्ष्म देवता अर्थात् इकार से संयुक्त मृत्यु स्वरूपा नामकला सम्बन्धी शकार ह्लादिनीकला से दकार वह प्रतिष्ठा अर्थात् आकार के सहित, त्वग् धातु से सम्बद्ध यकार, क्ष्वेलनविष तत् सम्बन्धी मकार

प्रीतिकला से धकार और वह ईश्वर (शिव) उकार से युक्त, ज्योति अग्नि तत् सम्बन्धी रेफ (२) तीक्ष्णकला पकार और वह अग्नि अर्थात् रेफ से संयुक्त श्वेतकला सम्बद्ध सकार, और वह अनुस्वार से युक्त कामिका कला सम्बन्धी तकार और उसका पांचवां अक्षर नकार ल अक्षर का अन्त वकार त का अन्त थ एवं य थ का अन्त द अर्थात् तान्तान्तः का अर्थ दकार ध का अन्त अक्षर नकार अनन्त के सहित अर्थात् आकार के सहित नकार, वायु से यकार और वह दीर्घ अकार से युक्त यहां पर दो अकार को सन्धि करने पर आकार हुआ है, उसे मन्त्राक्षर गणना करते समय दो अक्षर गिने जायेंगे। अन्यथा सैंतालिस अक्षर पूर्ण नहीं होगा। विष से मकार और वह मकार सूक्ष्म देवता अर्थात् इकार से युक्त होकर मि-कामिकला तकार और पुनः कामिका तकार अर्थात् एक अमित का तकार दूसरा तेजसे का तकार और वह द्वितीय तकार रुद्र अर्थात् ग्यारहवां स्वर एकार से युक्त, स्थिरकला सम्बन्धी जकार स और ए को संयोग करने से बनता है से, तापिनी कला से वकार मु का अर्थ लकार और वह दीर्घ आकार से युक्त, अनिल का अर्थ यकार अनन्त से आकार और वह अनल रेफ नारायणात्मक काल आकार इसके पश्चात् मकार प्राण (वायु) यकार अम्भ से जल का वीज वकार और वह विद्या से अर्थात् इकार से युक्त, पीतकला का अर्थ षकार रतिकला का अर्थ णकार और उससे सटा हुआ ल अक्षर का अन्त वकार और वह वकार योनि अर्थात् एकार से युक्त इसके पश्चात् नति अर्थात् नमः शब्द है। इसप्रकार सैंतालिस अक्षरों वाला भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के माला मन्त्र का उद्धार सुस्पष्ट होता है ॥५८/६४॥

**इदं सर्वात्मकं यन्त्रं प्रागुक्तं ऋषिसेवितम् ।**
**सेवकानां मोक्षकरं आयुरारोग्यवर्धनम् ॥६५॥**
**अपुत्राणां पुत्रदं च बहुना किमनेन वै ।**
**प्राप्नुवन्ति क्षणात् सम्यक् अत्र धर्मादिकानपि ॥६६॥**

इदं पूर्वोक्तं यन्त्रं सर्वदेवमुन्याद्यात्मकमस्ति, ननु देवतान्तरपूजनादि दमनन्यत्ववाधकं तत् कथं सेवकानां मोक्षकरं स्यादित्युच्यते ?। अङ्गबुध्या तेषां पूजा विधानेन नानन्यत्वहानिः। यन्त्रस्य श्रीरामशरीरत्वश्रुत्या आवरणदेवतानां तदङ्गत्वं सिद्धम्। तेषामावरणदेवतानां श्रीरामसेवकत्वेन पूजनाच्च न दोषः।

**अस्य श्रीवशिष्ठादिभिः सेवनात् सदाचारत्वम् । न केवलं देहान्तेमोक्षप्रदमपि तु जीवनदशायामाधिव्याधिविनाशकत्वेन सुखदम् । अतः उक्तमायुरारोग्यवर्धनम पुत्राणां पुत्रदञ्चेति । अस्य यन्त्रस्य सम्यगनुष्ठानेन सकलपुरुषार्थसिद्धिरितिभावः ॥६५-६६॥**

यह पूर्व में बताया गया श्रीराम यन्त्र समस्त देवता एवं मुनियों के उपासना-साधनात्मक है। यहां प्रश्न उठता है कि सर्वदेव मुन्यात्मक यदि यन्त्र है तो अनन्यत्व की हानि होती है, मोक्ष तो अनन्य भक्ति से ही प्राप्त होता है। तो मोक्ष प्रद यह यन्त्र नहीं हो सकेगा। इसका समाधान है कि अंग की भावना से उन-उन देवताओं एवं मुनियों का पूजा विधान करने से अनन्यत्व में किसी तरह की हानि नहीं होती है। इस यन्त्र को श्रुति भगवान् श्रीरामजी का शरीर कहती है और आवरण देवताओं का श्रीरामजी के अवयव होने की सिद्धि होती है। उन आवरण देवताओं का श्रीरामचन्द्रजी के सेवक रूपमें पूजन करने से अनन्यत्व हानि का कोई दोष नहीं है। यह यन्त्र इस यन्त्र का वशिष्ठादि ऋषि मुनियों के द्वारा सेवित होने से सदाचारत्व प्रमाणित होता है। यह यन्त्र इस शरीर का अवसान होने के पश्चात् केवल मोक्षदायक ही नहीं है अपितु जीवन दशा में भी समस्त आधि व्याधियों का विनाशक होने के कारण सुख दायक है। इसलिये कहा है आयुष्य एवं आरोग्य का बढाने वाला है एवं पुत्र हीन को पुत्र प्रदान करनेवाला है। इस यन्त्र का विधान पूर्वक पूजन करने से सर्वविध धर्म अर्थ काम एवं मोक्ष स्वरूप पुरुषार्थों की सिद्धि होती है यह तात्पर्य है ॥६५-६६॥

**इदं रहस्यं परममीश्वरेणापि दुर्गमम् ।**
**इदं यन्त्रं समाख्यातं नदेयं प्राकृते जने ॥६७॥ इति॥**

**इदं यन्त्रं सम्यंग् निरन्तरं पितं गुप्तञ्च, यत् ईश्वरेण अपि दुर्बोध्यम् । इदञ्च नीचे जने न दातव्यम् । इतिशब्दः उपनिषत् समाप्तिबोधकः ॥६७॥**

यह पूर्व में बताया गया श्रीराम यन्त्र अत्यन्त गुप्त है। यह ईश्वर के द्वारा भी बडी कठिनाई से समझने योग्य है। जो सम्यक् प्रकार से पूर्ण रूपसे प्रतिपादित किया गया है। और यह यन्त्र नीच स्वभाव वाले सामान्य अपात्रों को नहीं दिया जाना चाहिये। इस मन्त्र में इति शब्द उपनिषत् की समाप्ति बोध कराने के लिये है ॥६७॥

卐 इति चतुर्थोपनिषद् समाप्ता 卐

पूजा साधनात्मकं यन्त्रनिरूपणं चतुर्थोपनिषदि कृतम् । सम्प्रति पूजां निरूपयितुं पञ्चमोपनिषत् प्रारभ्यते । तत्र विघ्नादीनां देवतान्तराणामपि पूजनं विधास्यते । परंश्रीरामशेषत्वेन तेषां पूजने न दोषः । श्रीरामपूजाङ्गत्वेन पूजन मितिभावः ।

**भूतादिकं च शोधयेद् द्वारपूजां कृत्वा पद्माद्यासनस्थः प्रसन्नः । अर्चाविधावस्य पीठाधरोर्ध्वं पार्श्वार्चनं मध्यपद्मार्चनञ्च ॥१॥**

प्रथमं द्वारपूजां कृत्वा पद्मस्वस्तिकाद्यासनस्थः प्रसन्नमनाः समुपासकः भूतादिपञ्चकमादिशब्देन आत्मानं प्रतिमां पूजाद्रव्याणि क्षितिञ्च शोधयेदिति ज्ञेयम् । तत्र भूतशुद्ध्यै यं रं यं वं लं हम् इति बीजैः वाय्वग्निजलपृथिव्याकाशान् क्रमेण शोषणदाहननिःसारणप्लावनपिण्डीकरणादीनि विधेयानि । तत्र पूरकेण षोडशवारजपेन वायुबीजेन शरीरपापपुरुषयोः शोषणं कृत्वा 'रं' इतिचतुः षष्ठिवारजपेनाग्निवीजेन कुम्भकेन दाहनं विधाय पुनः 'यं' वीजेन रेचकेन पापपुरुषभस्म बहिः निस्सार्य, 'वम्' इति जलवीजेन षोडशवारजपेन शरीर भस्मप्रसिच्य, 'लं' इति पृथिवी बीजेन कुम्भकेन चतुः षष्ठिवारजपेन पिण्डीकृत्य, 'हं' इति आकाशवीजेन एकचत्वारिशद् वारजपेन मूर्धादिसर्वावयवानुत्पाद्य, तस्य शुद्धशरीरस्य प्राणप्रतिष्ठा मन्त्रेण प्राणान् प्रतिष्ठाप्य श्रीराममन्त्रवर्णादिन्यासेन श्रीरामशरीरं निष्पाद्य श्रीरामसदृशोभूत्वा देवोभूत्वा देवं यजेद् नादेवो देवमर्चयेदिति दिशा देवार्चनयोग्यतामापादयितुं भूतशुद्धिंसमाचरेत् । मूलाधारस्थितां कुण्डलिनीं परदेवतामित्याद्युच्चार्य प्रत्येकं प्रविलापयेत् । भुवं जले जलं वह्नौ वह्निं वायौ वायुमाकाशेप्रविलाप्य तम् अहंकारे अहंकारं महत् तत्त्वे महत् प्रकृतौ मायामात्मनि, एवं शुद्धसच्चिन्मयोभूत्वा, दक्षिणकुक्षि स्थितमंगुष्ठप्रमाणं कृष्णवर्णं ब्रह्महत्यादियुक्तं पापपुरुषं वायुवीजस्मरणेन शोषयेत्। ततो वह्निवीजेन दहेत् ततः वायुवीजेन पूर्ववत् निःसारयेत् अमृतवीजेनाप्लावयेत्, ततः वायुवीजं जपेन मूर्धादिपादपर्यन्तान्यङ्गान्युत्पाद्य, आकाशादीनिभूतानि पुनरूत्पादयेत् । ततः विधिना प्राणप्रतिष्ठां विधाय ऋष्यादिन्यासं कुर्यात् । आत्मशुद्धिः वैराग्येन प्रतिमाशुद्धिरनुलेपनक्षालनादिभिः, केशकीटादिनिवारणेन पूजाद्रव्यशुद्धिः । उप लेपनादिभिः भूशुद्धिः । एवं

**विशुद्धः पूजकः चित्तनैर्मल्यवान् पीठाधरोर्ध्व मर्चयित्वामध्यपद्मार्चनं च विधाय, तत्र विधिः पीठाधोभागाय नमः उर्ध्वभागाय, पूर्वादिपार्श्वाय पीठमध्यकमलाय च नमः इतिपूजयेत् ।।१।।**

पूजा साधन स्वरूप यन्त्र का निरूपण चतुर्थ उपनिषद् में किया गया है। सम्प्रति पञ्चम उपनिषद् पूजा का विधान निरूपण करने के लिये आरम्भ करते हैं। उसमें विघ्न आदि अन्य देवताओं का भी पूजा विधान किया जायगा। पर श्रीरामजी का शेष होने के कारण उनके पूजन में किसी प्रकार का दोष नहीं है। अर्थात् श्रीरामजी की पूजा का अङ्ग स्वरूप में इन देवताओं का पूजन किया जाता है यह भाव है। इसलिये 'भूतादिकं च शोधयेत्' से आरम्भ करते हैं।

पहले द्वार पूजा करके पद्मासन या स्वस्तिकादि आसन में प्रसन्न चित्त होकर वैठकर उपासक भूत आदि पांच की तथा आदि शब्द से आत्मा, प्रतिमा, पूजा द्रव्य, एवं पृथ्वी का भी शोधन करे यह जानना चाहिये। उसमें भूत शुद्धि के लिये यं रं वं लं हं इन बीजों से वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, एवं आकाश को क्रमशः शोषण, दाहन, निःसारण, प्लावन, पिण्डीकरण आदि किया जानना चाहिये। इसमें पूरक के द्वारा सोलह वार वायुवीज के जप से शरीर एवं पाप पुरुष का शोषण करके रं इस अग्नि वीज के द्वारा ६४-वार जप से कुम्भक में दाहन करके पुनः भस्म को वायु वीज के रेचक के द्वारा पापपुरुष के भस्म को बाहर निकाल कर वं इस जल वीज के द्वारा १६-वार जप से शरीर के भस्म को सिञ्चित करके लं इस पृथ्वी वीज के ६४-वार कुम्भक जप से उसका पिण्ड बनाकर हं इस आकाश वीज से ४१-वार जप से शिर आदि सभी अवयवों को उत्पन्न करके उस शुद्ध शरीर की प्राणप्रतिष्ठा मन्त्र के द्वारा प्राणों की प्रतिष्ठा करके श्रीराम मन्त्र के वर्ण आदि के न्यास से श्रीरामजी का शरीर बनाकर श्रीरामजी के सदृश होकर 'देवता सदृश बनकर देवता की उपासना करनी चाहिये विना देवता जैसा बने देवता की उपासना नहीं करनी चाहिये' इस शास्त्रीय विधान के अनुसार अपने आप में देवता की उपासना की योग्यता को उत्पन्न करने के लिये विधिपूर्वक भूतशुद्धि का सम्यक् आचरण करे।

मूलाधार में विद्यमान कुण्डलिनी पर देवता इत्यादि मन्त्र का उच्चारण करके प्रत्येक भूतों का संहार क्रम से प्रविलापन करना चाहिये। अर्थात् पृथ्वी तत्त्व को जल

में विलय करना चाहिये। जलीय तत्त्व को अग्नि में, अग्नि तत्त्व को वायु में विलय करके एवं वायु तत्त्व को आकाश में प्रविलापन करके आकाश को अहंकार में प्रविलापन करें। अहंकार को महत् तत्व में महत् तत्व को प्रकृति अर्थात् माया में प्रविलापन करके माया तत्व को आत्मा में प्रविलापन करें। इसप्रकार विशुद्ध सत् चित् मय होकर शरीर के दक्षिण कुक्षि में विद्यमान अंगुष्ठ मात्र प्रमाण वाला काले रंग का ब्रह्महत्या आदि विभिन्न प्रकार के पापों से परिपूर्ण पाप पुरुष को वायुवीज के स्मरण के द्वारा शोषण करना चाहिये। तत्पश्चात् वह्नि वीज के स्मरण से पापपुरुष का दहन करके वायुवीज के जप के द्वारा पहले के समान पापपुरुष के भस्म का निस्सारण करे। पुनः वायुवीज के जप से सिर से लेकर पैर पर्यन्त समस्त अङ्गों का उत्पादन करके आकाश, वायु, अग्नि, जल आदि भूतों को पुनः उत्पन्न करें। भूतोत्पत्ति के पश्चात् शास्त्रीय विधान के अनुसार प्राण प्रतिष्ठा आदि करके पूर्व निरूपित क्रम से ऋषि आदि का षडङ्ग न्यास करना चाहिये। वैराग्य उत्पत्ति के द्वारा आत्मशुद्धि होती है जिसे संसार से उत्कट वैराग्य होता है उसकी आत्मा शुद्ध हो जाती है। चन्दनादि के अनुलेपन एवं प्रक्षालन आदि क्रियाओं से प्रतिमा शुद्धि की जाती है। केश कीट आदि अशुद्ध वस्तुओं को पूजा साधनों में से निकालने की क्रिया के द्वारा पूजा द्रव्यों की शुद्धि होती है। मार्जन उपलेपनादि क्रियाओं से भू शुद्धि होती है। इसप्रकार की क्रियाओं के द्वारा सर्वतोभावेन विशुद्ध होकर उपासक चित्त निर्मलता आदि से सम्पन्न होकर पीठ के अधोभाग ऊर्ध्व भाग की पूजा करके और मध्यभाग के कमल की पूजा करके अग्रिम विधान का सम्पादन करे। यहां पर पीठादि की पूजा करने का विधान है कि 'पीठाऽधोभागाय नमः' 'पीठोर्ध्वभागाय नमः' 'पीठ पूर्वपार्श्वाय नमः' इसी तरह दक्षिण, पश्चिम, उत्तर पार्श्व की पूजा करके 'पीठमध्यकमलाय नमः' यह कहकर पीठ मध्य की पूजा करे ॥१॥

**कृत्वामृदुश्लक्ष्णसुतूलिकायां रत्नासने देशिकं चार्चयित्वा ।**
**शक्तिं चाधाराख्यकां कूर्मनागौ पृथिव्यब्जे स्वासनाधः प्रकल्प्य ॥२॥**

पीठाद् बहिरेवास्य वामभागे कोमलस्निग्धसुशोभनतूलिकायां रत्नमिश्रितसिंहासने भावनाविषयीभूतमाचार्य्यं पूजयित्वा स्वशरीरित्वेनाभेदेन चिन्तितस्य श्रीरामस्य यत् पूजापीठं तस्याधोभागे आधारशक्तये नमः तदुपरि

**कूर्माय नमः तदुपरि शेषाय नमः तदुपरि पृथिव्यै नमः तदुपरि च कमलाय नमः इति आधारशक्तिपञ्चकं प्रकल्प्य ॥२॥**

पीठ के बाहर ही इसके वामभाग में सुकोमल सुस्निग्ध सुशोभित रुई से वना उपवर्ह पर रत्नादि से सुसज्जित सिंहासन के ऊपर अपने अन्तःकरण से भावित आचार्य की विधिवत् पूजा करके अपने शरीरी के स्वरूप में परि चिन्तित भगवान् श्रीरामजी के शरीर का अभेद रूपमें चिन्तित का जो पूजा पीठ है उसके निम्न भाग में 'आधार शक्तये नमः' उसके ऊपर 'कूर्माय नमः' उसके ऊपर 'शेषाय नमः' उसके ऊपर 'पृथिव्यै नमः' और उसके ऊपर 'कमलाय नमः' इसप्रकार से आधार शक्तिपञ्चक की विधिवत् कल्पना करके ॥२॥

**विघ्नं दुर्गां क्षेत्रपालञ्च वाणीं वीजादिकांश्चाग्निदेशादिकांश्च ।**
**पीठस्यांघ्रिस्वेषु धर्मादिकांश्च नञ् पूर्वां स्तांतस्य दिक्ष्वर्चयेच्च ॥३॥**

**आग्नेयनैरृत्यवायव्येशानदेशसम्बद्धान् गं दुं क्षं सं इतिवीजसहितं गणेशदुर्गाक्षेत्रपालसरस्वतीदेवताः पूजयित्वा तेष्वेव कोणेषु धर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्यान् वीजसहितैः मन्त्रैः समर्चयेत् । नञ् पूर्वान् तान् अधर्माज्ञानावैराग्यानैश्वर्यान् पूर्वादि दिक्षु अर्चयेत् । सर्वत्रानुस्वारसहितं नामाद्याक्षरं वीजं तैः सहितैर्मन्त्रैरर्चयेत् ॥३॥**

आग्नेय नैरृत्य वायव्य ईशान कोण देश से सम्बद्ध गं दुं क्षं सं इन तत्तद् देवताओं के वीज से सम्बन्धित गणेश दुर्गा क्षेत्रपाल, एवं सरस्वती इन देवताओं की वीज सहित मन्त्र से पूजा करके उन्हीं कोणों में धर्म ज्ञान वैराग्य तथा ऐश्वर्य की वीज सहित मन्त्र से पूजा करनी चाहिये, एवं नञ् पूर्व में जिनके है ऐसे अधर्म अज्ञान अवैराग्य एवं अनैश्वर्य की पूर्वादि दिशाओं में पूजा करें । सभी जगह अनुस्वार सहित नाम का आदि अक्षर वीज कहा जाता है उन वीजों के सहित मन्त्रों से पूजा करें ॥३॥

**मध्येक्रमादर्कविध्वग्नितेजांस्युपर्युपर्युत्तमैरर्चितानि ।**
**रजः सत्व तमः एतानि वृतत्रयं वीजाढ्यं क्रमाद्भावयेच्च ॥४॥**

**कमलमध्ये उपरिक्रमाद् सूर्यचन्द्राग्नितेजांसि अ उ मैः प्रणवैः समन्वितानि समर्चयेत् सत्वादिक्रमेण सत्वरजस्तमांसि वृतत्रयरूपेण भावयेत् समर्चयेदिति भावः । तत्रायं क्रमः कमलमध्ये अं अकार्य नमः, उं उडुपतये नमः अं अग्नये नमः, सं सत्वाय नमः, रं रजसे नमः, तं तमसे नमः ॥४॥**

कमल के मध्य भाग में क्रमशः सूर्य चन्द्रमा और अग्नि इन तेजस् तत्त्वों की ऊपर के क्रम से अ उ म अर्थात् प्रणव ॐकार से समन्वित मन्त्रों के द्वारा विधि पूर्वक पूजा करे। सत्व आदि क्रम से सत्व रजस् एवं तमस् इन तीनों गुणों को तीन वृत्त के स्वरूप में चिन्तन करे। तथा विधिपूर्वक पूजा करे। इस पूजा में यह क्रम है अं अकार्य नमः, उं उडुपतये नमः, अं अग्नये नमः, सं सत्वाय नमः, रं रजसे नमः, तं तमसे नमः ॥४॥

**आशाव्याशास्वप्यथात्मानमन्तरात्मानं च परमात्मनमन्तः।**
**ज्ञानात्मानं चार्चयेत्तस्य दिक्षु मायाविद्ये ये कलापारतत्त्वे ॥५॥**

**अथ अन्तः कर्णिकामध्ये आत्मानं अन्तरात्मानं परमात्मानं ज्ञानात्मानं च पूर्वादिचतुर्दिक्षु पूजयेत्। अथ आग्नेयादिकोणेषु च तानेव पूजयेत्। तस्य दिक्षु मायाविद्ये ये कलापारं तत्त्वे च पूजयेदित्यर्थः ॥५॥**

इसके वाद कमल के अन्तः कर्णिका के मध्य में आत्मा अन्तरात्मा परमात्मा एवं ज्ञानात्मा की पूर्व आदि दिशाओं में पूजन करे, एवं अग्नि आदि कोणों में भी इन्हीं चार की पूजा करे तथा उसकी पूर्व आदि दिशाओं में माया विद्या कला एवं परम तत्त्व की पूजा करे ॥५॥

**संपूजयेद् विमलादींश्चशक्तीरभ्यर्चयेद्देवमावाहयेच्च ॥६॥**

**विमला उत्कर्षिणी ज्ञाना क्रिया योगा प्रह्वी सत्या ईशाना अनुग्रहा इति नवशक्तयः ताः पूर्वादिदिक्षु आवाहयेत् अर्चयेच्च, चकारात् देवं श्रीरामचन्द्रमा वाहयेदभिपूजयेच्च ॥६॥**

विमला उत्कर्षिणी ज्ञाना क्रिया योगा प्रह्वी सत्या ईशाना अनुग्रहा ये सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी की नौ शक्तियां हैं। इनको पूर्वादि दिशाओं एवं आग्नेयादि कोणों में आवाहित करें एवं पूजित करे। तत्पश्चात् भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का आवाहन एवं सभी प्रकार से पूजन करें ॥६॥

**अंगव्यूहानिलजाद्यैश्च पूज्यधृष्ट्यादिकैर्लोकपालैस्तदस्त्रैः ॥७॥**

**आत्मादयसशक्तिकाः वासुदेवप्रद्युम्नादयश्च, अनिलजः श्रीहनुमान् तदादि भिरष्टभिः सह पूजयित्वा धृष्ट्यादिभिरष्टाभिः मन्त्रिभिः, इन्द्रादिभिः लोकपालैः**

**तदायुधैः वज्रादिभिः सहितम् आराधयेदित्यर्थः ॥७॥**

अंग शब्द से आत्मा आदि शक्तियों के सहित, व्यूह अर्थात् वासुदेव प्रद्युम्न संकर्षण आदि वायु पुत्र श्रीहनुमानजी आदि आठ तथा धृष्टि आदि आठ मन्त्री, इन्द्र आदि लोकपाल उनके अस्त्र शस्त्र वज्रादि के सहित भगवान् श्रीरामजी की आराधना करे ॥७॥

**वशिष्ठाद्यैर्मुनिभिर्नीलमुख्यैराराधयेद् राघवं चन्दनाद्यैः ।**
**मुख्योपहारैर्विविधैश्च पूज्यस्तस्मिन् जपादींश्च सम्यक् समर्प्य ॥८॥**

**श्रीवशिष्ठप्रभृतिभिः द्वादशमुनिभिः, नीलमुख्यैः षोडशवानरैः परिवृतं श्रीरामचन्द्रं चन्दनपुष्पधूपदीपपवित्रोपहारादिभिः स्वादुभिः विविधैः नैवेद्यैः पूजयित्वा तस्मै श्रीराघवाय जपादीन् विधिपूर्वकमर्पयित्वा आदिपदेन यन्त्र पूजनादिकञ्च समर्पयेत् ।**

**साधु वासाधु वा कर्मयद्यदाचरितम्मया ।**
**तत्सर्वं भगवन् राम ? गृहाणास्मत् कृतं जपम् ॥**
**गुह्यादुगुह्यस्य गोप्ता त्वं गृहाणास्मत् कृतं जपम् ।**
**सिद्धिर्भवतु मे देव त्वत् प्रसादात् कृपानिधे ? ॥**

**इत्यादिभिः प्रार्थनावचोभिः सह सर्वमर्पयेद् 'ॐ तत् सत् आत्मानं श्रीरामचन्द्राय समर्पयामि स्वाहा' इति ॥८॥**

श्रीवशिष्ठ आदि बारह मुनियों के सहित, नील जिन में प्रधान हैं, ऐसे बारह वानरों के सहित इनसे परिवृत भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की चन्दन पुष्प धूप दीप पवित्र उपहार स्वादिष्ट विविध प्रकार के नैवेद्य के साथ विविवत् पूजा करके उन भगवान् श्रीराघवेन्द्रजी के लियें जप आदि विधि पूर्वक समर्पण करके । आदि शब्द से यन्त्र आदि की पूजनादि भी समर्पित करे-हे प्रभो राघवेन्द्र ? समुचित या अनुचित जो जो कर्म मुझसे सम्पादन किये गये हैं । हे राम ? वे सभी कर्म आप स्वीकार करें, तथा मुझसे किये गये जप को आप स्वीकार करें ।

गुह्य से भी अति गुह्य कर्मों की आप रक्षा करनेवाले हैं । मुझसे किये गये जप को स्वीकार करें । हे कृपानिधान देव आपकी अनुकम्पा से मेरे कर्म सफल हों

इत्यादि प्रार्थना वचनों से सभी वस्तु उन्हें अर्पण करें। ॐ तत् सत् श्रीरामचन्द्रजी के लिये मैं स्वयं को समर्पित करता हूँ ॥८॥

**एवं भूतं जगदाधारभूतं रामं वन्दे सच्चिदानन्दरूपम्।**
**गदाब्जशङ्खारिधरं भवारिं स यो ध्यायेन्मोक्षमाप्नोति सर्वः ॥९॥**

सर्वजगतामाश्रयभूतं सच्चिदानन्दस्वरूपं पूर्ववर्णितगुणगणं सर्वेश्वरं सर्वाराध्यं श्रीमन्तं भगवन्तं श्रीरामचन्द्रं प्रणमामि। एतेन भगवतः श्रीरामचन्द्रस्य कायिकीं पूजां प्रत्यपादयत्। गदाकमलशङ्खचक्रधरं संसारमूलनाशकं श्रीरामं यो ध्यायेत् सर्व एव मोक्षम् प्राप्नोति, अत्र सर्वजनसाधारणीं कायिकीं पूजां प्रतिपादयन् श्रीरामप्राप्तये सर्वेषामधिकार इति सूचितम्। ततः पूजायाः द्वितीयाधिकारिणं निरूपयन् यो ध्यायेदित्याहश्रुतिः। अत्र द्विभुजं धनुर्धरं सर्वाभरणभूषितं प्रसन्नात्मानं यो ध्यायेत् मानसोपचारैः यः पूजयेत् सर्वः सः मोक्षम् प्राप्नोति। एतेन श्रीरामस्य द्विविधां पूजां प्रत्यपादयत्। अत्र भगवतः विशेषणम् भवारिम् इति-भगवतः ध्यानेन वैराग्यम् तेन च संसारहेतुभूत कामक्रोधादिविनाशस्तेन भगवदनुकम्पया सायुज्यमोक्षप्राप्तिः। यो यं स्मरति स तद्रूपोभवति। श्रीरामस्य सर्वशेषित्वं सर्वहेतुत्वञ्च बहुशो निरूपितमेव ॥९॥

समस्त चराचर लोकों का आश्रयभूत सत् चित् आनन्द स्वरूप पूर्ववर्णित गुणगण मण्डित सभी देवादिओं से आराधनीय सर्वेश्वर श्रीमान् भगवान् श्रीरामचन्द्रजी को प्रणाम करता हूँ, इस कथन के द्वारा श्रुति ने भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की कायिक पूजा का निरूपण किया। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का जो ध्यान करेंगे वे सभी मोक्ष प्राप्त करेंगे। सभी मोक्ष प्राप्त करेंगे इस कथन से सर्वजन साधारण के लिये कायिक पूजा का निरूपण किया। इससे यह अभिव्य होता है कि भगवान् की प्राप्ति करने में सर्वजन साधारण का अधिकार है। तत्पश्चात् श्रीरामजी की पूजा का द्वितीय अधिकारी का निरूपण करते हुए जो ध्यान करता है यह श्रुति कहती है। यहां दो भुजाओं को धारण करनेवाले धनुषधारी सभी प्रकार के अलङ्कार समुदाय से सुशोभित प्रसन्न चित्त भगवान् श्रीरामजी का जो ध्यान करेंगे वे सभी सायुज्य मोक्ष प्राप्त करेंगे। इससे भगवान् श्रीरामजी की दो प्रकार की पूजाओं का निरूपण किया। इस फलश्रुति वचन में भगवान् को 'भवारि' यह विशेषण दिया है। भगवान् श्रीरामजी के ध्यान

से परम वैराग्य उत्पन्न होगा, और वैराग्य से संसार का मूलकारण स्वरूप कामक्रोध आदि का शमन होगा (विनाश होगा) और इससे भगवान् की अनुकम्पा से सायुज्य मोक्ष की उपलब्धि होगी। 'जो जिस का चिन्तन करता है वह उस स्वरूप को प्राप्त करता है'। भगवान् श्रीरामजी का सर्वशेषित्व एवं सकल जगत् कारण का पहले बहुत वार प्रतिपादन किया जा चुका है ॥९॥

**विश्वव्यापी राघवो यस्तदानीमन्तर्दधेशङ्खचक्रेगदाब्जे ।**
**धृत्वा रमासहितः सम्वृतश्च सपत्तनः सानुजः सर्वलोकी ॥१०॥**
**तद् भक्ता ये लब्धकामाश्च मुक्ता, तथा पदं परमं यान्ति ते च ॥११॥**

अत्रश्रुतौ विश्वव्यापी अन्तर्दधे इतिवचनाभ्यां सशरीरस्यैव श्रीराघवस्य सर्वव्यापकत्वेऽपि मानवलीलाकालेधृतशरीरेणैव स्वदिव्यधामश्रीसाकेत लोकप्रवेश इतिप्रकाशितम् शरीररहितस्य च परमपदगमनमसङ्गतं स्यात् सपत्तनः सानुजः सर्वलोकीति वचोभिः सकललोकाधिपतेरपि तस्यायोध्यावासिनामेव स्वधामप्रापणेन तत् शरणापन्नानामेव परमधामगमनम् । सर्वे लोका यस्य सन्ति तत्र यः व्याप्तः स श्रीरामः रघुवंशे अवतीर्य स्वधामारोहणकाले पूर्वं स्वभ क्तचिन्तनीयं रूपं प्रकटीकृत्य स्वाभाविकपरस्वरूपस्य द्विभुजत्वेऽपि तदानीं शङ्खचक्रगदापद्मोपलक्षितं वैष्णवं चतुर्भुजरूपं प्रकटीकृत्य, उक्तञ्च महर्षि श्रीवाल्मीकिना-शरानानाविधाश्चैव धनुरायतमुत्तमम् । पञ्चायुधाश्च ते सर्वे ययुः पुरुषविग्रहाः ॥ भ्रातृभिः सहितः तेजोमयस्वधामप्रापत् इत्यर्थः ॥ रमया सहितः, स्वरमयितारमपि रमयतीति रमा श्रीजानकीतया सहितः, सपत्तन इति स्वनगरवासिभिः सहितः । एतेन स्वशरणागतानां स्वधामप्रापकत्वं भगवति शर णागतवत्सले सर्वेश्वरश्रीरामे एवेतिद्योत्यते अन्यावतारे तथादर्शनात् ये भगवतः श्रीरामस्य मन्त्रजपयन्त्रपूजनध्यानतपश्चरणपरायणाः भक्तास्ते आकाक्षांविनाऽपि श्रीरामोपासनाप्रभावेण सर्वान्कामान् भुक्त्वा मुक्ताः सन्तः तेनैव प्रकारेण परमं पदं यान्ति । एतेन श्रीरामभक्तानामपुनरावर्तन परमधामगमनं दृढीकृतम् "सत्य सन्धप्रतिश्रुत्य प्रपन्नायाभयं स्वम् । निवर्तयेद्धये नैनं श्रीरामः श्रृतवत्सलः" इत्याचार्योक्तेः ॥१०/११॥

यहां श्रीरामतापनीय उपनिषत् की श्रुति में 'विश्वव्यापी' 'अन्तर्दधे' इन वचनों

के द्वारा भगवान् श्रीरामजी के शरीर सहित अर्थात् शरीरधारी का ही सर्वव्यापकत्व एवं अन्तर्धान होना प्रकाशित किया गया है। क्योंकि शरीर रहित का परमधाम गमन असम्भव सा होगा। 'नगर सहित, भाइयों के सहित, सभी लोकों के स्वामी' इन वचनों से सभी लोकों के अधिपति, उन श्रीरामजी का अयोध्या में निवास करनेवालों का ही, अपने परम दिव्य साकेतधाम में पहुँचाने की क्रिया द्वारा, श्रीरामजी के शरणागतों का ही परमधाम गमन होता है अन्य का नहीं, यह तात्पर्य प्रकाशित होता है। जिसके अधीन सभी लोक हैं, जो सभी लोकों में व्याप्त है। वे श्रीराम रघुकुल में अवतार धारण करके स्वदिव्यधाम श्रीसाकेतारोहण के काल में, पहले अपने भक्तों के द्वारा ध्यान करने योग्य स्वरूप का प्रकट करने के वाद स्वाभाविक परस्वरूप दो हाथ वाला ही सभी के ध्यान करने योग्य होने पर भी उस समय शङ्खचक्र गदा पद्म से उपलक्षित विष्णु सम्बन्धी चतुर्भुज स्वरूप को प्रकट करके-श्रीमद्रामायण में महर्षि श्रीवाल्मीकिजी के द्वारा भी कहा गया है-अनन्त प्रकारक वाण, अत्यन्त विशाल श्रेष्ठ धनुष, पांचों आयुधों को धारण करनेवाले वे सभी भाई पुरुष शरीर से परम दिव्य स्वसाकेतधाम को गये। अपने भाइयों के सहित तेजोमय स्वधाम को प्राप्त किये यह तात्पर्य है। 'सरमया' से अभिप्राय है, अपने रमणकारी को भी रमण कराती है वह श्रीजानकीजी के सहित। अपने अयोध्या नगर में निवास करनेवाले प्राणियों के सहित से तात्पर्य है कि-भगवान् श्रीरामचन्द्रजी में अपने शरणागतों को अपने परमधाम में पहुँचाने का स्वभाव है। अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार शरणागतों को सायुज्य मुक्ति सर्वेश्वर श्रीरामजी ही देते हैं अन्य नहीं यह तात्पर्य है जो भक्त भगवान् श्रीरामजी के मन्त्र जप यन्त्र पूजन ध्यान एवं तपश्चरण परायण हैं, ऐसे भक्तों की आकांक्षा के विना भी भगवान् श्रीरामजी की उपासना के प्रभाव से सभी इच्छित भोगों का उपभोग करके मुक्त हो कर उसी तरह परमपद को जाते हैं। इससे यह दृढ होता है कि श्रीरामजी के भक्तों का परमधाम गमन सुनिश्चित है जगद्गुरु श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजी (प्रथम) ने इस वात की पुष्टि की है-सत्य प्रतिज्ञ सर्वेश्वर श्रीरामजी शरणापन्न होकर अपने धाम में आये जीव को पुनः संसार में वापस नहीं भेजते हैं ॥१०/११॥

**इमा ऋचः सर्वकामार्थदाश्च ये ते पठन्त्यमलायान्तिमोक्षम् ।**
**ये ते पठन्त्यमला यान्ति मोक्षम् ॥१२॥**

निखिलाभिलषितार्थदायिनीः इमाः ऋचः ये भक्ताः पठन्ति ते सर्वान् कामान् उपलभ्यमोक्षं प्राप्नुवन्ति । अत्र पुनः पाठेन अस्य श्रीरामतापनीयोपनिषत् पाठकर्तृणामवश्यमेव सायुज्यमोक्षप्राप्तिरिति दृढयति । अथवा पुनः पाठः पञ्चमो पनिषत् समाप्तिसूचकः ॥१२॥

इतिजगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामप्रपन्नाचार्ययोगिराट् प्रभृत्यगणितोपाधि
समलंकृतदर्शनकेशरीप्रधानशिष्यस्य आनन्दभाष्यसिंहासनासीन
जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामेश्वरानन्दाचार्यस्य कृतौ
श्रीरामतापनीयोपनिषदः पूर्वतापनीयस्यश्रीरामानन्द
भाष्यंसम्पन्नमिदं श्रीवैष्णवानामभ्युदयायभूयात् ।

卐 श्रीरामः शरणं मम 卐

समस्त अभिमत फलों को प्रदान करनेवाली इस श्रीरामतापनीय उपनिषद् की ऋचायें को जो श्रीरामचन्द्रजी के भक्तजन पढते हैं, वे समस्त कामनाओं का भोग हेतु उपलब्धकर अन्त में संसार से श्रीराम सायुज्य मोक्ष प्राप्त करते हैं। इस उपनिषद् वाक्य में अन्तिम वाक्य का पुनः पाठ के द्वारा इस श्रीरामतापनीय उपनिषद् के पाठ से अवश्य ही मोक्ष की प्राप्ति होती है इस अभिप्राय को सुदृढ करते हैं। अथवा पुनः पाठ पञ्चम उपनिषद् या पूर्वतापनीय समाप्ति सूचक है ॥१२॥

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामप्रपन्नाचार्य योगिराज प्रभृति अगणित
उपाधि समलंकृत षट्दर्शनकेशरीजी के प्रधान शिष्य आनन्द
भाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामेश्वरा
नन्दाचार्यजीकी कृति श्रीरामतापनीय उपनिषद् के पूर्व
तापनीयके श्रीरामानन्दभाष्यका उद्योत सम्पन्न हुआ,
यह श्रीवैष्णवों का सर्वविध अभ्युदयकारी हो

卐 श्रीरामः शरणं मम 卐

श्रीराम-यन्त्र

इस उपनिषद् में पूर्व वर्णनानुसार तैयार किया गया साधकों को सर्वकामना प्रद यह श्रीराम महायन्त्र है। इसे जानकार व्यक्ति से शुद्धतापूर्वक सोना चांदी या तांवा में वनवा कर प्रतिष्ठा विधि के जानकार श्रीवैष्णव से प्रतिष्ठा कराकर पूर्व में वताये नियमानुसार साधना करने से इच्छित फल की प्राप्ति होती है। स्मरण रहे परम्परागत श्रीसम्प्रदायाचार्य से सविधि दीक्षा-शिक्षा लेकर ही साधना करें मनमुखीपना से नहीं।

स्व आराध्य देव सर्वेश्वर श्रीसीतारामजी की आराधना में रत
भगवान् श्रीशंकरजी



श्रीरामस्य मनुं काश्यां जजाप वृषभध्वजः ।
मन्वन्तरसहस्त्रैस्तु जपहोमार्चनादिभिः ॥

ततः प्रसन्नो भगवान् श्रीरामः प्राह शङ्करम् ।
वृणीष्व यदभीष्टं तद् दास्यामि परमेश्वर । ॥

मणिकर्ण्यां वा मत्क्षेत्रे गङ्गायां वा तटे पुनः ।
म्रियते देहि तज्जन्तोर्मुक्तिं नातो वरान्तरम् ॥

तत्त्वो वा ब्रह्मणो वापि ये लभन्ते षडक्षरम् ।
जीवन्तो मन्त्रसिद्धाः स्युर्मुक्तमां प्राप्नुवन्ति च ॥

(मन्त्रों का अर्थानुसन्धान पृष्ठ ३१८-३२८ से करें)

卐 श्रीकोशलेन्द्रोजयति 卐

❁ सर्वेश्वर श्रीसीतारामाभ्यां नमः ❁

# श्रीरामतापनीयोपनिषदुत्तरार्द्धः

तद्भक्ता ये लब्धकामाश्चेत्यादिभिः पूर्वतापनीये-श्रीरामभक्तानां परमधाम प्राप्तिरुक्ता । तत्र वर्तमानदेहस्यान्ते देहान्तरस्यान्ते वेति सन्देहे-अत्र हि जन्तोः प्राणेषूत्क्रममाणेषु रुद्रस्तारकं ब्रह्मव्याचष्टे येनासावमृतोभूत्वामोक्षीभवति, य एतत्तारकं ब्राह्मणोनित्यमधीते स पाप्मानं तरति सोऽमृतत्वं च गच्छतीति प्रभृतीनामुत्तरतापानीयश्रुतिनामारम्भः । तासामभिप्रायविवेचनादवगम्यते यतो हि काश्यां देहत्यागसमये यस्य तारकस्य षडक्षरस्य सकृत् श्रवणमात्रेण प्राणिनोऽमृता भवन्ति, सदा तन्मन्त्रजपपरायणस्य कैमुतिकन्यायेन मुक्तिः सि-द्ध्यति । अत्र रुद्रप्रभावादेवमुक्तिरिति नाशङ्कनीयम्, यतोहि-

श्रीरामस्य मनुं काश्यां जजापवृषभृध्वजः-इत्यारभ्य

मणिकर्ण्यां वा मत्क्षेत्रे गंगायां वा तटे पुनः ।

म्रियते देहि तज्जन्तोर्मुक्तिं नातोवरान्तरम् ॥

इत्यन्तस्य प्रकरणस्य विवेचनेन उपदेष्टुः प्रभावस्य तुच्छत्वात् । अन्यथा मन्त्रजपवरप्रदानयोर्वैयर्थ्यं स्यात् । क्षेत्रेऽस्मिन् तव देवेश यत्र कुत्रापि वा मृताः । कृमिकीटादयोप्याशु मुक्ताः सन्तु न संशयः । इतिवरप्रदानस्य काशी-विषयकत्वेपि-

त्वत्तो वा ब्रह्मणोवापि ये लभन्ते षडक्षरम् ।

जीवन्तो मन्त्रसिद्धाः स्युः अन्ते मां प्राप्नुवन्ति ते ॥

इतिब्रह्मरुद्रसम्प्रदायान्यन्तरप्राप्ततारकस्यैवमहत्वावगमात् । 'इममेवमनुं साकेतपतिर्मामवोचत् । अहं हनुमते मम प्रियाय प्रियतराय । स वेद वेदिने ब्रह्मणे । स वशिष्ठाय । स पराशराय । स व्यासाय । स शुकाय । इत्येषोपनिषद् । इत्येषा ब्रह्मविद्या' इत्युपनिषत्प्रामाण्यात् प्रामाणिकैराचार्यैस्तु श्रीजानकीब्रह्म वशिष्ठरुद्रागस्त्यद्वारैव षडक्षरतारकस्य भूतले प्राप्तिरित्यवगम्यते । य एतत्तारकं ब्रह्मणोनित्यमधीते स पाप्मानं तरति सोऽमृतत्वं गच्छति, जीवन्तोऽपि मन्त्रसिद्धाः स्युः । अन्ते मां प्राप्नुवन्ति ते इतिलब्धतारकाणामस्मिन्नेव जन्मनि श्रीरामप्राप्तिः ।

अस्यैव देहस्यान्ते श्रीरामप्राप्तेः श्रुतिरसन्दिग्धा । यदनुकुरुक्षेत्रं देवानां देव यजनमिति प्रश्ने-अविमुक्तं वै कुरुक्षेत्रमिति प्रसङ्गे-अत्र च हि जन्तोः प्राणेषूत्क्रममाणेषु रुद्रस्तारकं ब्रह्मव्याचष्टे येनाऽसौ अमृतोभूत्वा मोक्षी भवतीतिश्रुत्या काशीपरकत्वमेव । अत्रैव रुद्रोपदेशेन देहत्यागान्ते मोक्षप्राप्त्युक्तेः 'किं तारकं किं तरतीति भारद्वाजेन पृष्टे याज्ञवल्क्याह-तारकं दीर्घानलं विन्दुपूर्वकम् पुनर्माय नमः' इति । तस्य प्रणवहेतुत्वमपि पूर्वं निरूपितम् । गर्भजन्मजरामरणसंसारभयात् संतारयतीति यस्माद् तस्मादुच्यते तारकमिति । तथा च नायं तारकजपपरो देहान्ते नरकं गमिष्यति 'स पाप्मानं तरति' इत्यादिभिः संसारदुःखनिवृत्तिश्रवणात् । इत्थं तारकोपासकः तारकवाच्यं श्रीरामाख्यं परंब्रह्मैव प्राप्स्यति नातोऽन्यत् इति श्रीरामभक्तानां वर्तमानदेहस्यान्ते परमपद प्राप्तिरिति निरूपिता । इदानीं सर्वेषां श्रीरामप्राप्त्युपायमुत्तरतापनीये निरूप्यते । कदाचित् मिथिलोपवने रम्ये जनको वैदेह आसीत् । तत्र योगीश्वरः शिष्यैर्मुनिगणैश्च परिवृतः आसीत् तत्र याज्ञवल्क्यस्य सर्वज्ञत्वमसहमानाः ऋषयोबभूवुः । तत्र प्रथमं बृहस्पते प्रश्नः-

बृहस्पतिरुवाच याज्ञवल्क्यं यदनुकुरुक्षेत्रम् ।
देवानां देवयजनं सर्वेषां भूतानां ब्रह्मसदनम् ॥१॥

देवगुरुः वृहस्पतिः उवाच यज्ञवल्कस्यापत्यं योगीश्वरं तीर्थेषूत्कृष्टतमं कुरुणां राज्ञां पालितं क्षेत्रमनादिकालात् सिद्धं देवानां देवयजनं देवैरिन्द्रा दिभिरपि देवः श्रीरामः सर्वेश्वरः ईज्यते पूज्यते यत्र तत् सर्वेषां भूतानां ब्रह्मादिस्थावरान्तानां ब्रह्मावाप्तिहेतुभूतम् कतरत् क्षेत्रम् लोकप्रसिद्धं कुरुक्षेत्र मन्यद् वेति प्रश्नः ॥१॥

सीतारामसमारम्भां शुकबोधायनान्विताम् ।
रामानन्दार्यमध्यस्थां वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥

उन श्रीरामजी के भक्त जिनके समस्त मनोरथपूर्ण हुए हैं इत्यादि कथन के द्वारा श्रीरामपूर्वतापनीय में भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के भक्तों को परमधाम की प्राप्ति कही गयी है उक्त विषय में प्रश्न उठता है कि इस वर्तमान शरीर के अन्त में अथवा देहान्तर के अन्त में परमधाम की प्राप्ति होती है । ऐसा सन्देह होने पर कहते हैं-क्योंकि इस

संसार में प्राणियों के प्राणों को शरीर से निकल जाने पर भगवान् शंकर इस काशी में तारक ब्रह्म का उपदेश करते हैं, जिस मन्त्र के प्रभाव से वह प्राणी अमर होकर मोक्ष लाभ करता है। जो ब्राह्मण इस तारक मन्त्र को नित्य पढता है वह पाप राशि को पार कर जाता है वह अमरता को प्राप्त करता है इत्यादि वचनों के विवेचन करने के लिये उत्तरतापनीय का प्रारम्भ किया जाता है। इन ऋचाओं के तत्त्व विवेचन करने से यह आशय ज्ञात होता है कि-क्योंकि काशी में देह त्याग के समय पर जिस षडक्षर तारक का केवल एकवार श्रवण मात्र से प्राणी अमर हो जाते हैं, तो जो सदैव तारक मन्त्र के जप करने में लीन रहता है उसके मोक्ष के विषय में तो कहना ही क्या, यह कैमुतिक न्याय से सिद्ध हो जाता है। यहां पर भगवान् शङ्कर के प्रभाव से मुक्ति हो जाती है ऐसा सन्देह नहीं करना चाहिये। क्योंकि-भगवान् श्रीरामजी के तारक मन्त्र को काशी में वृषभध्वज शंकर जप किये यहां से लेकर मणिकर्णिका में या मेरे क्षेत्र में गंगा में अथवा गंगा तट में यदि शरीरधारी मरता है तो उन प्राणियों को मुक्ति लाभ हो यह वरदान छोडकर दूसरा वरदान नहीं चाहिये। यहां तक के प्रसङ्ग का विवेचन करने से उपदेश करने वाले शङ्कर का प्रभाव अत्यन्त गौण प्रतीत होता है। अन्यथा मन्त्र जप और वर प्रदान की निष्फलता हो जायेगी। हे देवनायक शङ्कर आपके इस क्षेत्र में जहां कहीं भी मरे हुए कृमिकीट आदि भी अतिशीघ्र मुक्त हो जायँ, इसमें कोई सन्देह नहीं है। इस सर्वेश्वर श्रीरामजी के वरदान का काशी विषय होने पर भी, तुम से अर्थात् शङ्करजी से अथवा ब्रह्माजी से जो षडक्षर तारक मन्त्र को प्राप्त करते हैं, वे जीवन दशा में भी मन्त्र सिद्ध होवें तथा देहान्त होने पर वे मुझे प्राप्त करते हैं। इसप्रकार ब्रह्म या रुद्र इन दो सम्प्रदायों में से किसी एक से तारक मन्त्र प्राप्त करनेवाले का महत्व ज्ञात होता है। लेकिन प्रामाणिक आचार्यगण के द्वारा सर्वेश्वरी श्रीसीताजी का कथन-

इसी षडक्षर श्रीराम महामन्त्र को श्रीसाकेतपतिजीने मुझे उपदेश दिया मैंने मेरे अति प्रिय भक्त श्रीहनुमानजी को उपदेश दिया श्रीहनुमानजी ने वेदवेत्ता श्रीब्रह्माजी को उपदेश दिया उन्होंने श्रीवशिष्ठजी को उपदेश दिया श्रीवशिष्ठजी ने श्रीपराशरजी को उपदेश दिया उन्होंने श्रीव्यासजी को उपदेश दिया श्रीव्यासजी ने श्रीशुकदेवजी को उपदेश दिया इसप्रकार श्रीमैथिलीमहोपनिषद् में ब्रह्मतारक षडक्षर श्रीराम महामन्त्र का उपदेश क्रम है अतः यह निश्चित है कि श्रीब्रह्माजी एवं श्रीशंकरजी द्वारा दो धारा

प्रवाहित हुई। श्रीब्रह्माजी की धारा में २२वें आचार्य प्रस्थानत्रयों के आनन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी (१३५६-१५३२) हुये। आगे इसी धारा में ४१वां आचार्य इन श्रीरामानन्दभाष्य एवं उद्योत का लेखक विद्यमान है। एवं श्रीरुद्र और अगस्त्य के द्वारा भी इस भूतल पर तारक महामन्त्र की प्राप्ति हुई यह माना जाता है। जो इस तारक ब्रह्म का नित्य अध्ययन करता है, वह अमरता को प्राप्त करता है वे जीवन दशा में भी मन्त्र सिद्ध हो जाते हैं। और वे देहान्त हो जाने पर मुझे प्राप्त करते हैं। इत्यादि से जिन्होंने तारक ब्रह्म की प्राप्ति कर चुके हैं उनका इसी शरीर में श्रीरामजी की प्राप्ति निश्चित है। इसी देह के अन्त में श्रीराम प्राप्ति विषयक श्रुति वचन निःसन्दिग्ध है।

जो यह कुरुक्षेत्र है देवताओं का देव यजन है इस प्रथम प्रश्न में-अविमुक्त क्षेत्र ही कुरु क्षेत्र है इस सन्दर्भ में-क्योंकि इस काशी में प्राणियों के प्राण छूटने पर रुद्र तारक ब्रह्म का उपदेश देते हैं। जिससे जीव अमर होकर मोक्ष भाजन बनता है। इस श्रुति के द्वारा काशी परक ही सिद्ध होता है। क्योंकि काशी में भगवान् शंकर के उपदेश द्वारा मोक्ष प्राप्ति कहा गया है। तारक क्या है ? कौन तरता है ? ऐसा भरद्वाज के द्वारा प्रश्न किये जाने पर तारक दीर्घानल विन्दु पूर्वक है अर्थात् 'रां' यह तारक है। उस तारक को प्रणव का कारण होना पहले विस्तार से बताया जा चुका है। गर्भ जन्म जरा मरण और संसार के भय से अच्छी तरह जो तार देत है उसे तारक कहते हैं। और इसप्रकार यह जो तारक मन्त्र जप परायण है वह इस देह के अन्त में नरक नहीं जायगा। वह पापों से ऊपर उठ जाता है। इत्यादि वचनों से तारक द्वारा संसार के दुःखों से निवृत्ति होती है ऐसी श्रुति है। इस तरह तारक मन्त्र का उपासक तारक से प्रतिपाद्य श्रीराम नामक परब्रह्म को प्राप्त करेगा। उससे भिन्न नहीं इससे श्रीरामजी के भक्तों का वर्तमान देह के अन्त में परमपद प्राप्ति होती है यह प्रतिपादन किया गया। सम्प्रति सभी अधिकारी अनधिकारी के लिये श्रीरामजी के प्राप्ति का उपाय उत्तरतापनीय में निरूपण करते हैं।

किसी समय अत्यन्त रमणीय मिथिला के उपवन में विदेह कुल के राजा जनक थे, उस समय वहां पर योगीश्वर याज्ञवल्क्यजी अपने शिष्यों एवं मुनि समुदाय से घिरे हुए थे। वहां पर महर्षि योगीश्वर याज्ञवल्क्यजी की सर्वज्ञता को सहन नहीं करने वाले अनेक ऋषि मुनि उपस्थित थे। उस सभा में सबसे पहले वृहस्पति का प्रश्नात्मक प्रथम मन्त्र है।

देवताओं के गुरु बृहस्पति कहे→यज्ञवल्क्य नामक महर्षि के सुपुत्र योगीश्वर याज्ञवल्क्यजी से प्रश्न किये कि सभी तीर्थों में अतिशय श्रेष्ठ कुरुवंशीय राजाओं के द्वारा परिपालित क्षेत्र जो अनादि काल से सिद्ध है और देवताओं का जो देव यजन क्षेत्र है, अर्थात् देवताओं इन्द्र आदि के द्वारा भी जो देव श्रीरामचन्द्रजी सर्वेश्वर परब्रह्म पूजित होते हैं जहां पर सभी प्राणियों का ब्रह्म से लेकर स्थावर पर्यन्त जीवों के ब्रह्म साक्षात्कार का कारण बना हुआ है वह कौनसा क्षेत्र है ? क्या संसार में कुरुक्षेत्र नाम से प्रख्यात जो क्षेत्र है, वही कुरुक्षेत्र है ? अथवा कोई दूसरा कुरुक्षेत्र है ? यह जिज्ञासा बृहस्पति प्रकट किये ॥१॥

**अविमुक्तं वै कुरुक्षेत्रं देवानां देवयजनम् ।**
**सर्वेषां भूतानां ब्रह्मसदनम् ॥२॥**

**तस्माद् यत्र क्वचन गच्छति तदेवमन्येत ।**
**इदं वै कुरुक्षेत्रं देवानां देवयजनं सर्वेषां भूतानां ब्रह्म सदनम् ॥३॥**

कदाचिदपि विशेषेश्वरेणाविमुक्तं काशीनामकमेव क्षेत्रं निश्चयेन कुरुक्षेत्रमविमुक्तत्वाद् यस्मादुत्कृष्टतमं नास्ति । एवं कुरुक्षेत्रविमुक्तविशेषणद्वयसहितं काशी एव । तत्र पञ्चकोशे यत्र क्वचन गच्छति तदेव देवानां देवयजनं ब्रह्मसदनमेव जानीयात् । इदं पञ्चकोशान्तर्भूतप्रदेशमेव देवानां देवयजनं सर्वेषां भूतानां ब्रह्मसदनमिति । अथ अवासोविमुक्तः कुत्रप्रतिष्ठितो भवति तदाह अशीवर्णयोर्मध्ये भूभागस्याविमुक्तसंज्ञा, उक्तभूप्रदेशे यत्र कुत्रापि विचरति तं तं प्रदेशं देवानां देवयजनं जानीयात् । तदुक्तम्-

अविमुक्ते तवक्षेत्रे यत्र कुत्रापि वा मृताः ।
कृमिकीटादयोप्याशुमुक्ताः सन्तु न संशयः ॥

तेन इदमेव नाशीवर्णयोर्मध्यमेव कुरुक्षेत्रं देवानां देवयजनं सर्वेषां भूतानां ब्रह्मप्राप्तिस्थानं जानीयादित्यर्थः ॥२/३॥

कभी भी विशेष ईश्वर के द्वारा जो नहीं छोडा गया है वह अविमुक्त काशी नामक ही क्षेत्र है वही निश्चित रूपसे कुरुक्षेत्र कहा जाता है । अविमुक्त होने के कारण जिस लिये यह अत्यन्त उत्कृष्ट है इससे बढकर दूसरा क्षेत्र श्रेष्ठतम नहीं है, कुरुक्षेत्र एवं अविमुक्त ये दो विशेषणों के सहित काशी नगरी ही अविमुक्त क्षेत्र कहा जाता

है। उस काशी के पञ्चकोशी के अन्दर में जहां कही भी जाते हैं वहीं पर देवताओं का देव यजन, एवं ब्रह्म साक्षात्कार करने का आश्रय स्थान है। उस काशी को ही कुरुक्षेत्र समझना चाहिये। यहां पांच कोशों के अन्तर्गत जो भूभाग है वह प्रदेश ही देवताओं का देव यजन है। और समस्त ब्रह्मा से लेकर जड पर्यन्त जीव समुदाय का ब्रह्म साक्षात्कार स्थान है। इसके वाद जो वास रहित है वह अविमुक्त है वह कहां प्रतिष्ठित होता है यह कहते हैं। अशी एवं वर्णा नदी के मध्य में जो भूभाग है उसे अविमुक्त नाम से कहते हैं। उक्त भूभाग में जहां कहीं पर भी विचरण करता है। उन-उन प्रदेशों को देवताओं का देव यजन जानना चाहिये। यही विषय कहा गया है→

हे वृषभध्वज आपके अविमुक्त नाम विशेष क्षेत्र में जहां कहीं पर भी जो प्राणी मर जाते हैं। भले ही कृमिकीट आदि प्राणी ही क्यों न हों वे सभी मुक्त (जीवन मरण बन्धन रहित) होंगे इसमें किसी तरह का सन्देह नहीं है। इसलिये यह ही नाशी और वर्णा के मध्य का पञ्चकोश का भूभाग ही कुरुक्षेत्र है, देवताओं का देवयजन है और सभी प्राणियों का ब्रह्म प्राप्ति का स्थान है ॥२-३॥

**अत्र हि जन्तोः प्राणेषूत्क्रममाणेषु रुद्रस्तारकं ब्रह्मव्याचष्टे येनासौ अमृतीभूत्वामोक्षीभवति। तस्मादविमुक्तमेव निषेवेत, अविमुक्तं न विमुञ्चेदिति एवमेवैतद् भगवन्निति याज्ञवल्क्यः ॥४॥**

卐 इतिप्रथकण्डिका 卐

अत्र हि अविमुक्ते क्षेत्रे अविवेचिताधिकारानधिकारस्य सकलप्राणिनः प्राणेषु लोकान्तरं गच्छन्तु रोदनाद् दुःखनिवारकत्वाद् रुद्रः श्रीराममन्त्रस्वरूपं तारकं ब्रह्म उपदिशति। तदुक्तं पाञ्चरात्रे-

षडक्षरो वह्निपूर्वस्तारकस्त्वभिधीयते।
महापातकिनां पापदहने दहनोपमः ॥
मुमुर्षोर्मणिकर्णिक्यामर्धोदकनिवासिनः।
अहं दिशामि ते मन्त्रं तारकं ब्रह्मसंज्ञितम् ॥

इति पाद्मीयशिववंचनाच्च।

मुमुर्षोदक्षिणे कर्णे यस्य कस्यापि वा स्ययम्।
उपदेक्ष्यसि मन्मन्त्रं स मुक्तोभविता शिव ॥

इत्युत्तरश्रुतेः । मुमुर्षोः प्राणिनः दक्षिणे कर्णे शिवः कथयति, येन तारकब्रह्मोपदेशेन असौ जीवः अमृतीभूत्वा मरणधर्मान् मुक्तोभवति । नतु प्राकृत कारागृहादिवत् मुक्तोभूत्वा पुनः संसरति । तेन दिव्याकारः सन् श्रीरामधामगत्वा, तत् सायुज्यं प्राप्नोति । षडक्षरश्रीराममन्त्रश्रवणान्मोक्षः सुलभः यस्मात् तस्मात् अविमुक्तक्षेत्रमेव अत्यादरेण सेवेत । अविमुक्तं न विमुच्येत क्षेत्रसन्यासं कुर्यात् । अत्रश्रुतौ अविमुक्तक्षेत्रात् तारकमन्त्रस्याधिकं महत्वं प्रकाश्यते । यतो हि अविमुक्तक्षेत्रनिषेविणा देहान्तकाले तारकोपदेशेन मोक्षश्रवणवम् । अवि-मुक्तवासिनां तारकोपदेशप्राप्तमोक्षफलेन फलवत्वम् । फलसन्निधावफलं तदंग मितिन्यायेन तारकोपदेशाङ्गत्वं बुध्यते । सामान्यरूपेण तारकावलम्बिनां सर्वेषु देशेषु सर्वेषु कालेषु सर्वासुचावस्थासु मोक्षप्राप्तिः सुलभा । तारकस्वाध्याय सहायस्य सहायान्तरस्यापेक्षा न भवतीतिभावः । अविमुक्तवासिनामपि तारकोपदेशं विनामुक्तिर्नसुलभा । ननु अविमुक्तक्षेत्रभिन्नवासिनामपि तारकब्रह्मो पासनाद् मुक्तिः । अविमुक्तवासिनामपि तारकोपदेशाभावान्नमुक्तिरिति अविमु क्तनिवासस्य किं फलम् ? नित्याध्ययनविरहितानामपिदुराचारिणाञ्च तथा कीटादि स्थावरान्तानामपि अविमुक्तनिवासेन तारकोपदेशलाभः तेन च मुक्तिरिति तस्य वै शिष्ट्यम् । जंगमानामिव स्थावराणामपि प्राणवत्वमिति सर्वविदितमेव । तदुक्तम्-उषरं पुण्यपापानां धन्यावाराणसीपुरी ॥ इति तथा च-

दैनंदिनं च दुरितं पक्षमासर्तुवर्षजम् ।
सर्वं हरतिनिःशेषं तूलाचलमिवानलः ॥१॥

ब्रह्महत्यासहस्राणि ज्ञानाज्ञानकृतानि च ।
स्वर्णस्तेयसुरापानगुरुतल्यायुतानि च ॥२॥

कोटिकोटिसहस्राणि ह्युपपातकजान्यपि ।
सर्वाण्यपि प्रणश्यन्ति राममन्त्रानुकीर्तनात् ॥३॥

अवशिष्टपुण्यपापनिचयं मुक्तिं वाधते इति न वक्तव्यम् । अविमुक्तमृत जीवानां तारकमन्त्रस्य प्रभावेण अशेषपुण्यपापनिचयं समूलं दग्ध्वा भगवत् पदं ददाति । 'वाराणस्यां कृतं पापं वज्रलेपो भविष्यति । आसिमाचरणौ हत्वा तत्रैव निधनं व्रजेत्' इत्यादिवचनानां परस्परं विरोध इतिचेन्न । भैरवीयातनया पाप-नाशः । अथवा-

**नाम्नोऽस्य यावतीशक्तिः पापनिर्दहने हरेः ।**
**तावत् कर्तुं न शक्नोति पातकं पातकीजनः ॥**

**इत्यादिवचोभिः श्रीरामनाम्नः प्रभावेण पुण्यपापनिचयं विनाश्य सायुज्य मुक्तेः श्रवणात् । इत्थमस्मिन्नेव जन्मनि प्राणत्यागकाले यथाभिमताचरणानुभवः । तारकोपदेशाच्च मुक्तिरित्यवधेयम् ॥४॥**

卐 इति प्रथमाकण्डिका 卐

इस अविमुक्त क्षेत्र काशी में जहां पर यह अधिकारी है, यह अधिकारी नहीं है इत्यादि विषयों का विना विवेचन किये ही क्षेत्र प्रभाव से ब्रह्माजी से लेकर जड पर्यन्त सभी प्राणियों के प्राणों के अन्य लोक प्रस्थान करते समय अपने कर्मफलानुभव जनितदुःख से रोने से रुद्र दुःख निवारक होने से रुद्र श्रीराम मन्त्र स्वरूप तारक ब्रह्म का उपदेश करते हैं । यही विषय पाञ्चरात्र में कहा गया है→ रेफ अक्षर है आरम्भ में जिसके ऐसा छ अक्षरों वाला मन्त्र तारक कहा जाता है । यहां तारक मन्त्र महापातकियों के पातकों को (पापों को) आग के समान जला डालता है । आसन्न मृत्यु वाला प्राणी जो गंगा के मर्णिका का घाट पर आधा पानी के अन्दर निवास करनेवाले को मैं ब्रह्म तारक श्रीराम मन्त्र का उपदेश करता हूँ जिस से वह व्यक्ति नश्चित रूपसे मुक्त हो जाता है और यह विषय पद्मपुराण के शिव वचन से भी पुष्ट है→जिस किसी भी आसन्न मृत्यु व्यक्ति के दाहिना कान में आप स्वयं तारक श्रीराम मन्त्र का उपदेश करेंगे, वह निश्चित मुक्त होगा इसमें सन्देह नहीं है । आसन्न मृत्यु वाले प्राणियों के दाहिना कान में भगवान् शिव तारक श्रीराम मन्त्र कहते हैं । उस तारक ब्रह्म के उपदेश से वह जीव अमृत स्वरूप होकर जन्म मरण के बन्धन से सदा के लिये मुक्त हो जाता है । न कि लोक व्यवहार में जैसे जेल से छूटता है पुनः जन्म मरण धारण करता रहता है । उक्त मुक्ति द्वारा दिव्य स्वरूप धारण कर भगवान् श्रीरामजी के धाम में जाकर भगवत् सायुज्य मुक्ति को प्राप्त करता है । षडक्षर तारक ब्रह्म के श्रवण से मोक्ष प्राप्त करना सुलभ है इसलिये अविमुक्त क्षेत्र का ही अत्यन्त आदर के साथ सेवन करना चाहिये । अविमुक्त क्षेत्र का कभी भी परित्याग नहीं करना चाहिये । अर्थात् क्षेत्र सन्यास धारण कर लेना चाहिये, जिससे छूटे नहीं इस श्रुति वचन में अविमुक्त क्षेत्र से अपेक्षाकृत अधिक तारक श्रीराम मन्त्र का महत्व प्रकाशित किया गया है । क्योंकि अविमुक्त क्षेत्र का पूर्ण रूपसे सेवन करने वाला व्यक्ति के द्वारा इस

शरीर के अन्त समय में तारक ब्रह्म का उपदेश से ही मोक्ष की प्राप्ति होगी। और अविमुक्त क्षेत्र में निवास करने वाले को तारक ब्रह्म का उपदेश प्राप्त होना सुलभ होगा यह अविमुक्त क्षेत्र निवास का फलवत्व है। फल के सन्निकट होने से साक्षात् फल रहित फलवान् का अङ्ग और अविमुक्त क्षेत्र सेवन तारक ब्रह्मोपदेश का अङ्ग है यह समझा जाता है। साधारण रूपसे तारक ब्रह्म का अवलम्बन करने वालों का सभी देशों में सभी कालों में एवं सभी परिस्थितियों में मोक्ष प्राप्त होना सुलभ है। ब्रह्मतारक मन्त्र का अनुशीलन है सहायक जिसका उसे अन्य सहायक की अपेक्षा नहीं है। तारक ब्रह्म ही सकल फल प्रदान करने में सक्षम है। और अविमुक्त क्षेत्र में निवास करनेवालों का भी विना तारक ब्रह्म के उपदेश से मोक्ष प्राप्त होना सुलभ नहीं है। अव प्रश्न उठता है कि अविमुक्त क्षेत्र से भिन्न क्षेत्र में निवास करनेवाले का भी तारक ब्रह्म की उपासना करने से मोक्ष लाभ होता है और अविमुक्त क्षेत्र में निवास करनेवालों को भी तारक ब्रह्म के उपदेश के अभाव में मुक्ति नहीं होती है। तो वास्तविक में अविमुक्त क्षेत्र में निवास करने का क्या फल हुआ ? जो तारक ब्रह्म का नियमित अध्ययन स्वाध्याय नहीं करते हैं अथवा दुराचार परायण हैं ऐसे प्राणियों को भी अविमुक्त क्षेत्र में कीट आदि से स्थावर पर्यन्त प्राणियों को भी अविमुक्त क्षेत्र में निवास करने से तारक ब्रह्म उपदेश प्राप्ति का लाभ होता है। और तारक ब्रह्म की उपलब्धि से मोक्ष प्राप्त होता है यह अविमुक्त निवास की विशेषता है। जिस तरह जंगम (गतिशील) प्राणी प्राणवान् होते हैं उसी तरह स्थावर भी प्राणवान् होते हैं, यह नियम सर्व विदित ही है यही कहा गया है→जो पुण्य और पाप दोनों के लिये ऊषर क्षेत्र के समान है अर्थात् ऊषर क्षेत्र में जैसे कोई भी बीज नहीं उगता है उसी तरह जहां पुण्य पाप दोनों ही फलद नहीं है ऐसी वाराणसी पुरी धन्य है इसीप्रकार और भी-प्रतिदिन होनेवाला पाप पक्ष मास ऋतु वर्ष और जन्म जन्मान्तर में होने वाला पाप जो भी है उन सभी को जैसे रुई के ढेर को अग्नि क्षण भर में नष्ट कर देता है उसी तरह श्रीरामनाम नष्ट कर देता है। हजारो ब्रह्म हत्यायें जो ज्ञात अवस्था या अज्ञात अवस्था में किये गये हैं। सोना की चोरी सुरापान अनन्त हजार प्रकार के गुरुदाराभिगमन और करोडों प्रकार के पातकों और उपपातकों को भी श्रीरामचन्द्रजी के नाम का पुनः पुनः कीर्तन करने से सभी प्रकार के पाप कलाप प्रणष्ट हो जाते हैं जिसका उपभोग नहीं किया है ऐसा पुण्य और पाप का पुञ्ज मोक्ष को रोकता है,

ऐसा शास्त्र नियम है यह नहीं कहना चाहिये। अविमुक्त क्षेत्र में मरे हुए जीवों का तारक मन्त्र के प्रभाव से समस्त पाप पुण्य पुञ्ज समूल जलाकर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के परमधाम को प्रदान कराता है। वाराणसी में किया गया पाप वज्रलेप जैसा हो जाता है, अर्थात् उसे नष्ट करना कठिन है। तलवार से पैरों को काटकर-जिससे वाराणसी से वाहर नहीं जा सकें ऐसे वाराणसी में प्राण छोडना चाहिये। इत्यादि वचनों का समाधान है कि इनका परस्पर विरोध नहीं है। क्योंकि भैरवी यातना के द्वारा अनन्त शरीर समूह से भोग द्वारा पुण्य-पाप पुञ्ज के विनाश का विधान है। अथवा इस श्रीरामनामकी जितनी क्षमता है कि पापों को पूर्ण रूपसे भस्मसात् करडालें उतनी मात्रा में कोई भी पापी पाप का आचरण करने में सक्षम नहीं है। इत्यादि वचनों से भगवान् श्रीरामजी के नाम के प्रभाव से पुण्य पाप पुञ्ज को विनष्ट करके मुक्ति विधान सुना गया है। इसप्रकार इसी जन्म में ही प्राण त्याग के समय जैसा अपने अनुकूल आचरण किये हैं तदनुसार भोग हो जाता है तत्पश्चात् तारक ब्रह्म का उपदेश से काशी वासी जीवों की मुक्ति हो जाती है यह रहस्य समझना चाहिये ॥४॥

卐 इति प्रथम कण्डिका 卐

**अथ हैनं भरद्वाजः पप्रच्छ याज्ञवल्क्यं किं तारकं किं तरतीति ॥१॥**

**वृहस्पति प्रश्नानन्तरमेनं याज्ञवल्क्यं पूर्वं तारकं ब्रह्मव्याचष्टे इत्युक्तं तत्र भरद्वाजः प्रच्छति तारकं किमिति तारकस्वरूपविषयकः प्रश्नः। पुनः किं तरति इतितरणविषयकः प्रश्नः। अर्थात् साधनफलपरिज्ञानभिन्नं ज्ञेयं किमपि न शिष्यते इतिभावः ॥१॥**

भरद्वाज ऋषि वृहस्पति की जिज्ञासा शान्त होने के पश्चात् योगीश्वर याज्ञवल्क्य को पूर्व वर्णित तारक ब्रह्म का व्याख्यान करते हैं यह कहा गया है इस विषय में पूछते हैं उसमें तारक मन्त्र का क्या स्वरूप है यह स्वरूप विषयक प्रश्न है। फिर क्या तरता है यह तरण विषयक प्रश्न है, अर्थात् साधन और फल का पूर्ण रूपसे ज्ञान से अलग जानने योग्य कुछ भी अवशिष्ट नहीं रह जाता है ॥१॥

**स होवाच याज्ञवल्क्यः तारकं दीर्घानलं विन्दुपूर्वकं दीर्घानलं पूनर्माय नमश्चन्द्राय नमोभद्राय नमः। इत्योमिति ब्रह्मात्मकाः सच्चिदानन्दाख्या इत्युपासितव्यम् ॥२॥**

**सर्वश्रेष्ठरुद्रेणोपदिष्टं तत् कथनमात्रेण सर्वप्राणिमोक्षप्रदमिति तारक ब्रह्मणः सर्वेभ्यो मन्त्रेभ्यः श्रेष्ठत्वं प्रकाशितम् । तस्य परिज्ञानाय भारद्वाजप्रश्नः- सकलप्राणिमोक्षप्रदं रुद्रोपदिष्टं तारकं किं स्वरूपमिति । तद्बोधयितुं याज्ञवल्क्यः कथयामास → षडक्षरो वह्निपूर्वस्तारकस्त्वभिधीयते । सर्वेषां राममन्त्राणां राम मन्त्रः षडक्षरः'' इतितारकमन्त्रे न ॐकारपूर्वः सप्ताक्षरत्वापत्तेः । काशीनिवासी भगवान् रुद्रः श्रीरामस्य मन्त्रं जजाप, मन्वन्तरसहस्रैः जपहोमार्चनादिभिः श्रीरामं तुतोषः, प्रसन्नः श्रीरामः शिवाय वरं ददौ य यस्य कस्यापि दक्षिणे कर्णे काश्यां**

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के उपासकों में सर्व श्रेष्ठ भगवान् श्रीशंकरजी के द्वारा जीव दयावश सभी को उपदेश किया गया। उनके कथन मात्र से ही सभी प्राणियों को मोक्ष प्रदायक होने से तारक ब्रह्म श्रीराम मन्त्र को सभी मन्त्रों की अपेक्षा श्रेष्ठ होना प्रकाशित होता है। उसका भी सभी तरह से ज्ञान के लिये महामुनि भरद्वाज का यह प्रश्न है। सभी प्राणियों को मोक्ष प्रदायक और भगवान् शंकर के द्वारा उपदेश दिया गया तारक ब्रह्म का क्या स्वरूप है यह प्रश्न है। उक्त जिज्ञासित विषय को समझने के लिये योगीश्वर याज्ञवल्क्यजी कहे-

छ अक्षरों वाला वह्नि वीज रेफ है पूर्व में जिस के अर्थात् आरम्भ अक्षर ओंकार नहीं ऐसा श्रीराम मन्त्र तारक कहा जाता है। संसार में जितने भी भगवान् श्रीरामजी के मन्त्र हैं उनमें सर्वश्रेष्ठ छ अक्षरों वाला श्रीराम मन्त्र है। इस कथन से ज्ञात होता है कि तारक ब्रह्म मन्त्र में पूर्व अक्षर ॐकार नहीं है। अन्यथा सात अक्षर का मन्त्र होने लग जायगा।

काशी नगरी में निवास करने वाले भगवान् रुद्र श्रीराम महामन्त्र का जप किये, हजारों मन्वन्तरों तक जप होम तर्पण तथा उपासना आदि के द्वारा भगवान् श्रीरामचन्द्रजी को सन्तुष्ट किये। प्रसन्न भगवान् श्रीरामचन्द्रजी भगवान् श्रीशंकरजी को वरदान दिये। पात्रापात्र का विना विवेचन किये जिस किसी प्राणी के दाहिना कान में वाराणसी नगरी में इस मन्त्र का उपदेश करेंगे। वह निश्चित रूपसे मुक्त हो जायगा। वही कहते हैं दीर्घ आकार के सहित अग्नि बीच रेफ विन्दु पूर्वक अर्थात् (रां) इसी की सभी मन्त्रों में श्रेष्ठता है। संसार के सभी मन्त्रों के रहस्यभूत तत्त्व के महान् जानकार रुद्र का भी अन्य मन्त्रों के होते हुये भी षडक्षर श्रीराम मन्त्र के जप होमादि में आग्रह विशेष है। और इस षडक्षर श्रीराम मन्त्र के जप उपासना आदि में सभी

**मन्त्रमिममुपदेक्ष्यसि स मुक्तोभविता । तदेव कथयति दीर्घाकारसहितमग्निबीजं विन्दुपूर्वकम्, अस्यैव सर्वेषु श्रीराममन्त्रेषु उत्कृष्टत्वम् । सर्वमन्त्ररहस्यज्ञस्य अपि रुद्रस्य मन्त्रान्तरसत्वेऽपि षडक्षरजपादावाग्रहविशेषः, सर्वेषां प्राणिनाञ्चात्राधिकारः । विन्दुशिरस्कं तारकवीजमुद्धरेदित्यत्र विन्दुपूर्वकं जगत् सृष्टिक्रमः । विन्दो र्नादः स च परापश्यन्तीमध्यमाद्यवस्थामनुभूय स्वरवर्णपदवाक्यादिरूपमाप्नोति । अर्थसृष्टौ अविद्याविन्दुः महत् तत्त्वं ततोऽहंकारस्ततः पञ्चतन्मात्रादयो भवन्ति । स्वभुर्ज्योतिर्मयोऽनन्तरूपीस्वेनैव भासते । ज्योतिर्मयत्वेन स्वप्रकाशश्चिदात्मकोरकारः आनन्दात्मकामृतरूपश्चन्द्रः, आह्लादस्वरूपः तदाकारवान् विन्दुः एतेन प्रकाशानन्दचिदात्मकं बीजमुद्धृतम् । अतः तारकस्य विन्दोरर्थसृष्टिशब्द सृष्ट्योः कारणत्वं निरूपितम् । 'माय नमः' इत्यत्र मः चन्द्रः सवीजसरामचन्द्राय नमः इति न केवलं सचराचरादिहेतुत्वेन श्रीराममन्त्रस्य श्रेष्ठत्वमपि तु सकलकारणस्योङ्कारस्यापि कारणत्वेन सर्वश्रेष्ठत्वम् ।**

प्राणियों का अधिकार है। विन्दु है शिर के ऊपर जिसके ऐसे तारक मन्त्र का उद्धार करे, इस विषय में इस संसार की रचना विन्दु पूर्वक ही होती है यह क्रम है। क्योंकि शब्द सृष्टि में विन्दु से नाद और वह नाद परा पश्यन्ती मध्यमा अवस्थाओं का अनुभव कर स्वर वर्ण पद वाक्य महावाक्य आदि स्वरूपों को प्राप्त करता है। अर्थ सृष्टि में अविद्या से विन्दु विन्दु से महत् तत्त्व महत् तत्त्व से अहंकार अहंकार से पांच तन्मात्रायें उन से महाभूत आदि उत्पन्न होते हैं। इससे दोनों प्रकार के सृष्टि का मूल विन्दु है यह सिद्ध हुआ। स्वयं उत्पन्न होने वाले तेजोमय अनन्त स्वरूपों वाले अपने ही प्रभाव से प्रकाशित होते हैं। यहां ज्योतिर्मय कहने से स्वयं प्रकाश चित् स्वरूप र कार कहा जाता है। आनन्दात्मक अमृत स्वरूप चन्द्र है, चदि आह्लादे से आह्लादात्मक है। इसप्रकार के स्वरूप वाला विन्दु है। इसप्रकार प्रकाश आनन्द एवं चित् स्वरूप वाला विन्दु का उद्धार हुआ। इसलिये तारक ब्रह्म के विन्दु की अर्थ सृष्टि एवं शब्द सृष्टि की कारणता प्रतिपादित की गयी। 'माय नमः' यहां पर 'म' का अर्थ चन्द्र है वह वीज है जिसमें उस श्रीरामचन्द्रजी के लिये प्रणाम। इसके बल से सकल चराचर की कारणता के रूपमें श्रीराम मन्त्र की श्रेष्ठता भी निरूपित होती है। और भी सकल जगत् के कारणभूत ॐकार का भी कारण होने से सभी से श्रेष्ठ श्रीराम मन्त्र है यह सिद्ध होता है।

पूर्ववर्णितस्वरूपं तारकं ॐकारात्मकं भवति । जीवत्वेनेदमोंयस्येति पूर्वतापनीयेप्युक्तम्, 'रामनाम्नः समुत्पन्नः प्रणवो मोक्षदायकः' इतिस्मृतेश्च ।

प्रणवं केचिदाहुर्वै बीजश्रेष्ठं तथापरे ।
तत्तु ते नामवर्णाभ्यां सिद्धिमाप्नोति मे मतम् ॥ इति ।

श्रीरामनाम्नो वर्णविश्लेषविपर्ययादिभिः प्रणवोत्पत्तिः सिद्ध्यति । ओमित्येकाक्षरं सर्वमित्यादेस्तु न बाधः । प्रणवावयवयो र कार म कारयोः श्रीराममन्त्रस्याकारमकाराभेदेन 'रेफारूढामूर्तयः स्युः' इत्यत्र विस्तरेण श्रीराम मन्त्रस्य प्रणवकारणत्वं स्पष्टीकृतम् ।

सर्ववेदादिभूतप्रणवकारणत्वं श्रीराममन्त्रस्य प्रदर्श्य अथ ब्रह्माभेदत्व प्रदर्शनेन तस्य सर्वोपास्यत्वं निरूपयन् ब्रह्मात्मकः सच्चिदानन्दाख्या इत्युपासि तव्यम् । षडपिवर्णाः 'तेजोरूपमयोरेफः' इतिमहारामायणवचनमनुसृत्य श्रीरामा कारप्राप्तत्वात् ब्रह्मात्मकाः । अथवा श्रीरामवाचकत्वेन तत् तादात्म्य गतत्वाद् ब्रह्मरूपाः सच्चिदानन्दश्रीरामबोधकत्वेन तदाख्यां, ब्रह्मवद् व्यापकधर्मवत्वाद्वा ब्रह्मात्मकाः, तदुक्तं पूर्वतापनीये→

रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि ।
इति रामपदेनासौ परब्रह्माभिधीयते ॥

पूर्व में जिसका वर्णन किया जा चुका है वह तारक ॐकार स्वरूप है । जीव रूपमें ॐ जिसका इत्यादि पूर्वतापनीय में कहा गया है । वह ॐकार श्रीरामनाम से उत्पन्न हुआ है वह प्रणव मोक्षदायक है ऐसा स्मृति वचन है ।

कोई प्रणव को श्रेष्ठ कहते हैं, दूसरे बीज को श्रेष्ठ कहते हैं । और वे दोनों ही नाम और वर्णों से श्रेष्ठता को प्राप्त करते हैं यह मेरा मत है । श्रीरामनाम के वर्ण विश्लेष वर्ण विपर्यय आदि के द्वारा ॐकार की उत्पत्ति सिद्ध होती है। ॐ यह एक अक्षर ही सवकुछ है । इत्यादि का इससे कोई बाध नहीं है । प्रणव के अवयन अकार मकार का श्रीराम मन्त्रस्थ रकार मकार के साथ अभेद सम्बन्ध 'रेफारूढामूर्तयः स्युः' इस प्रकरण में इसका विस्तार पूर्वक विवेचन किया गया है । जहां श्रीराम मन्त्र का प्रणवाकारत्व स्पष्ट किया गया है ।

सभी वेदों के आदि स्वरूप प्रणव का कारणत्व श्रीराम मन्त्र का प्रदर्शित करके, इसके वाद ब्रह्म के साथ अभेद प्रदर्शन के द्वारा श्रीराम मन्त्र के सर्वोपास्यत्व प्रतिपादन

श्रीरामोपनिषद्यपि→

**स्वप्रकाशः परं ज्योतिः स्वानुभूत्यैकचिन्मयः ।**
**तदेव रामचन्द्रस्य मनोराद्यक्षरं स्मृतम् ॥**

**श्रुतिः षडक्षराणां ब्रह्मात्मकत्वं कण्ठतः कथयन्नाह ब्रह्मात्मका इति । तदेव स्फुटयन्नाह सच्चिदानन्दाख्या इति । सच्चिदानन्दा इतिसंज्ञा येषां ते सच्चिदानन्दाख्या, सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म । आनन्दो ब्रह्म, प्रज्ञानं ब्रह्म, इत्यादिभिः श्रुतिभिः ब्रह्मणः सच्चिदानन्दरूपत्वमाख्यायते । सच्चिदानन्दसंज्ञकामन्त्रवर्णा अपि ब्रह्मात्मकाः । तेन षडक्षराणां ब्रह्मस्वरूपत्वं ततः उपासितव्यम् ।**

**अविवेचितविशेषाविशेषजीवमोक्षप्रदायकत्वेन तारकत्वेन निखिलवेदादि प्रणवहेतुत्वेन ब्रह्मात्मकत्वेन सच्चिदानन्दाख्यत्वेन निखिलब्रह्माण्डमूलतया षड-**
करते हुए ब्रह्मस्वरूप सच्चिदानन्द नामक श्रीराम मन्त्र की उपासना करनी चाहिये । छओं ही वर्ण, तेजोमय रेफ है, इस महारामायण के वचन का अनुशरण करके श्रीराम स्वरूप को प्राप्त करने के कारण यह मन्त्र ब्रह्म स्वरूप है । सच्चिदानन्द स्वरूप श्रीरामजी का बोधक होने के कारण उनका नाम ब्रह्म के समान व्यापकत्व धर्म सम्पन्न होने से ये ब्रह्मात्मक हैं । यही पूर्वतापनीय में कहा है । जिस सत्य आनन्द एवं चैतन्य स्वरूप में आनन्दानुभूति करते हैं । इसलिये श्रीराम पद के द्वारा परब्रह्म कहा जाता है । स्वयं प्रकाश स्वरूप सर्वोत्कृष्ट ज्योति स्वरूप केवल आत्मानुभूति रूप चैतन्यमय होना यही भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के मन्त्र का आदि अक्षर कहा गया है । श्रुति श्रीराम मन्त्र के षडक्षर का ब्रह्मात्मकत्व अपने मुख से निरूपण करती हुई कहती है 'ब्रह्मात्मकाः' इति । सत् चित् आनन्द संज्ञा है जिनकी वे सच्चिदानन्द नाम के हैं । सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म, आनन्दो ब्रह्म, प्रज्ञानं ब्रह्म, इत्यादि श्रुति वचनों के द्वारा ब्रह्म का सत् चित् आनन्द नाम वाला मन्त्र के अक्षर भी ब्रह्मस्वरूप है । इससे श्रीराम मन्त्र के छ अक्षरों का ब्रह्म स्वरूपत्व है यह श्रुति एवं स्मृति तथा श्रीमद्रामायण से सिद्ध होता है । इससे उसकी ही उपासना करनी चाहिये ।

जिसने जीव के सामान्य विशेष आदि का विना विवेचन किये ही जीव मात्र को मोक्ष प्रदायक होने से और सभी का उद्धारक होने से और समस्त वेद आदि प्रणव का कारण होने से एवं ब्रह्मात्मक होने के कारण और सच्चिदानन्द नाम वाला होने से तथा समस्त ब्रह्माण्ड का मूलकारण होने के कारण छ अक्षरों वाला तारक श्रीराम

क्षरं तारकमेवोपासितव्यम् । तथा च स्मृतिः→

'ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियो शूद्रास्तथेतरे ।
सर्वेप्यधिकारिणोऽस्यह्यनन्यशरणा यदि ॥

षडक्षरप्रकरणत्वादस्यैवोपास्यत्वमिति ॥२॥

महामन्त्र की ही उपासना करनी चाहिये इसप्रकार स्मृति कहती है–अतः ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य स्त्रियां शूद्र और अन्य प्राणी सभी इस श्रीराम मन्त्र के अधिकारी हैं अनन्य शरणागति वाले हो तों अतः सभी का एक मात्र श्रीराम मन्त्र ही शरण है। यह स्मृति षडक्षर तारक प्रकरण का है इसलिये इसकी ही उपासना करनी चाहिये ॥२॥

**अकारः प्रथमाक्षरो भवति, उकारो द्वितीयाक्षरो भवति मकार स्तृतीयाक्षरो भवति अर्धमात्राश्चतुर्थाक्षरो भवति विन्दुः पञ्चमाक्षरो भवति, नादः षष्ठाक्षरो भवति तारकत्वात् तारकोभवति, तदेव तारकं ब्रह्म त्वं विद्धिः, तदेवोपास्यमिति ज्ञेयम्, गर्भजन्मजरामरणसंसार महद् भयात् संतारयतीति तस्मादुच्यते तारकमिति ॥३॥**

षडक्षरकार्यस्य प्रणवस्य त्रिमात्रत्वं लोकज्ञातं तस्य विश्लेषेण षडक्षरं गमयति, ओंकारस्य प्रथमाक्षरमकारो भवति, द्वितीयाक्षरः उकारः, तृतीयाक्षरो मकारः चतुर्थाक्षरोऽर्धमात्रा, विन्दुः पञ्चमाक्षरः नादः षष्ठाक्षरः सर्वार्थबोधकत्वात् षण्णामपि वर्णानां षडक्षरावयवार्थबोधकत्वमेतेन वर्णसाम्यात् षडक्षरसमतां प्रतिपाद्य, प्रणवस्य तद्धर्मप्राप्तिं दर्शयन्नाह तारकत्वात् तारकोभवतीति, तारकं दीर्घानलमिति वर्णशः साम्यात् तारकत्वम् । तारयति उद्धारयतीतितारकः तस्य भावः तारकत्वम् । कस्मात् तारयतीति जिज्ञासायामाह–गर्भजन्मजरामरणसंसार महद् भयादिति । मध्येश्रुतः तदेवतारकं ब्रह्म त्वं विद्धिरुद्रस्तारकं ब्रह्मव्याचष्टे, 'तारकं दीर्घानलम्' इति यस्य स्वरूपं निरूपितं तदेव तारकं जानीहि । अत्र तदेव तारकं ज्ञेयमुपास्यं चेति शिष्यशिक्षार्थं दृढयति । सच्चिदानन्दात्मकब्रह्मवाचक तादात्म्येनोपासनीयम् । जीवपरज्ञेयः अनयोः शेषशेषीभावः । गर्भादिभ्यः सद्यः तारयतीति सर्वोपास्यत्वम् । यो मन्त्रोगर्भादिभ्यस्तारयति तस्य सर्वस्य तारक संज्ञेति तु न, वेदपुराणादौ मन्त्रान्तरस्य तारकसंज्ञाश्रवणात् । तारकं दीर्घानलं, षडक्षरो वह्निपूर्वस्तारकत्वमभिधीयते, श्रीरामेति परं जाप्यं तारकं ब्रह्मसंज्ञित–

मित्यादिश्रुतिस्मृतिभिः श्रीराममन्त्रषडक्षरस्यैव तारकसंज्ञा उच्यते । अकारः प्रथमाक्षरोभवतीत्यादिभिः प्रणवस्यैव कारणत्वमिति न वाच्यम् । कार्यावयवस्य कारणावयवत्वायोगात् । षडक्षरेऽकारस्य प्रथमावयवेदर्शनाभावाच्च । प्रणवस्य सर्वकारणत्वेऽपि 'जपतः सर्ववेदांश्च सर्वमन्त्राश्चेत्यादिभिर्यादृशं महत्वं श्रीराम महामन्त्रस्य प्रदर्शितं तादृशमहत्त्वाश्रवणाच्च ॥३॥

षडक्षर श्रीराम मन्त्र का कार्यभूत ॐकार की भी तीन मात्रायें है यह सर्वलोक विदित है। उसका विश्लेषण के द्वारा षडक्षरत्व का निरूपण करते हैं। ॐकार का प्रथम अक्षर अकार है, द्वितीय अक्षर उकार है, तृतीय अक्षर मकार है। चतुर्थाक्षर अर्धमात्रा है, पञ्चम अक्षर विन्दु है एवं छठा अक्षर नाद है। सकल पदार्थ का बोधक होने से छओं वर्णों का षडक्षर के अवयवार्थ बोधकत्व है। इनके वर्णों की समानता के कारण षडक्षर तारक ब्रह्म की समानता का प्रतिपादन करके, प्रणव तारक मन्त्र के धर्म की प्राप्ति को दिखाते हुए कहते हैं। सभी प्राणियों का उद्धारक होने के कारण तारक कहा जाता है। 'तारकं दीर्घानलं' इससे वर्णशः समानता के कारण तारकत्व है। जो उद्धार करता है उसे तारक कहते हैं। उस तारक का भाव में प्रत्यय करने पर तारकत्व होता है। किस से उद्धार करता है ऐसी जिज्ञासा होने पर श्रुति कहती है, गर्भ जन्म जरामरण स्वरूप संसार के महान् भय से उद्धार करता है। जो मध्य में कहा गया है उसी को तारक ब्रह्म समझो। भगवान् रुद्र तारक ब्रह्म का उपदेश करते हैं। 'तारकं दीर्घानलम्' इत्यादि जिसका स्वरूप है ऐसा कहा गया है उसी को तारक ब्रह्म जानो।

यहां पर उसी को तारक ब्रह्म जानना चाहिये और उपासना करनी चाहिये इन वातों को शिष्य शिक्षा के लिये दृढता पूर्वक कहते हैं। तारक ब्रह्म की सच्चिदानन्दात्मक ब्रह्म स्वरूप के साथ तादात्म्य भाव से उपासना करनी चाहिये। यहां पर ज्ञेय शब्द जीव परक है, अर्थात् सच्चिदानन्द ब्रह्म के साथ तादात्म्य रूपमें तारक को जीवात्मा समझे। जीवात्मा एवं परमात्मा का शेष शेषी भाव सम्बन्ध है। गर्भ जन्म जरा आदि से तत्काल उद्धार करता है इसलिये प्राणी मात्र के लिये तारक मन्त्र उपासना करने योग्य है। जो मन्त्र गर्भ आदि से उद्धार करता है वे सभी मन्त्र तारक मन्त्र कहे जाते हैं ऐसा कहना उचित नहीं है। वेदशास्त्र पुराण आदि में अन्य मन्त्रों की तारक संज्ञा नहीं कही गयी है। 'तारकं दीर्घानलं' छ अक्षरों वाला वह्नि वीज

रेफ है पहला अक्षर जिसका वह तारक ब्रह्म मन्त्र कहा जाता है। तारक ब्रह्म नाम से कथित श्रीराम यह सर्वोत्कृष्ट जप करने योग्य है, इत्यादि श्रुति स्मृति आदि के द्वारा षडक्षर श्रीराम मन्त्र की ही तारक ब्रह्म यह संज्ञा सुनी जाती है। 'अकार प्रथम अक्षर होता है' इत्यादि वचनों के द्वारा प्रणव (ॐकार) का ही कारणत्व है ऐसा नहीं कहा जा सकता है। कार्य के अवयव का कारण का अवयवत्व किसी अवस्था में होना सुसंगत नहीं कहा जा सकता। और षडक्षर तारक ब्रह्म महामन्त्र में अकार प्रथम अवयव है यह कही भी नहीं देखा गया है। प्रणव का सर्व कारणत्व प्रतिपादन किये जाने पर भी 'जपतः सर्ववेदांश्च सर्वमन्त्रांश्च' इत्यादि के समान माहात्म्य कहीं नहीं सुना जाने के कारण भी तारक ब्रह्म का कारण ॐकार का होना सम्भव नहीं है अतः वेद श्रीमद्रामायण इतिहास पुराण आदि के प्रमाणों से यह निश्चित है कि ब्रह्म तारक षडक्षर श्रीराम महामन्त्र में स्थित 'रां' यही ॐ आदि सभी का कारण है यह निश्चित है ॥३॥

**य एतत्तारकं ब्राह्मणो नित्यमधीते स पाप्मानं तरति, स मृत्युं तरति स भ्रूणहत्यां तरति। स ब्रह्महत्यां तरति, स वीरहत्यां तरति, स सर्वहत्यां तरति, स संसारं तरति, स सर्वं तरति सोविमुक्ताश्रितोभवति स महान् भवति सोऽमृतत्वं गच्छतीति ॥४॥**

ॐ इतिद्वितीयाकण्डिका ॐ

**यः कोऽपि ब्रह्म तत्त्व बुभुत्सुः ब्राह्मणः नतु ब्राह्मणजातिपर इतिज्ञेयम्। 'जन्तोः प्राणेषूत्क्रममाणेषु तारकं व्याचष्टे' इतिश्रुत्या 'ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्या स्त्रियः शूद्रास्तथेतरे' इतिस्मरणाच्चात्रमन्त्रे सर्वेषामधिकारदर्शनात्। अत्रोद्धारे सप्तविशेषणान्याह। भ्रूणः वेदपारगो ब्राह्मणः वीरः ज्येष्ठ पुत्रः संसारपदेबाह्य विषया उच्यते। विरजापर्यन्तं सर्वपदेनोच्यते। अविमुक्तत्वं बद्धत्वम्। अथवा विमुक्तत्वं परमात्मानमाश्रितो भवति 'जीवन्तो मन्त्रसिद्धाः स्युरिति वक्ष्य-माणश्रुतेः ॥४॥**

इस तारक ब्रह्म का अध्ययन जो ब्राह्मण नित्य करता है। यहां ब्राह्मण शब्द ब्रह्म तत्त्व जानने का इच्छुक यह अभिप्राय परक है न कि ब्राह्मण परक है। क्योंकि प्राणों के निकलते समय रुद्र तारक ब्रह्म का उपदेश प्राणी मात्र को देते हैं। इस श्रुति एवं ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र स्त्रियां तथा अन्य इस स्मृति से मन्त्र की उपासना में

सभी का अधिकार कहा गया है। यहां पर उद्धार में सात विशेषण कहे गये हैं। पाप से मृत्यु से और भ्रूण हत्या से तरता है। यहां भ्रूण का अर्थ वेद पारङ्गत ब्राह्मण है। ब्रह्म हत्या वीर हत्या वीर का अर्थ ज्येष्ठ पुत्र है। सर्व हत्या से तरता है संसार पद से बाह्य विषय कहे जाते हैं। और सर्व पद से विरजा पर्यन्त कहा जाता है। अर्थात् सर्वं तरति विरजा को पार कर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के परमधाम श्रीसाकेत में पहुँच कर सायुज्य मुक्ति को प्राप्त करता है। अमृतत्व से मोक्ष एवं अविमुक्त से बद्ध जीव प्रतिपाद्य है। अथवा विमुक्त परम पद को आश्रित होता है क्योंकि 'जीवन्तो मन्त्र सिद्धाः स्युः' यह श्रुति आगे कही जाने वाली है ॥४॥

इति द्वितीय कण्डिका

**अथ प्रणवाकारप्राप्तस्य तारकस्य तात्पर्यभूताः इमे चत्वारः श्रुति-प्रसिद्धाः श्लोकाः सन्ति-**

**अकाराक्षरसम्भूतः सौमित्रिविश्वभावनः।**
**उकाराक्षरसम्भूतः शत्रुघ्नस्तैजसात्मकः ॥१॥**
**प्रज्ञात्मकस्तु भरतोमकाराक्षरसम्भवः।**
**अर्धमात्रात्मको रामोब्रह्मानन्दैकविग्रहः ॥२॥**
**श्रीरामसान्निध्यवशाज्जगदानन्ददायिनी।**
**उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणीसर्वदेहिनाम् ॥३॥**
**सा सीता भगवतीज्ञेया मूलप्रकृतिसंज्ञिता।**
**प्रणवत्वात् प्रकृतिरिति वदन्ति ब्रह्मवादिनः ॥४॥**

अकारः अक्षरात् सम्यग् ज्ञातः सुमित्रापुत्रः जाग्रद्‌वस्थायां विश्वनियामकः लक्ष्मणः इत्यर्थः। जाग्रदवस्थासाक्ष्यात्मा विश्वः तस्य नियन्ता लक्ष्मणः। अत्र समष्ट्याभिमानित्वेन प्रतिशरीरं जाग्रदवस्थासाक्ष्यात्मतया विश्वाख्य इतिज्ञेयम्।

अकार अक्षर से सम्भूत आदि प्रकरण में प्रणव (ॐकार) स्वरूप को प्राप्त तारक ब्रह्म का तात्पर्यभूत अवयवाक्षरों का अभिप्राय बताने के लिये ये चार वेद प्रसिद्ध श्लोक हैं। उनका यह तात्पर्य भूत अर्थ है। अकार अक्षर से सम्यक् प्रकार से ज्ञात सुमित्रा तनय जाग्रदवस्था के समष्ट्यात्मक जगत् का नियामक श्रीलक्ष्मणजी

उकाराक्षरात् सम्यग् ज्ञातः तैजसात्मकः शत्रुघ्नः नियामकः । अत्रापि समष्ट्या भिमानित्वेन प्रतिशरीरं स्वप्नावस्थासाक्ष्यात्मतया नियामकः तैजसः शत्रुघ्नः इतिबोध्यम् । मकाराक्षरात् सम्यग् विज्ञातः प्रज्ञास्वरूपः भरतः । भरतः अपि समष्ट्याभिमानितया सुषुप्त्यवस्थाया साक्षिभूतो नियामकः प्राज्ञः भरतः इतिबोध्यम् । लक्ष्मणभरतशत्रुघ्नानां सर्वजीवनियामकत्वं तिसृष्ववस्थासु प्रतिपादितम् । अथ ब्रह्मानन्दैकविग्रहस्य सर्वेश्वरश्रीरामचंन्द्रस्य सकलजीवतुरीया वस्थाया नियामकत्वं सिद्धमेव । ब्रह्मचासावानन्दश्च ब्रह्मानन्दः सचैको विग्रहः शरीरं यस्य स श्रीरामः ब्रह्मानन्दाभ्यां विशेषणाभ्यां प्राकृततत्वरहितः । श्रीराम चन्द्रस्य ब्रह्मानन्दमय एव विग्रहो विद्यते । अतः शरीरशरीरीभेदः नास्ति । 'श्रीशाङ्र्गधारिणं रामं चिन्मयानन्दविग्रहम्' इतिसच्चिदानन्दरूपत्वस्मरणाच्चार्ध मात्रात्मकः सर्वेश्वरश्रीरामः इत्याशयः ।

अथ श्रीरामचन्द्राभिन्नायाः श्रीसीतायाः श्रीरामप्रतिपादकार्धमात्राया निकटस्थ विन्दुप्रतिपाद्यत्वं कथयन्नाह श्रीरामसान्निध्यवशादिति श्रीरामप्राप्तिरेव परमपुरुषार्थतया भक्त्यातिशयबोधनाय श्रीरामपदं प्रथमं प्रयुक्तवान् । स्वभा वतो जगतामतिशयसौख्यप्रदायिनी, तत् तत् कर्माण्यनुसृत्य सर्वशरीरिणां विश्वतैजसप्रज्ञावस्थावतां सौमित्र्यादीनां नियम्यतया उत्पत्तिपालनसंहारकारिणी या

हैं जाग्रत् अवस्था के साक्षी आत्मा विश्व है उसके नियामक श्रीलक्ष्मणजी हैं । यहां पर समष्टि का अभिमानी होने के कारण प्रत्येक शरीर में जाग्रदवस्था साक्षी आत्मा के स्वरूप में विश्व नामक तत्व श्रीलक्ष्मणजी हैं यह समझना चाहिये । उकार अक्षर से सम्यक् प्रकार से ज्ञात तैजस स्वरूप का श्रीशत्रुघ्नजी नियामक हैं । यहां पर भी समष्टि का अभिमानी होने के कारण प्रत्येक शरीर में स्वप्नावस्था के साक्षी भूत आत्मा के स्वरूप में नियामक तैजस श्रीशत्रुघ्नजी हैं यह जानना चाहिये । मकार अक्षर से सम्यक् रूपमें ज्ञात प्रज्ञा स्वरूप श्रीभरतजी हैं । भरतजी भी समष्टि अभिमानिता के कारण सुषुप्ति अवस्था का साक्षीभूत नियामक प्राज्ञ हैं यह जानें । श्रीलक्ष्मणजी श्रीभरतजी और श्रीशत्रुघ्नजी का सकल जीव नियामकत्व तीनों भिन्न भिन्न अवस्थाओं में है यह बताया जा चुका है । अब इसके वाद ब्रह्म आनन्द स्वरूप एक मात्र शरीर वाला भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का समस्त जीवों के तुरीयावस्था का नियामकत्व स्वभाव सिद्ध है । ब्रह्म होते हुए जो आनन्दस्वरूप है उसे ब्रह्मानन्द कहते हैं, वही है एक

मूलप्रकृत्यभिधाना भगवती श्रीसीता ज्ञानशक्त्यादिषड्गुणालंकृता सा ज्ञानविषयीकरणीया । अत्र मूलप्रकृतिशब्दः सांख्याभिमतो न जडप्रकृतिपरः । किन्तु 'हेमाभया द्विभुजया सर्वालङ्कारया चिता' इतिपूर्वतापनीयानुसारेण चिद् रूपा । मूलप्रकृतिरपि प्रकृतिरित्यस्याः श्रीसीताकटाक्षोद्भवत्वस्मरणाच्च । तद् व्युत्पत्तिमाह प्रणवत्वात् प्रकृतिरिति । णु स्तुतौ इतिप्रणवते स्वकटाक्षोद्भवायाः जडप्रकृतेर्महदाद्याकारेण या सा प्रणवा तस्या भावः तस्मात् । अथवा प्रकर्षेण क्रियते अनयेति प्रकृतिः ब्रह्मप्रणवमूलोवेदः । अत्र विश्वतैजसादीनां लक्ष्मणादीनां श्रीरामकैङ्कर्यपरायणतया भगवच्छेषत्वम् । सर्वं चराचरं जगत् श्रीसीताभिन्नराम स्यैव शेषभूतम् । तेन श्रीसीतायाः सर्वस्वामित्वमेव । श्रीसीतारामयोरभिन्नत्वात् स्वरक्षणोपायत्वञ्च । प्रकृतप्रसङ्गे-

'यथा रामस्तथाहं च भेदः कश्चिन्नचावयोः ।
शीततताहि यथा नीरे तथाहं राघवेस्थिता ।
सर्वस्याधारभूतौ च त्वावामेव हि मारुते ।
स्वे महिम्नि स्थितावावामन्याधारो न चावयोः ।

मात्र विग्रह अर्थात् शरीर जिसका उसे ब्रह्मानन्दैक विग्रह कहते हैं। यहां पर ब्रह्म और आनन्द इन दो विशेषणों के द्वारा इङ्गित किया जाता है कि सर्वेश्वर श्रीरामजी प्राकृत शरीर से रहित हैं। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का ब्रह्मानन्दमय ही शरीर है। अत एव उनमें शरीर शरीरी का भेद नहीं है। शाङ्र्ग धनुष को धारण करने वाले चिन्मय आनन्द स्वरूप शरीर को धारण किये श्रीरामजी को इत्यादि वचनों से सच्चिदानन्द स्वरूपवान् होना श्रीरामजी को कहा गया है। यही अर्धमात्रात्मक श्रीरामजी हैं इसका आशय है। आगे श्रीरामचन्द्रजी से अभिन्न स्वरूप वाली श्रीसीताजी का श्रीराम प्रतिपादक अर्धमात्रा के निकटस्थ का विन्दु प्रतिपाद्यत्व कहा गया है। यही श्रीराम सान्निध्यवशात् से कहते हैं। भगवान् श्रीरामजी को ही प्राप्त करना परमपुरुषार्थ है इसलिये अतिशय भक्ति प्रकाशनार्थ श्रीराम पद का पहले प्रयोग किया गया है। स्वभाव से ही समस्त चराचर जगत् को परमानन्द प्रदान करने वाली, उन-उन प्रकारों के जीवों के कर्मों का अनुशरण कर सभी शरीर धारियों के जो विश्व तैजस प्राज्ञ अवस्था वाले श्रीलक्ष्मणजी आदि का नियम्य होने से उत्पत्ति पालन एवं संहार करने वाली जो मूल प्रकृति नाम से शास्त्र प्रसिद्ध भगवती श्रीसीताजी ज्ञान शक्ति आदि छ गुणों से

आवां तौ हि यतः कश्चिन्नाधिको न च यत्समः ।

सर्वात्मानौ मतौ चावां सर्वेषां प्रेरकौ तथा ।

सत्यकामौ तथा चावां सत्यसङ्कल्पतां गतौ ।

शरण्यौ वेदनीयौ च भजनीयौ हि मुक्तये ।

सर्वेषामवताराणामावामेवावतारिणौ ।

भासकभास्करादीनामावामेव विभासकौ ।

इत्यादिकाः श्रीवशिष्ठसंहितास्थश्लोका अनुसन्धेयाः । षडक्षरकार्यभूतः प्रणवोऽपि श्रीरामस्य शेषः । श्रीरामजानक्योः सान्निध्य इव अर्धमात्राविन्दोरपि सान्निध्यं दृश्यते एव । श्रीरामवाचकार्धमात्राद्वारा प्रणवस्य जगत् कारणश्रुतावपि श्रीरामवाचकार्धमात्रासान्निहितश्रीजानकीवाचकविन्दुद्वारैव तदुक्तमुत्पत्तिस्थिति सं

समलंकृत वे श्रीसीताजी अपने ज्ञान का विषय बनाने योग्य हैं। यहां पर मूल प्रकृति शब्द सांख्य शास्त्र प्रसिद्ध प्रकृति बोधक नहीं है । क्योंकि वह जड प्रकृति परक है। किन्तु सुवर्ण सदृश कान्तिमती दो भुजाओं से युक्त सभी अलङ्कारों से समलंकृत चित् स्वरूपिणी से इत्यादि वचनों से श्रीसीताजी चिद् रूपिणी कही गयी हैं । और 'मूल प्रकृतिरविकृतिः' इसको श्रीसीताजी के कटाक्ष से उत्पन्न है ऐसा शास्त्रों में बताया गया है। उस प्रकृति शब्द की व्युत्पत्ति कहते हैं प्रणव होने से श्रीसीताजी प्रकृति है । णु स्तुतौ इस धातु से जो अपने कटाक्ष से उत्पन्न होने वाली प्रकृति महदादि को प्रस्तुत करती है जड प्रकृति को उसे प्रणवा कहते हैं । उसका भाव प्रणवत्व हुआ, उससे अथवा जिसके द्वारा अतिशय या उत्कृष्ट मात्रा में उत्पन्न किया जाता है वह प्रकृति है। ब्रह्म प्रणव मूल जिसका है वह वेद है । यहां पर विश्व तैजस आदि लक्ष्मण प्रभृति का भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के कैङ्कर्य परायण होने से श्रीसीताभिन्न भगवान् श्रीरामजी का शेषत्व है । समस्त जडचेतनात्मक संसार श्रीसाताभिन्न श्रीरामचन्द्रजी का ही शेष है। इसलिये श्रीसाताजी का सर्व स्वामित्व ही है। क्योंकि श्रीसीतारामजी का अभिन्नत्व ही है। और आत्म संरक्षणोपायत्व भी है इस विषय में वशिष्ठ संहिता के श्रीसीतारामजी का अभेद प्रसंग को पूर्ण रूपसे अवलोकन करना चाहिये विस्तार भय से नहीं लिख रहे हैं उसे वहीं मेरी टीका में देखें । षडक्षर तारक ब्रह्म कार्यभूत प्रणव भी श्रीरामजी का शेष ही है। जिस तरह श्रीरामजानकीजी का नित्य सान्निध्य है उसी प्रकार अर्धमात्रा एवं विन्दु का सान्निध्य देखा जाता है। श्रीराम वाचक अर्धमात्रा के अत्यन्त सन्निकट

**हारकारिणीमिति । श्रीसीतारामयोरभिन्नयोर्जगत्कारणत्वं श्रीरामवाचकार्ध मात्रासंश्लिष्टविन्दोस्तादात्म्यसम्बन्धः । अतएव श्रीवैष्णवाः तिलकं श्रीरामरूपेण सश्रीकमूर्ध्वपुण्ड्रं धारयन्ति । अतः ऊर्ध्वपुण्ड्रस्य श्रुतिमूलकत्वं निष्पन्नं भवति॥१।२।३।४॥**

श्रीजानकी वाचक विन्दु के द्वारा ही श्रीराम वाचक अर्धमात्रा के द्वारा प्रणव का जगत् कारणत्व सिद्ध होता है। यही 'उत्पत्ति स्थिति संहार कारिणी' से कहा गया है। अभिन्न श्रीसीतारामजी का जगत्कारणत्व श्रीराम वाचक अर्धमात्रा से सम्यक् प्रकार से श्लिष्ट विन्दु का तादात्म्य सम्बन्ध है। अत एव श्रीवैष्णव गण अपने ललाट में तिलक भगवान् श्रीरामजी के स्वरूप में सर्वदा श्री के साथ ही धारण करते हैं। अतः ऊर्ध्व पुण्ड्र तिलक का वेद मूलकत्व होना वेद से प्रमाणित-सिद्ध होता है ॥१/२/३/४॥

**ओमित्येतदक्षरं सर्वं तस्योपन्याख्यानं भूतं भव्यं भविष्यदिति सर्वमोंकार एव, यच्चान्यत् त्रिकालातीतं तदप्योंकार एव, सर्वं ह्येतत् ब्रह्म, अयमात्मा ब्रह्म ॥५॥**

**ॐ इत्येतदक्षरमेव निखिलमर्थजातं शब्दजातञ्च, तेन भावाभावात्मकं सर्वार्थवाचकत्वमोङ्कारस्य । यथा शंकुना सर्वाणि पत्राणि ग्रथितानि भवन्ति तथैवोङ्कारेण सर्वावाक् तस्य ॐकारस्यैव उपसमीपे व्याख्यानं विस्पष्ट कथनमतीतं वर्तमानं भविष्यच्चेति । तेन कालत्रयपरिच्छिन्नं निखिलं समष्टिव्यष्ट्यात्मकं सर्वमोङ्कारमेव । यच्चान्यत् कालत्रयातीतमव्याकृतादितदप्योङ्कारमेव । कार्यकारणरूपस्य निखिलस्य संसारस्य वाच्यस्य वाचकमोङ्कार एव ।**

ॐ यह अक्षर ही समस्त अर्थ समुदाय एवं शब्द समुदाय है। अर्थात् अर्थ सृष्टि एवं शब्द सृष्टि ओंकारात्मक ही है। इस कथन से भावात्मक एवं अभावात्मक सभी अर्थों का वाचकत्व ओंकार में है। जिसप्रकार एक कील में गूँथे गये सभी पत्ते कील के आश्रित होते हैं उसी प्रकार समग्र वाणी ओंकार के ही अधीन हैं। ओंकार का ही उप अर्थात् समीप में व्याख्यान-विस्पष्ट अर्थ कथन है। अर्थात् भूत भविष्य वर्तमान सभी ओंकार में ही कीलित हैं। इससे कालत्रय परिच्छिन्न सभी समष्ट्यात्मक एवं व्यष्ट्यत्मक पदार्थ ओंकार ही है। इनसे अतिरिक्त भी जो त्रिकालातीत पदार्थ है अव्याकृत तत्त्व आदि वह भी ओंकार ही है। कार्यकारण स्वरूप समस्त संसार का एवं प्रतिपाद्यभूत अर्थ का भी वाचक ओंकार ही है।

विश्वरूपस्य ते राम ? विश्वे शब्दा हि वाचकाः ।
तथाऽपि रामनामेदं सर्वेषां वीजमक्षयम् ॥

इत्यादिभिः सर्वेषां चिदचिद् विशिष्टानां परमात्मवाचकत्वदर्शनात् श्रीरामस्य सर्वशब्दवाच्यत्वं 'सर्ववाच्यस्य वाचकः' इतिश्रुतेः स्मृतेश्च निर्दिश्य 'अकाराक्षरसम्भूत' इत्यादिना च निरूप्य 'ओमित्येदक्षरं सर्वम्' इत्यादिना निखिलचराचरवाचकत्वं प्रदर्शयन् सर्वोपास्यत्वं प्रदर्शयते । नामनामिनोरभेदात् चिदचितां श्रीरामशरीरत्वेन सर्ववाच्यवाचकसमूहस्य ब्रह्मव्याप्यत्वेन तदपृथक् सत्ताकत्वात्तद्रूपत्वमत आह श्रुतिः 'सर्वमेतद् ब्रह्मेति, ब्रह्मैवैतत् सर्वमिति । स्थूलसूक्ष्मावस्थावस्थिताभ्यां चिदचिद्भ्यां विशिष्टं ब्रह्म, ब्रह्मणः सर्ववाच्यत्वेन

हे श्रीराम ? विश्वरूप आपके हि वाचक सभी शब्द हैं तथापि यह 'राम' नाम सभी शब्दार्थ का अविनाशी बीज है । इत्यादि वचनों के द्वारा समस्त चित् अचित् पदार्थों का परमात्मा श्रीराम वाचकत्व देखे जाने से श्रीरामजी का ही सर्वशब्द वाच्यत्व सर्ववाच्य का वाचक है इस श्रुति एवं स्मृति से निर्देश करके 'अकाराक्षर सम्भूतः' इत्यादि के द्वारा प्रतिपादन करके 'ॐ इत्येतदक्षरं सर्वम्' इत्यादि श्रुति वचन से समस्त चराचर वाचकत्व प्रदर्शित करते हुए श्रुति सर्वोपास्यत्व का प्रदर्शन करती है । नाम एवं नामी का परस्पर अभेद सम्बन्ध होने के कारण चित् एवं अचित् पदार्थों का भगवान् श्रीरामजी का शरीर होने के कारण समस्त प्रतिपाद्य अर्थ समूह एवं प्रतिपादक शब्द समूह का ब्रह्म व्याप्य होने से अर्थात् सभी में ब्रह्म के व्यापक होने के कारण समस्त शब्द सृष्टि एवं अर्थसृष्टि की ब्रह्म से भिन्न सत्ता नहीं होने के कारण श्रीराम रूपत्व है । इसीलिये श्रुति कहती है यह सवकुछ ब्रह्ममय ही है ब्रह्म ही यह समस्त चराचर जगत् है । स्थूल चित् अचित् विशिष्ट एवं सूक्ष्म चित् एवं अचित् विशिष्ट सवकुछ ब्रह्म है । ब्रह्म का सर्ववाच्य होने के कारण उस ब्रह्म के प्रधान रूप से वाचक श्रीराम नाम का भी सर्वशब्दरूपत्व स्वभाव सिद्ध है । भगवान् श्रीरामजी 'अर्धमात्रात्मक' हैं इस श्रुति वचन में 'अर्धमात्रात्मकः' तथा 'रामः' इन शब्दों में समान विभक्तिकत्व निर्देश से श्रीराम शब्द का कार्यभूत प्रणव का भी अपने प्रतिपाद्य अर्थ श्रीरामजी के साथ श्रुति तादात्म्य सम्बन्ध प्रकट करती है कि 'ओमित्यक्षरमिति' ओंकार के प्रत्येक अवयवों का अर्थ निरूपण प्रसङ्ग में षडक्षर तारक ब्रह्म के निरूपण प्रसङ्ग में भी षडक्षर का अपने प्रतिपाद्य अर्थ के साथ तादात्म्य सम्बन्ध सिद्ध होने

तन्मुख्यवाचकस्य श्रीरामनाम्न अपि सर्वशब्दरूपत्वम् । 'अर्धमात्रात्मको रामः' इत्यत्रसामानाधिकरण्येन तत् कार्यभूतस्य प्रणवस्यापि स्ववाच्येन श्रीरामेण तादात्म्यं निदर्शयति 'ओमित्यक्षरमिति । ॐ कारावयवार्थस्य निरूपणे षडक्षरतादात्म्य निरूपणे च षडक्षरस्य स्ववाच्येन तादात्म्यसिद्धेः सर्वं ह्येतद् ब्रह्मेत्यस्य सामानाधिकरण्यं तादात्म्यं गमयतीति । 'सर्ववाच्यस्य वाचकः' इत्यत्र 'ओमित्येतदक्षरं सर्वम्' इत्यत्र यत् सर्वशब्देन उच्यते शब्दार्थजातं तत् सर्वं ब्रह्मशरीरत्वेनाभिन्नम् । तत्फलं श्रीरामशरीरत्वेन सकलप्राणिनां स्वरूपस्थिति प्रवृत्यादयो जायन्ते । श्रीरामाधीनत्वात् अस्य शरीरस्य मत्शेषी श्रीरामः अवश्यमेव योगक्षेमं करिष्यति इति दृढविश्वासनिर्भरः निर्भयः सन् सदैव स्वस्वरूपपरस्वरूपतादात्म्यानुसन्धानपूर्वकं तारकब्रह्माख्यं श्रीराममन्त्रं जपन् के कारण यह सवकुछ चराचर जगत् ब्रह्म है इस वाक्य का समान विभक्तिकत्व होना परस्पर तादात्म्य सम्बन्ध को बोध कराता है ।

सर्ववाच्य का वाचक है यहां पर ओंकार यह अक्षर ही सवकुछ है इस वचन में जो सर्वशब्द के द्वारा शब्द समूह एवं अर्थ समूह प्रतिपादित किया जाता है वह सवकुछ चित् एवं अचित् पदार्थ ब्रह्म का शरीर होने के कारण ब्रह्म से अभिन्न है। इस अभेद प्रतिपादन का फल यह है कि श्रीरामजी का शरीर के स्वरूप में समस्त जडचेतन प्राणियों का स्वरूप स्थिति प्रवृत्ति आदि हुआ करते हैं । समस्त जडचेतन जगत् को श्रीरामजी के अधीन होने के कारण इस शरीर का जो शेषभूत है उसका शेषी श्रीरामजी अवश्य ही योगक्षेम करेंगे । इसप्रकार के दृढतर विश्वास से परिपूर्ण होकर तथा निर्भय होकर सदैव अपना आत्मस्वरूप एवं परमात्म स्वरूप अर्थात् स्वयं का श्रीरामजी के साथ तादात्म्य सम्बन्ध का अनुशीलन करता हुआ तारक ब्रह्म नामक षडक्षर श्रीराम मन्त्र का जप करता हुआ इस श्रीरामतापनीय उपनिषद् के उत्तरार्ध भाग में कहे जाने वाले ४७. मन्त्रों के द्वारा प्रतिदिन श्रीरामचन्द्रजी की स्तुति करे । यही तात्पर्य 'सर्वं ह्येतद् ब्रह्म' यहां से आरम्भ कर तापिनी के समाप्ति पर्यन्त श्रुति समूह के द्वारा निरूपित किया जाता है ।

इस विषय में कतिपय सम्प्रदायानुसारी कहते हैं कि ब्रह्म ही अज्ञान (अविद्या) का आश्रय लेकर जडचेतनात्मक संसार के स्वरूप में प्रतीत होता है । उस ब्रह्म की प्रतीति ऐसी है जैसे अन्धकारादि दोषवश रज्जु में सर्प की बुद्धि हो जाने पर पुनः

वक्ष्यमाणैः सप्तचत्वारिंशन्मन्त्रैर्नित्यं श्रीरामं स्तवीत इत्येव सर्वं ह्येतत् ब्रह्म इत्यारभ्य तापिनीसमाप्तिपर्यन्तेन श्रुतिसमूहेन बोध्यते ।

अत्र केचिद् वदन्ति ब्रह्मैवाज्ञानमाश्रित्य चराचराकारेण प्रतीयते इति तस्य यथा रज्जौ सर्वबुद्धौ पुनः रज्जुरियं न सर्पः इतिज्ञानवत् सर्वं ह्येतद् ब्रह्मैवास्ति न तदन्यत्किञ्चिदिति स्वात्मगताज्ञाननिवृत्तिद्वारा परमानन्दानुभूतिरिति । तत्र विषये अयं प्रश्नः सर्वं ह्येतद् ब्रह्म इत्यत्र जगतः ब्रह्मरूपत्वमुच्यते अथवा ब्रह्मणः जगद्रूपत्वम् ? यथावृक्षसमुदायोः वनमित्यत्र वृक्षातिरिक्तं किमपि न भवति तथा जगतः ब्रह्मरूपत्वे ब्रह्मणः अभावापत्तिः स्यात् । तेन उपदेशस्यैव निरर्थकत्वम् । ब्रह्मणः जगद्रूपत्वे तु आदित्यो यूपः इत्यत्र इव सर्वत्र ब्रह्मसम्पाद्यते चेत् फलविशेषप्राप्तयेऽब्रह्मस्वरूपत्वे ब्रह्मत्वसम्पादनेनाद्वैतभङ्गः ।

प्रकाश होने पर यह रज्जु है सर्प नहीं है यह ज्ञान जैसे होता है उसी तरह संसार की बुद्धि होती है किन्तु भ्रम दूर होने पर ब्रह्म बुद्धि हो जाती है । यह सवकुछ ब्रह्म ही है ब्रह्म से भिन्न कुछ भी नहीं है, इस ज्ञान का उदय होने पर अपनी आत्मा में होने वाला अज्ञान बाधित हो जाता है । और आत्मगत अज्ञान निवृत्ति के द्वारा परमानन्द की उपलब्धि होती है । उस अद्वैत ब्रह्म विषय में यह जिज्ञासा होती है कि यह दृश्य चराचर जगत् यदि ब्रह्म ही है तो इस सिद्धान्त में संसार को ब्रह्मस्वरूप कहा जाता है । अथवा ब्रह्म का संसार स्वरूप होना कहा जाता है । जिसप्रकार वृक्ष समुदाय वन है इस ज्ञान के विषय में वृक्ष के अतिरिक्त वन में कुछ नहीं होता है, इसीप्रकार संसार का ब्रह्म स्वरूपत्व स्वीकार करने पर ब्रह्म का अभाव होने का दोष होगा । और इससे उपदेश की ही निरर्थकता हो जायगी । यदि यह कहें कि ब्रह्म संसार के स्वरूप में परिणत हो जाता है अर्थात् ब्रह्म ही अज्ञान वश संसार रूपमें प्रतीत होता है । तो जैसे यह यूप आदित्य है इस वाक्य में जैसे यूप में आदित्य की बुद्धि होती है उसके समान सभी जगह संसार में ब्रह्म बुद्धि होती है तो फल विशेष की प्राप्ति के लिये अद्वैत सिद्धान्त का भङ्ग होने लगेगा ।

यदि यह कहें कि इस श्रुति वचन के द्वारा तथा इस तरह के अन्य श्रुतियों के द्वारा ब्रह्मत्व सम्पादन नहीं किया जाता है किन्तु अज्ञान जो निमित्त नहीं है उसे निमित्त बनाकर ब्रह्म का समस्त चराचर जगत् का जो कारणत्व प्राप्त किया हुआ है वही सर्वाकारत्व जैसा ही जन्म मरण सुख आदि का भाजन जो उसका अनुभव करता

**ननु अनयाश्रुत्या ईदृशीभिः अन्याभिः श्रुतिभिश्च न ब्रह्मत्वं सम्पाद्यते किन्तु अज्ञानं निमित्तीकृत्य ब्रह्मणः सर्वकारणत्वं प्राप्तस्य सर्वाकारत्वमिव जन्ममरणसुखदुःखादिभाजनस्य तत्सेवमानस्याज्ञाननिवृत्तये ब्रह्मणः परमार्थ-स्वरूपं बोध्यते । चराचरस्वरूपेण दृश्यमानं तद्रूपमेव न न वा सुख दुःखाद्यात्मकम् । किन्तु दुःखाद्यतीतमेव ब्रह्मस्वरूपमिति चेत् तर्हि यद् ब्रह्म चराचरात्मकत्वप्राप्तं तत्प्रतीयते न वा 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म' 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' 'आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्' 'न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते' 'प्रधान क्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः' इत्यादिश्रुतिबोध्यमेवेतिचेत् तदा प्रथमं सजातीयविजातीय स्वगतभेदशून्येऽद्वैते निर्गुणे निर्विकारे स्वस्वरूपमात्रस्थे ब्रह्मणि अज्ञानागमनं**
है उन जीवात्माओं के अज्ञान निवारण के लिये ब्रह्म का पारमार्थिक स्वरूप समझाया जाता है। चराचर जगत् के स्वरूप में दिखाई देता हुआ संसार ब्रह्म स्वरूप ही है, सुख दुःखात्म स्वरूप मिथ्या है। किन्तु वास्तविक स्वरूप तो दुःखातीत ही है। इस तरह का वास्तविक ब्रह्म स्वरूप ब्रह्म का स्वरूप है ऐसा यदि कहते हैं तो एक ही अद्वितीय ब्रह्म है, सत्य एवं ज्ञान स्वरूप अनन्त ब्रह्म है। अन्धकार से अत्यन्त दूर सूर्य के समान प्रभावशाली ब्रह्म है। ब्रह्म के समान अथवा ब्रह्म से बढकर कोई तत्त्व संसार में नहीं दीखता है। प्रधान क्षेत्रज्ञाधिपति गुणाधिपति ब्रह्म है। इत्यादि श्रुति वचनों के द्वारा प्रतिपादित किया जाने वाले ब्रह्म है। इस तरह का यदि समाधान करते हैं तो सवसे पहले सजातीय विजातीय एवं स्वगत भेद रहित अद्वैत निर्गुण और विकार रहित स्वरूप मात्र में स्थित ब्रह्म में अज्ञान का समागमन कैसे हुआ ? और कहां से हुआ। और उसका साक्षात्कार प्राप्त है या अप्राप्त, जिसको निमित्त न होने पर भी निमित्त बनाकर उसे अपेक्षा करके संसार का कारणत्व प्राप्त होता है। यदि यह कहे कि वह आज्ञन अनादि कालीन है ब्रह्म की लीला विलास से इस स्वरूप को प्राप्त करता है। तव तो अनादि काल से ही अद्वैत स्थापन की हानि होगी। क्योंकि अनादि काल से ही ब्रह्म से भिन्न दूसरा अज्ञान तत्त्व है इसलिये अद्वैत की हानि होगी ही। यदि यह कहें कि अपने आप स्वयं से ही स्वयं उत्पन्न किया गया है तो पहले पहल माया किससे उत्पन्न की गयी, यदि कहें अनादि है तो ब्रह्म से द्वितीय तत्त्व हो जायगा तो अद्वैत की हानि ही है। स्वयं से स्वयं ही उत्पन्न की गयी ऐसा कहें तो सगुणत्व सविकारत्व दोष होगा इससे श्रुति वचन का विरोध होता है। यदि कहें कि ब्रह्मरूप

**कुतः । तद् दर्शनञ्च किम् । अप्राप्तं वा यन्निमित्तीकृत्य यदपेक्षयाजगत्कारणत्वं प्राप्तम् । अनादिभूतं तदज्ञानं ब्रह्मणः लीलया तदाकारत्वं प्राप्तमिति चेत् अनादि तोऽद्वैतहानिरज्ञानस्य द्वितीयत्वात् । स्वेच्छया उत्पादितं चेत् प्रथमम् माया कस्मादुत्पादितेत्यनादित्वे द्वितीयत्वादद्वैतहानिरेव । स्वस्मात् स्वयमेवोत्पादितश्चेत् सगुणत्वसविकारित्वदोषः । तेन श्रुतिविरोधः । ब्रह्मरूपमेवाज्ञानमिति चेत् स्वस्वरूपावरकत्वन्नसिद्ध्येत् । अज्ञानाभिधानवैयर्थ्यञ्च । ब्रह्मणोत्पादितायाः मायायाः ब्रह्मणः अपेक्षया अधिकं न्यूनं वा स्वीकर्तुं न शक्यते । अधिकत्वे सर्वसेव्यत्वन्न्यूनत्वे च ब्रह्माधिकेपदार्थे तस्यैव सेव्यत्वमिति विविधदोषप्रसङ्गः । अज्ञानस्यानिर्वचनीयं स्वरूपमिति चेत् तदपि न । 'अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां वह्वीम्प्रजां जनयन्तीं स्वरूपां, प्रकृतिं पुरुषञ्चैव विध्यनादि उभावपि, विद्याविद्ये मम तनू विध्युद्धवशरीरिणाम् ।' इत्यादिश्रुतिस्मृतिभिरनादित्वनिर्वचनेन ज्ञान मूलत्वेनाप्रामाण्यात् । अनादित्वस्वीकारे तु अद्वैत भङ्गः । ब्रह्माज्ञानयोश्च चित् ज डस्वरूपत्वेन तमः प्रकाशवत् विरुद्धस्वभावतया न ज्ञानकृद् ब्रह्मसंस्पर्शोः घटते।**

ही अज्ञान है तो स्वयं से स्वयं का आवृत करने वाला को बनाये यह सिद्ध नहीं होगा और अज्ञान नामकरण की निष्फलता होगी । ब्रह्म के द्वारा उत्पन्न की गयी माया का ब्रह्म की अपेक्षा अधिक अथवा न्यून स्वीकार नहीं किया जा सकता है । अधिकत्व मानने पर सेव्यत्व होने लगेगा । और न्यूनत्व मानने पर ब्रह्म के अधिक पदार्थ होने पर उसी का सेव्यत्व होगा इसतरह विविध दोषों का प्रसङ्ग होता है । यदि यह कहते हैं कि अज्ञान का स्वरूप अनिर्वचनीय है तो यह भी नहीं कह सकते हैं । जो अनादि है लाल (रजस्) शुक्ल (सत्व) कृष्ण (तमस्) स्वरूपा है । और जो अपने जैसे त्रिगुणात्मक अनन्त प्राणियों की सृष्टि करती है । प्रकृति और पुरुष इन दोनों को ही अनादि समझो । विद्या और अविद्या ये दोनों ही मेरे शरीर हैं । हे उद्धव शरीर धारियों के वास्ते ऐसा समझो, इत्यादि श्रुति स्मृति वचनों से अनादित्व निरूपण किये जाने के कारण और ज्ञान मूलक होने से अप्रामाणिकता होने पर और अनादित्व मानने पर तो अद्वैत भङ्ग होता है ब्रह्म और अज्ञान का चित् और जड स्वरूप होने से और अन्धकार प्रकाश जैसे परस्पर विरुद्ध होने से ज्ञान जनित ब्रह्म का संस्पर्श नहीं होता है ।

यदि ऐसा कहें कि ईश्वर कोई कार्य करने में या नहीं करने में एवं अन्य प्रकार

**ननु ईश्वरः कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुञ्च समर्थः तेन स्वसामर्थ्येनाघटितमपि घटयितुं शक्नोतीतिचेत् तत्र किम्प्रयोजनम् ? किं स्वयमेव ब्रह्म अविद्यया-स्वस्वरूपं तिरोधाय संसारित्वं भूत्वा नानादुःखानि चानुभूय स्वस्मिनज्ञत्वं जनयति पुनश्च मुक्तये वेदशास्त्रादिविहितैरुपायैः विविधक्लेशानुष्ठानैरभिमतं भोगं मोक्षं वा प्राप्य अनभिमतं संसारं वा प्राप्नोति इतिविचारस्तु न मनसस्तोषकरः। लूतातन्तुन्यायेन पुनर्ब्रह्मरूपेणावतिष्ठते इतिचेत् नहि कश्चिदनुन्मत्तः स्वेन सह स्वयमेकाकीविहरति । ब्रह्मणः अनेकाकारत्वे तु 'एकोऽहं बहुस्याम' इतिस्थितौ एकत्वज्ञानमव्याहतमेव । 'एकोऽहं बहुस्याम' इतिश्रुत्या ब्रह्मणः इच्छया प्राणिनामुत्पत्तिश्चेत् जीवानां प्राक्तनकर्माभावात् भोगमोक्षाभावः। लीलार्थत्वे तु**

से ही करने में समर्थ है। इसलिये वह अपने सामर्थ्य से अघटित कार्य कलाप को भी सम्भव बना सकता है। ऐसा कहने पर प्रश्न उठता है कि ऐसी घटना में प्रयोजन क्या है ? क्या स्वयं ही ब्रह्म अविद्या से स्वरूप को छिपाकर संसारी जीव बनकर नाना प्रकार के दुःखों को अनुभव करके स्वयं में ही स्वयं अज्ञानता को उत्पन्न करता है। और पुनः उस अज्ञानता से मुक्ति पाने के लिये वेद शास्त्र आदि के द्वारा बताये गये अनेक प्रकार के उपायों से और अनेक प्रकार के कष्ट पूर्ण अनुष्ठानों से अपने अभीष्ट भोग अथवा मोक्ष को प्राप्त करके और अनभिमत संसार (जन्म मरण) को प्राप्त करता है ? इसप्रकार का विचार तो मानसिक संतोष प्रदान करने वाला नहीं है।

यदि कहें कि जिसप्रकार मकड़ी स्वयं ही उपादान कारण बनकर जाल बनाकर स्वयं फँस जाती है, या मक्षि का आदि को फँसा कर निकल जाती है, इस न्याय से पुनः वह जीव ब्रह्म स्वरूप में अवस्थित हो जाता है ऐसा कहें तो यह उचित नहीं है। क्योंकि जो पागल नहीं है ऐसा कोई भी व्यक्ति स्वयं के साथ स्वयं ही अकेला भ्रमण नहीं करता है। यदि कहें कि ब्रह्म अनेक स्वरूपों वाला है। वह अपनी इच्छा से एक हूँ बहुत होजाऊँ। इस स्थिति में एकत्व ज्ञान तो अव्याहत ही है, इसमें कोई दोष नहीं है 'एकोऽहं बहुस्याम' इस श्रुति के द्वारा ब्रह्म के इच्छा से प्राणियों की उत्पत्ति होती है ऐसा मानें तो जीवात्माओं के पूर्व कालीन कर्म कलाप के अभाव होने से उनका भोग अथवा मोक्ष होना सम्भव नहीं होगा। यदि कहें कि लीला के लिये वह ऐसा करता है तो वही उन्मत्तत्व दोष होगा। यदि कहें कि अनादि कालीन अविद्या के कारण करता है तो अद्वैत सिद्धान्त भङ्ग होता है। यदि ब्रह्म की जीव रूपत्व की

उन्मत्तत्वदोषः । अविद्यायाः अनादित्वे अद्वैतभङ्गः । ब्रह्मणः जीवरूपत्वप्राप्तौ विकारित्वापत्तिः । सुखित्वदुःखित्वभेदैः वैषम्यनैर्घृण्यादिदोषाः इत्येवमादयः अद्वैतपक्षे बहवो दोषाः दृश्यन्ते । लक्षणया अभेद बोधघटनयाऽपि गौरवं मुख्यार्थबाधश्चेति तन्मतमसमीचीनमेव प्रतिभाति ।

श्रुतिसिद्धे विशिष्टाद्वैतसिद्धान्ते पृथिव्यां तिष्ठन् यस्य पृथिवी शरीरम्... योऽक्षरे सञ्चरन् यस्याक्षरस्य शरीरमित्यन्तमन्तर्यामिपरश्रुतयः सर्वावस्थावस्थितयोः चिदचितोः सर्वेश्वरश्रीरामशरीरत्वं तस्य च शरीरित्वं गमयन्ति । आकाशवत् सर्वगतश्चनित्यः...अजामेकाम्' इत्यादयश्चश्रुतयः चिदचिदीश्वराणांनित्यत्वं तन्निष्ठव्याप्यव्यापकत्वयोश्च नित्यत्वमुपपादयन्ति । ब्रह्मव्याप्यत्वेन चिदचितोरविनाभावत्वात् ।

प्राप्ति होती है तो विकारित्व दोष होने लगेगा। और सुखित्व दुःखित्व आदि भेद होने पर वैषभ्य और निर्दयता रूप दोष होगा। इत्यादि अद्वैतवाद पक्ष में बहुत से दोष देखे जाते हैं। यदि लक्षणावृत्ति के द्वारा अभेदत्व की योजना करते हैं तो गौरव होता है एवं मुख्यार्थ बोध की हानि होती है। इसलिये उनका सिद्धान्त समीचीन नहीं है यह प्रतीत होता है। इस विषय में विशेष चर्चा चिदात्ममीमांसा तत्त्वत्रयसिद्धि तत्त्वदीप वेदार्थचन्द्रिका प्रकाश-किरण प्रभृति अनेक ग्रन्थों में कर चुका हूँ अतः विशेषार्थी वहीं देखें।

वेद सिद्धान्त सिद्ध विशिष्टाद्वैत मत तो पृथिवी पर रहता हुआ जिसका पृथिवी शरीर है...जो अक्षर में संचरण करता हुआ जिसका अक्षर शरीर है, यहां तक की अन्तर्यामी प्रतिपादक श्रुतियां सभी परिस्थितियों में विद्यमान रहने वाले चित् एवं अचित् पदार्थों का सर्वेश्वर श्रीराम शरीरत्व है और उनका परेश श्रीरामजी शरीरी हैं इस अभिप्राय को बोध कराता है। आकाश के समान सभी में विद्यमान है एवं नित्य है 'अनादि एक' इत्यादि श्रुतियां चित् अचित् एवं ईश्वर का नित्यत्व प्रतिपादन करते हैं। और इनमें होने वाला व्याप्यत्व एवं व्यापकत्व का तथा नित्यत्व का साधन करती है। चित् और अचित् का ब्रह्म से व्याप्यत्व होने के कारण अविनाभाव सम्बन्ध होने से नित्य सम्बन्ध है।

जैसे गोत्व से अभिन्न गो पदार्थ होता है उसी तरह चित् अचित् स्वरूप श्रीरामजी का विशेषण है इसलिये उससे अभिन्न श्रीरामजी के होने से श्रीरामजी का

यथा गोत्वाभिन्नं गौर्भवति, तथैव सर्वस्य चिदचिदात्मकस्य वस्तुनः श्रीरामाभिन्नत्वात् श्रीरामस्य नित्यत्वं सर्वकारित्वं सर्वरूपित्वञ्च सिद्ध्यति। तदाहुः-सर्वं ह्येतद् ब्रह्मेति सदा रामोऽहमिति, प्रभृतिश्रुतयः । उक्तरीत्या सर्वपदप्रतिपादितस्य श्रीरामधर्मत्वेन श्रीरामविशेषणत्वादभेदः । ननु जीवगत गुणदोषाणां श्रीरामे ब्रह्मणि प्रसक्तिरिति तन्न, अत्रोच्यन्ते-

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते ।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मानोपलिप्यते ॥१॥

'आकाशवत् सर्वगतश्च नित्यः' इतिश्रुतिस्मृतिभिः तद्गुणदोषासंस्पर्शात्। इत्थं श्रीरामस्य सर्वव्यापित्वेन सर्वरूपित्वम् । एवं चिदचितोः श्रीरामा विनाभावात् परमार्थतः श्रीरामप्रकारत्वात् कार्यकारणयोरभेदाच्च श्रीराम एव कारणं कार्यञ्च । अत उक्तम् 'सर्ववाच्यस्य वाचकः' इति 'विश्वरूपस्य ते राम...' इत्थं चिदचिद्विशिष्टानां सर्वेषां शब्दानां सामानाधिकरण्यं सर्वशब्दब्रह्मशब्दयोः

नित्यत्व सर्वकारित्व और सर्वरूपित्व सिद्ध होता है । यही कहते हैं-क्योंकि यह सवकुछ ब्रह्ममय है' मैं श्रीरामात्मक हूँ' इत्यादि श्रुतियां । उक्त प्रकार से सर्वपद के द्वारा निरूपित किया गया विषय का श्रीरामजी का धर्म होने से एवं श्रीरामजी का विशेषण होने से अभेद है । अब प्रश्न उठता है कि जीव और ब्रह्म में यदि भेद नहीं है तो जीव में होने वाले गुण दोषों का श्रीराम ब्रह्म में भी प्रसक्ति होगी ? तो यह नहीं कह सकते क्योंकि इस विषय में कहा जाता है-

जिस तरह समस्त पदार्थों में व्याप्त सूक्ष्म होने के कारण आकाश वस्तुओं के गुण दोषों से उपलिप्त नहीं होता है उसीप्रकार सभी शरीरों में व्याप्त परमात्मा जीवों के गुण दोषों से उपलिप्त नहीं होता है । श्रुति भी कहती है-परमात्मा सर्वगत है और नित्य है । इसतरह के श्रुति स्मृति वचनों से जीवगत गुण दोषों का परमात्मा से स्पर्श नहीं होता है यह सिद्ध होता है । इसतरह श्रीरामजी का सर्वव्यापी होने से सर्वरूपित्व भी नियत है । इसप्रकार चित् एवं अचित् पदार्थ का श्रीरामजी के साथ अविनाभाव सम्बन्ध होने के कारण वास्तविक रूपमें श्रीरामजी का विशेषण होने से और कार्य कारण का अभेद सम्बन्ध होने से श्रीरामजी ही कार्य और कारण हैं । इसलिये कहा गया है समस्त वाच्य पदार्थ का श्रीराम वाचक हैं । हे राम आप सर्वरूप का सभी शब्न वाचक हैं । इसप्रकार चित् तथा अचित् विशिष्ट श्रीरामजी में सभी शब्दों का

अहं शब्दश्रीरामशब्दयोश्च एकार्थनिष्ठत्वं प्रदर्श्यते । 'ब्रह्मोपादानं जगत्' इतिवादे विशिष्टस्य उपादानत्वम् जगदुपादानत्वेऽपि च चिदचितोः ब्रह्मणश्च भोक्तृत्व भोग्यत्वनियन्तृत्वादिभेदेन चित्रपटे तन्तुस्वभावसंकरत्वमिव स्वस्वरूपस्वभावा शङ्करत्वम् । तदुक्तम्-भोक्ताभोग्यं प्रेरितारं च मत्वा, पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा, जुष्टस्तेनामृतत्वमेति, अत्रात्मपरमात्मपृथग् भावेनामृतत्वश्रवणात् भेदस्य पारमार्थिकत्वम् ।

द्वासुपर्णा सयुजा सखायौ समाने वृक्षे परिषस्वजाते ।
तेयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति ॥

अस्मान् मायी सृजते विश्वमेतत् तस्मिंश्चान्यो मायया सन्निरुद्धः । मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरमिति । सकारणं करणाधिपाधिपो, न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः । प्रधानक्षेत्रज्ञपतिगुर्णेशः । ज्ञाज्ञौद्वावजावीशानीशौ । नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानां एको बहुनां यो विदधाति कामान् अजामेकां समान विभक्तिकत्व सर्वशब्द और ब्रह्म शब्द का अहं शब्द और श्रीराम शब्द का एकार्थ निष्ठ होना प्रदर्शित किया जाता है ।

ब्रह्म है उपादान कारण जिसका ऐसा संसार इस पक्षमें विशिष्ट का उपादानत्व है। और जगत् है उपादान जिसका इस पक्ष में भी चित् अचित् और ब्रह्म का भोक्तृत्व भोग्यत्व नियामकत्व आदि भेद से उपादानत्व है जिसप्रकार चितकवरा वस्त्र में सूतों का अनेक रंग होने पर भी तन्तुओं का आपस में स्वभाव संकरत्व नहीं होता है। स्व स्वरूप एवं स्व स्वभाव का असांकर्य ही रहता है। ऐसा ही कहा गया है-भोक्ता भोग्य एवं प्रेरक को मानकर उनसे सेवित होकर अमृतत्व को प्राप्त करता है। जीव का अलग से अमृतत्व कहे जाने से जीवात्मा एवं परमात्मा में पारमार्थिक भेद ही है। दो सुन्दर पक्ष वाले पक्षी एक दूसरे के सहयोगी जीवात्मा और परमात्मा एक ही संसार रूपी वृक्ष पर आसक्त हैं। उन दोनों में से एक जीवात्मा आपात मधुर संसाररूपी पिप्पल का स्वादिष्ट फल भोगता है और परमात्मा नहीं भोग करता हुआ सर्वतोभावेन परमानन्द विनिर्मग्न रहता है। इससे 'मायाधीश' इस संसार की रचना करता है। और इसमें जीवात्मा भगवान् की माया के द्वारा सम्यक् प्रकार से निरुद्ध होता है। प्रकृति को माया समझो और परमात्मा सर्वेश्वर श्रीरामजी को मायी समझो। जो कारण सहित समस्त अन्तरिन्द्रिय एवं बहिरिन्द्रिय का स्वामी है, और इस ब्रह्म

लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजां जनयन्तीं स्वरूपाम् । अजोह्येकोजुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां मुक्तभोगामजोन्यः । गौरनाद्यन्तवती सा जनयित्रीभूतभावनी समानेवृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशयाशोचतिमुह्यमानोजुष्टं यदापश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमेति वीतशोकः' एवमाध्याः श्रुतयः

भूमिरापोऽनलं वायुः खं मनोबुद्धिरेव च ।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥
ममयोनिर्महद् ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम् ।
सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ॥
तासां ब्रह्म महद् योनिरहं बीजप्रदः पिता ।
क्षरसर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।

एवमादिश्रुतिस्मृतिभिः चिदचिद्विशिष्टत्वम् । अचिद् जीवगुणदोषाश्च परमात्मानं न स्पृशन्तीति प्रमाणयन्ति । निर्गुणत्वेन तु परमात्मनि हेयगुणानाम भावः । तदाहुः श्रीआनन्दभाष्यकाराः "नच वाव्यं 'निर्गुणं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम्'' ( श्वे. ६।१९ ) इत्यादिभिर्वेदवचनैर्ब्रह्मणो निर्गुणत्वे तस्य मानसव्यापाररूपज्ञानसाध्यत्वादन्यविधया भक्तेरुपायत्वासम्भवादिति । निर्गता का कोई उत्पन्न करनेवाला नहीं है । और नहीं उसका कोई अधिपति है । प्रधान क्षेत्रज्ञाधिपति एवं गुणों का स्वामी । जडचेतन दो अनादि हैं जो समर्थ असमर्थ हैं। जो नित्यों में नित्य एवं चेतनता में एक होते हुए भी अनन्त की इच्छाओं को पूर्ण करता है ।

सत्व रजस् एवं तमो गुणात्मिका अनादि माया एक है । जो समान रूपवाली अनन्त प्रजा की सृष्टि करती है । एक अनादि जीव है जो सांसारिक भोग करता हुआ संसार में आसक्त रहकर सुखदुःख भोग करता है । अन्य मुक्त भोग इस माया का परित्याग करता है । अनादित्व अनन्तत्व गुणवती वाणीभूत मानवी है और सृष्टिकारिणी है । एक ही आश्रय में पुरुष लीन है असामर्थ्य के कारण मोहित होकर शोक का अनुभव करता है । जब अनुराग पूर्वक सेवित इस संसार के नियन्ता परमात्मा को देखता है तो उनकी महिमा को प्राप्त कर शोक मुक्त हो जाता है । इत्यादि श्रुतियां एवं-

भूमि जल अग्नि वायु आकाश मन और बुद्धि तथा अहंकार ये मेरी आठ

**निकृष्टाः सत्वादयः प्राकृता गुणा यस्मात्तन्निर्गुणमिति व्युत्पत्तेर्निकृष्टगुणराहित्यमेव निर्गुणत्वम् । तथैव च ''सत्वादयो न सन्तीशे यत्र च प्राकृता गुणाः । स शुद्धः सर्वशुद्धेभ्यः पुमानाद्यः प्रसीदतु ॥ यो सौ निर्गुणः प्रोक्तः शास्त्रेषु जगदीश्वरः । प्राकृतैर्हेयसत्वाद्यैर्गुणैर्हीनत्वमुच्यते ॥ (वि. पु.) इत्यादौ प्रतिपादितत्वात् प्राकृतसत्वादिगुणनिषिद्धे सति ब्रह्मणो दिव्यगुणाश्रयत्वसिद्धेः । तादृशदिव्य गुणानाञ्च 'परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकीज्ञानबलक्रिया च' (श्वे. ६।८) इत्यादौ स्वाभाविकत्वाभिधानात्प्राकृतहेयगुणरहितत्वेन निर्गुणत्वं दिव्यगुणवत्वेन च सगुणत्वमित्युभयथैकस्यैव ब्रह्मणोनिर्देश इति न किञ्चिदनुपपन्नम् । किञ्च श्रीरामस्य जगत्कारणत्ववादिन्यः काश्चनश्रुतयः स्फुटं कारणरूपस्य तस्य साकारत्वं सगुणत्वमक्षरब्रह्मणो जगत्कारणत्ववादिन्यश्च**

प्रकारों से विभाजित प्रकृति है। मेरी विशाल ब्रह्म स्वरूप योनि है उसमें मैं गर्भधारण कराता हूँ। हे अर्जुन तत्पश्चात् सभी प्राणियों की उत्पत्ति होती है। उन सभी की महान् योनि ब्रह्म है। और उसमें बीज प्रदान करने वाला पिता मैं हूँ। संसार के सभी प्राणी विनाश स्वभाव वाले हैं, निहार के समान अविचल रहने वाला अक्षर है। जिसे संसार में परमात्मा शब्द से कहा जाता है' इत्यादि श्रुति स्मृति वचनों से परब्रह्म श्रीरामजी का चित् अचित् विशिष्टत्व प्रमाणित है। तथा अचित् एवं जीवात्मा में होने वाले गुण दोष परमात्मा को स्पर्श नहीं करते हैं इस विषय को प्रमाणित करते हैं। निर्गुण होने का तात्पर्य यह है कि परमात्मा में वर्जनीय गुणों का अभाव है। प्रकृत विषय में आनन्दभाष्यकारजी निम्नप्रकार से निरूपण करते हैं-

'नहीं कहो कि 'निर्गुणं निष्क्रियम्' इत्यादिक वेद वचन से तो ब्रह्म में निर्गुणत्व का प्रतिपादन किया गया है। वह तो मानस व्यापाररूप ज्ञान साध्य है। तब अव्यभिचरित रूपसे भक्ति में मोक्ष कारणता की सिद्धि तो नहीं होती है यह कहना ठीक नहीं है। क्योंकि निर्गुण शब्द का गुणात्यन्ताभाव रूप गुण का सामान्याभाव रूप अर्थ नहीं है। किन्तु प्राकृतिक जो सत्त्वादिक गुण हैं तादृश गुण का निराकरण निर्गुण पद करता है। यहां भाष्यकार कहते हैं निर्गत है निकृष्ट प्राकृतिक गुण जिसमें उसको निर्गुण कहते हैं न तु गुणात्यन्ताभाववान् को निर्गुण कहते हैं। इसीप्रकार से सत्त्वादयोनसन्तीत्यादि । जिस परमेश्वर में प्राकृतिक सत्त्वादिक गुण ज्ञात नहीं हैं एतादृश सर्व शुद्धों में भी शुद्ध आदि पुरुष हैं वे प्रसन्न हों तथा शास्त्र में जो निर्गुण

**काश्चनश्रुतयस्तस्य निराकारत्वं निर्गुणत्वञ्चाहुरित्युभयत्राविरोधार्थं स एवार्थ स्तान्त्रिकैरङ्गीकर्त्तव्यः । अन्यथा परस्परविरोधे व्याहतत्वादप्रामाण्यमेव निष्पद्येत । अतएव भगवता वृत्तिकारेण 'युक्तं तद् गुणकोपासनादिति ( बो.वृ. ) कथयता सगुणस्यैवोपास्यत्वं स्थिरीकृतम् । न च विनिगमनाविरहान्निराकारनिर्गुणवादिन्य एव श्रुतयः सगुणब्रह्मरचितानिसृष्ट्यादीन्यनूद्य तेषाञ्च निर्गुणे निराकारे ब्रह्मणि रज्जौकल्पिताहिरिव कल्पितत्वेन मिथ्यात्वमवगमयन्तीति वाच्यम् । आरोपवाद स्य प्रागेवश्रुतिस्मृतियुक्त्यादिभिर्निराकृतत्वात् । पूर्वोदीरितार्थ एव सामञ्जस्यं कल्पितत्वकल्पनाया अनुपपत्तेश्च । तस्मात्प्राकृतगुणाकारयोरसत्वेन निर्गुणत्वं निकारात्वं दिव्यस्वासाधारणगुणाकारवत्त्वेन च सगुणत्वं साकारत्वं चैकस्यैव**
पुरुष कहा गया है वह प्राकृतिक हेय सत्त्वादिक गुण हीन है। एतादृश हेय सत्त्वादिक गुण हीनत्व का ही नाम निर्गुण कहा जाता है। इत्यादि रूपसे प्रतिपादन किया गया है। इसप्रकार प्राकृतिक सत्त्वादि गुण का निषेध होने पर, अर्थात् श्रीरामात्मक ब्रह्म में दिव्यानेक कल्याण गुणाश्रयत्व की सिद्धि होती है।

परास्येत्यादिं इस परमेश्वर में अत्यन्त विलक्षण अनेक प्रकारक स्वाभाविक शक्ति है। तथा स्वाभाविक ज्ञान बलादिक है। इत्यादि स्थल में तादृश स्वाभाविक अनेक दिव्य गुण का कथन करने से प्राकृत गुण रहितत्व होने से निर्गुणत्व है। तथा दिव्यानेक हेय प्रत्यनीक गुणवान् होने से सगुणत्व है। अतः उभय रूपसे एक ही ब्रह्म का निर्देश होने से कोई भी अनुपपत्ति नहीं होती है। किंचेत्यादि सर्वेश्वर श्रीरामजी में जगत् कारणता प्रतिपादन करने वाली कोई श्रुति, अत्यन्त स्फुट रूपसे कारणरूप भगवान् में साकारत्व सगुणत्व का प्रतिपादन करती है। तथा अक्षर ब्रह्म में जगत् कारणता का प्रतिपादन करने वाली कोई-कोई श्रुति परमेश्वर में निराकारत्व निर्गुणत्व का प्रतिपादन करती है तो इन दोनों श्रुतियों में परस्पर कोई विरोध नहीं हो इसलिये पूर्वोक्त अर्थ को ही शास्त्रकारों ने स्वीकार किया है। अन्यथा यदि इसप्रकार से समन्वय श्रुतियों का न किया जाय तब तो परस्पर इन सब श्रुतियों में विरोध होने से व्याहतार्थक होने से अप्रामाणिकत्व हो जायगा। और स्वतः प्रमाणभूत वेदों को अप्रामाणिकत्व तो किसी को भी इष्ट नहीं है तस्मात् पूर्वोक्त अर्थ ही ठीक है।

अत एव भगवान् वृत्तिकार श्रीपुरुषोत्तमाचार्यजी बोधायन ने 'युक्तं तद्गुणकोपा सनात्' इसप्रकार से कहते हुये सगुण ब्रह्म में उपास्यत्व है ऐसा स्थिर किया हैं। नहीं

ब्रह्मण उपपन्नतरमिति न कश्चिद्विरोधः" (आनन्दभाष्यम् १।१।२) सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्मेति ज्ञानरूपत्वं ब्रह्मणोनिरूपयन्ति। चिदचिदीश्वराणामनादित्वम्। न कर्मणामनादित्वादिति जीवकर्मणामनादित्वात् तेषां कर्मवैचित्र्यात् विचित्र सृष्ट्यादिकं करोति भोगं मोक्षं चेश्वरो ददाति। तस्मान्न वैषम्यनैर्घृण्यादिदोषावस रस्तेषां जीवकर्मसापेक्षत्वात् 'विकारं च रामोदर्याब्धिस्तथात्वे दयाशून्यतां पक्ष पातं च नैति। प्रकारेविकारस्तथा चित्रसृष्टौ च हेतुर्यतः प्राणिनां प्राच्यकर्म' इत्याचार्योक्तेः। चिदचिदीश्वराणां जीवकर्मणां चानादित्वेन सृष्ट्यादीनामप्य-

कहो कि विनिगमना विरह से निराकार निर्गुणत्व का प्रतिपादन करनेवाली श्रुति 'नेति नेति' इत्यादि सगुण ब्रह्म रचित सर्ग का अनुवाद करके उन सव पदार्थों को निर्गुण निराकार ब्रह्म में कल्पितत्व रूपसे मिथ्यात्व का प्रतिपादन करती है। शुक्तिका में रजत के समान अथवा रज्जू में सर्प के समान। अर्थात् जिस तरह भ्रम द्वारा स्थित रजत सर्प प्रतियोगी का 'नेदं रजतम्' इस बाध्य बुद्धि से निराकरण करके रजत सर्पादिक में स्वात्यन्ताभाव समानाधिकरणतया प्रतीयमानत्व रूप मिथ्यात्व को समझता है। उसी तरह सर्ग प्रतिपादक श्रुति से प्रसिद्ध जगत् रूप प्रतियोगी के अभाव का प्रतिपादन करती हुई 'नेति नेति' इत्यादि वेदान्त वाक्य ब्रह्म में सर्गाभाव का कथन करता हुआ अर्थात् आरोपित पदार्थों में मिथ्यात्व का समर्थन करती है। अतः सगुण साकारत्व प्रतिपादक वाच्य केवल निषेध प्रतियोगी का उपस्थापक है, नतु तादृश प्रतियोगी में सत्यता प्रतिपादक है, यह कहना ठीक नहीं है। क्योंकि इस आरोपवाद का श्रुति स्मृति और युक्तियों से पूर्व में ही निराकरण कर दिया गया है। अतः आरोपवाद मूलक प्रश्न का पुनरावर्तन ठीक नहीं है। पूर्वोक्त प्रकार से जब सबका समाधान हो सकता है तब जगत् को कल्पित है, ऐसा कहना ठीक नहीं है। तस्मात् प्राकृत गुण, तदाकारता का अभाव होने से निर्गुणत्व तथा निराकारत्व है और हेय प्रत्यनीक गुणवत्वेन सगुणत्व है तथा साकारत्व है। इसतरह एक ही ब्रह्म में उभय प्रकारत्व उपपन्न होता है इसमें कोई भी विरोध नहीं है। ज्ञान स्वरूप एवं अनन्त ब्रह्म है यह वचन ब्रह्म का ज्ञान स्वरूपत्व प्रमाणित करता है। और चित् अचित् एवं परमात्मा का अनादित्व है। न कर्मणामनादित्वात् आदि वचनों के अनुसार जीव के कर्मों का अनादित्व है। और उन जीवों के कर्मों का वैचित्र्य के कारण परमेश्वर श्रीरामजी उत्तम मध्य एवं अधम भेद भिन्न विचित्र सृष्टि को करते हैं। तथा जीवात्माओं को उनके कर्मानुसार भोग एवं

नादित्वमेव । अनाद्यज्ञानेन जीवबन्धः, भगवद् भजनजन्यज्ञानेनाज्ञाननिवृत्तिः । ततः स्वस्वरूपावाप्तिः ततश्च पराभक्तिः । तदुक्तम् गीतायाम्-

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः ।
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति भारत ॥

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मा मुपयन्ति ते ॥

ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः, स्वकर्मणा तमभ्यर्चसिद्धि विन्दति मानवः । श्रीमद्रामायणेऽपि-

वद्धाञ्जलिपुटं दीनं याचन्तं शरणागतम् ।
न हन्यादानृशंस्यार्थमपि शत्रुं परन्तप? ॥

कथञ्चिदुपकारेण कृतेनैकेन तुष्यति ।
न स्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्मवत्तया ॥

मोक्ष को प्रदान करते हैं । जीवों को अपने कर्मानुसार फल मिलने के कारण परमात्मा में वैषम्य एवं निर्दयता आदि दोष नहीं होता है नहीं दोष का अवसर ही है । क्योंकि सुख दुःख आदि जीवों के कर्मों की अपेक्षा रखकर होते हैं अतः कर्म सापेक्षता के कारण वैषम्य और नैर्घृण्य आदि दोष नहीं होते हैं । चित् अचित् और ईश्वर का तथा जीवात्माओं के कर्म का अनादित्व होने के कारण सृष्टि आदि का भी अनादित्व तथा अनन्तत्व है । अनादि अज्ञान (अविद्या) के द्वारा जीवात्मा जन्म मरणादि परम्परा में बन्धा रहता है । भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के भजन आदि से उत्पन्न ज्ञान से अज्ञान का निवारण होता है । तत्पश्चात् जीवात्माओं को स्वस्वरूप की प्राप्ति होती है । स्वस्वरूपावाप्ति के पश्चात् पराभक्ति होती है । यही विषय गीता में कहा गया है-जिन प्राणियों का आत्मा में होनेवाला अज्ञान ज्ञान के द्वारा नष्ट कर दिया गया है । हे अर्जुन उन अज्ञान विहीन पुरुषों का ज्ञान आदित्य मण्डल के समान दिव्य प्रकाश को प्रदान करता है । उन सदैव योग युक्त रहनेवाले प्राणियों का जो परमानुराग पूर्वक भजन कर रहे हैं उनको बुद्धि योग मैं (परमात्मा) प्रदान करता हूँ जिससे वे मुझको प्राप्तकर लेते हैं । विना ज्ञान प्राप्ति के मुक्ति नहीं होती है । अपने शास्त्र विहित कर्मों के द्वारा उन परमात्मा की उपासना करके मानव जीवन की सफलता को प्राप्त करता है । और श्रीमद्रामायण में भी कहा है-जो अपने दोनों हाथों को जोडकर दैन्यभाव युक्त मेरी

**'रामो द्विर्नाभिभाषते' इत्थं श्रुतिस्मृतिभिः सर्वस्य ब्रह्मशरीरत्वेन तद्भिन्नसत्ता कत्वाभावात् स्वशरीरयोगक्षेमकारीश्रीराम ब्रह्म एव । स अवश्यमेव मम योगक्षेमं करिष्यतीति दृढविश्वासतया निर्भयः सन् स्वात्मपरमात्मयाथातथ्यानुशी लनपुरस्सरं श्रीराममन्त्रोपासनापरायणोभवेत् ।।५।।**

शरणागति की याचना करता है ऐसे व्यक्ति को अनृशंसता के लिये उसकी हत्या नहीं करनी चाहिये। जिस किसी भी प्रकार से किये गये एक भी सत्कर्म से भगवान् सन्तुष्ट होते हैं। आत्मीयता के कारण स्वयं के द्वारा किये गये सैकडों अपकारों को भी याद नहीं करते हैं। सर्वेश्वर श्रीरामजी दो वार नहीं बोलते हैं अर्थात् वे असत्य भाषण नहीं करते हैं जो बोलते हैं उसे पूर्ण करते हैं। इसप्रकार श्रुति स्मृति से सभी को ब्रह्म का शरीर होने के कारण ब्रह्म से अतिरिक्त सत्तावान् का अभाव होने के कारण अपने (हमारे) शरीर का योगक्षेम करनेवाले श्रीराम ब्रह्म ही हैं। वे अवश्य ही हमारा उद्धार करेंगे। यह दृढ विश्वास होने के कारण निर्भय होकर अपना एवं परमात्मा के स्वरूप की वास्तविकता का अनुशीलन पूर्वक भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के मन्त्र की उपासना में तत्पर हो जाय ।।५।।

**जागरितस्थानो बहिः प्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशति मुखः ।**
**स्थूलभुग् वैश्वानरः प्रथमः पादः ।।६।।**

**जागरितम् स्थानं यस्य स्वात्मव्यतिरिक्तविषये बहिः प्रज्ञा यस्य सः, मस्तकादीनि सप्त अंगानि यस्य, शिरः चक्षुः आदित्यः, अग्निः मुखम् प्राणोवायुः देहमध्यम् आकाशः वस्तिः समुद्रः, पृथिवीपादौ इतिसप्तसुलोकेषु अङ्गानि यस्य। अथवा चक्षुषीश्रौत्रेरसनं स्पर्शनं घ्राणमिति सप्ताङ्गम् । एकोनविंशतिमुखः पञ्चज्ञानेन्द्रियाणि पञ्चकर्मेन्द्रियाणि पञ्चप्राणः, चत्वारि अन्तःकरणानि इतिसाधिदैवतानि एकोनविंशतिः मुख्यानि यस्य सः । एभिः उपलब्धिस्थानैः स्थूलान् विषयान् स्वात्मसात् करोति विश्वेषां नराणां नेतास्थूलभुग् वैश्वानरः प्रथमः पादः ।।६।।**

अपनी आत्मा से भिन्न विषय में बुद्धि जिसकी है उसे बहिः प्रज्ञ कहते हैं। जागरण युक्त जिसका स्थान है। मस्तक आदि सात जिसका अङ्ग है-शिर चक्षु मुख प्राण मध्य वस्ति और उससे भिन्न भाग ये सात जिसके अङ्ग हैं। द्यौः आकाश शिर-

चक्षु आदित्य अग्नि मुख प्राण वायु देह मध्य आकाश वस्ति समुद्र और पृथिवी चरण हैं। इन सात लोकों में जिसके अंग हैं। अथवा दो आखें दो कान जिह्वा त्वचा और नाक ये सात अङ्ग जिसका है वह सप्ताङ्ग है। उन्नीस जिसके मुख हैं। पांच ज्ञानेन्द्रिय पांचकर्मेन्द्रिय पांच प्राण और चार अन्तःकरण ये उन्नीस अपने अधिदेवताओं के सहित जिसके मुख है। इन सभी के माध्यम से स्थूल भोगविषयों को वह आत्मसात् करता है। सभी मानवों को लेजाने वाला होने से उसे वैश्वानर कहते हैं यह प्रथम चरण हुआ ॥६॥

**स्वप्नस्थानोऽन्तः प्रज्ञः सप्ताङ्गः एको न विंशति मुखः ।**
**प्रविविक्तभुक् तैजसौ द्वितीयः पादः ॥७॥**

**प्रथमः जागरितस्थानः स्थूलभुग् वैश्वानरः उक्तः अथ स्वप्नस्थानः तैजसः उच्यते । अस्य तैजसस्य स्वप्नं स्थानमस्ति, अतः अन्तः प्रज्ञः अन्तः एव प्रज्ञा यस्यास्ति सः । जाग्रतः प्रज्ञा एव स्वप्नावस्थायां बाह्यविषयाः मनसि स्यन्दमानाः तथाभूतं संस्कारं मनसि धारयतीतिभावः । साधनानपेक्षयाऽपि अविद्याकर्मभ्यां प्रेरितः सन् जाग्रदवस्था इव भवति । मनसः संस्कारानुरूपामन्तर्लब्धप्रज्ञो भवति। स च सप्ताङ्गः एकोनविंशतिमुखः । वासनामनुसृत्याङ्गमुखेषु पूर्वव्याख्यातेषु प्रतीयमानत्वात् । प्रकर्षेण विविक्तान् वासनामयानेव भोगान् केवलं भुनक्ति । अतः प्रविविक्तभुगुच्यते । जाग्रतसुषुप्तीस्वतेजसा गच्छतित्यतः तैजसः । स द्वितीयः पादः ॥७॥**

प्रथम पाद जागरित स्थान स्थूल पदार्थों का भोग करने वाला वैश्वानर पहले कहा गया है। इसके वाद स्वप्नावस्था तैजस कहा जाता है। इस तैजस का स्वप्न अवस्था स्थान है। अतः इसे अन्तः प्रज्ञ कहा जाता है। भीतर प्रज्ञा अर्थात् बुद्धि है जिसकी वह जाग्रत अवस्था की बुद्धि ही स्वप्न अवस्था में बाह्य भोग विषय मनमें प्रवाहमान (गतिशील) रहते हैं। जाग्रत कालीन संस्कार को मनमें धारण करता है यह आशय है। साधनभूत इन्द्रिय विषय आदि साधनों की विना अपेक्षा किये ही अविद्या और कर्म से प्रेरित होकर जैसे जाग्रत अवस्था में भोग करते हैं उसी तरह स्वप्न अवस्था में भोग करते हैं। और वह पूर्ववत् सात अङ्गों वाला और उन्नीस मुखों वाला होता है। अङ्ग और मुख का भेद प्रभेद पूर्व में विवेचित हो चुका है। मनके संस्कार

के अनुरूप उसमें भीतर ही बुद्धि प्राप्त हो जाती है। पूर्वकालीन संस्कार कारण का अनुसरण करके पूर्व वर्णित उन्नीस मुखों में प्रतीत होता है। अतिशय मात्रा में पृथक् कृत संस्कारमय भोगों को ही केवल भोगता है इसलिये उसे प्रविविक्त भुक् कहा जाता है। जाग्रत और सुषुप्ति ये दोनों ही अपने प्रभाव से इन वस्तुओं को उपलब्ध कराते हैं इसलिये इसे तैजस कहते हैं, यह द्वितीय चरण हुआ ॥७॥

**यत्र सुप्तो न कञ्चन कामं कामयते ।**
**न कञ्चन स्वप्नं पश्यति तत् सुषुप्तम् ॥**
**सुषुप्तस्थान एकीभूतः प्रज्ञानघन एव, आनन्दमयो**
**ह्यानन्दभुक् । चेतोमुखः प्राज्ञः तृतीयः पादः ॥८॥**

यस्यामवस्थायां अतिनिद्रितः (सुषुप्तः) पुरुषः कमपि कामविषयं आसक्तबुद्ध्यानाभिलषति, नच कमपि स्वप्नं अवलोकयति वासनामयं कमपि भोगविषयं न चिन्तयति, तत् सुषुप्तस्थानमभिधीयते । अत्रावस्थायां विद्यमा नमपि सप्ताङ्गमेकोनविंशतिमुखं च पृथङ् न विभाव्यते अतः एकीभूत उच्यते । जाग्रत्स्वप्नावस्थयोः बाह्यन्तरिन्द्रियवृत्तिमाध्यमेन विषया अवभासन्ते भुज्यन्ते च सुषुप्तावस्थायां तु विषयाकारेणात्मवृत्तयः वृक्षे विहङ्गम इव लीनाः जायन्ते । केवलं प्रज्ञानघनत्वेन भासन्ते । तदानीं दुःखवीजस्य वर्तमानत्वेऽपि तदनुभवद्वार भूतानां वहिरिन्द्रियान्तरिन्द्रियाणां लयात् सुखदुःखादिप्रत्यक्षाभावादानन्दप्राय एव भवति अतः आनन्दमयः । पूर्ववद् भोगोभवति अतः आनन्दभुक् । प्रज्ञप्तिमात्रस्य चेतः प्रतिद्वारीभूतत्वात् चेतोमुखः । प्रज्ञप्तिमात्रस्यासाधारणं रूपमतः प्राज्ञः, पूर्वा वस्थयोर्विशिष्टं ज्ञानं भाति, अत्र तु नातः प्राज्ञतन्नामक तृतीयः पादः भवति ॥८॥

अत्यन्त गाढ निद्रा में लीन पुरुष सुषुप्त कहा जाता है। इस अवस्था में वर्तमान पुरुष किसी भी अभिलषित विषय को आसक्त भावना से नहीं चाहता है। नहीं किसी भी प्रकार के स्वरूप को देखता है। अर्थात् पूर्व कालीन संस्कारमय किसी भोग विषय का अनुशीलन नहीं करता है। यही अवस्था सुषुप्त अवस्था कही जाती है। इस सुषुप्त अवस्था में विद्यमान भोग विषयों को भी, सात अङ्ग एवं उन्नीस मुखों के होने पर भी अलग से अनुभूत नहीं होते हैं। इसलिये इन्हें एकीभूत कहा जाता है। जाग्रत और स्वप्न अवस्थाओं में बाह्येन्द्रिय और अन्तरिन्द्रिय के माध्यम से भोग विषय

अनुभूत किये जाते हैं और भुक्त होते हैं। लेकिन सुषुप्तावस्था में तो विषय के स्वरूप में आत्मा की वृत्तियां जिसप्रकार प्रकाशादि के रहने पर पक्षीगण दिखाई देते हैं, किन्तु अन्धकार होने पर वे उस अन्धकार में लीन हो जाते हैं उसीप्रकार ये लीन हो जाते हैं इसलिये केवल प्रज्ञानघन के ही स्वरूप में प्रतीत होते हैं। उस समय सुषुप्तावस्था में सुख दुःख आदि के वीज वर्तमान होने पर भी उन विषयों के अनुभव का द्वार बने हुए बहिरिन्द्रिय और अन्तरिन्द्रियों का लय हो जाने के कारण सुख दुःख आदि का प्रत्यक्ष नहीं होता है। केवल आनन्द बहुल रहता है, अतः आनन्दमय कहा जाता है। पूर्ववत् भोग होता है इसलिये आनन्द भुक् कहते हैं। प्रज्ञप्ति मात्र का चित्र के प्रति द्वार नहीं होते हुए भी अनुभव का माध्यम होने से इसे चेतोमुख कहा जाता है। प्रज्ञप्ति मात्र का असाधारण स्वरूप होता है इसलिये इसे प्राज्ञ कहते हैं। जाग्रत एवं स्वप्न अवस्थाओं में विशिष्ट ज्ञान होता है। सुषुप्ति अवस्था में तो नहीं होता है। अतः प्राज्ञ नामकरण करते हैं यह प्राज्ञ नामक तृतीय पाद हुआ ॥८॥

**एष सर्वेश्वरः सर्वज्ञ एषोन्तर्यामी, एष योनिः सर्वस्य प्रभवाप्ययौ हि भूतानां न बहिप्रज्ञं नान्तः प्रज्ञं नोभयतः प्रज्ञं न प्रज्ञं नाप्रज्ञं प्रज्ञानघनमदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्य मेकात्मप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते ॥९॥**

**सर्वेश्वरत्वेन सर्वज्ञत्वेन च हेतुना एष अन्तर्यामीति, स्वशरीरेन्द्रियाणा मन्तर्नियामकः। तस्यां स्थितौ पदार्थान्तरनियामकत्वासिद्धेः, अयं न केवलमन्तरनियामक अपि तु स्वकर्मद्वारा तेषां जनकोऽपि अत उच्यते एष योनिरिति। ब्रह्मादिस्थावरान्तानां सर्वेषां जीवानां स्वस्वकर्मद्वारा उत्तम मध्यमाधमरूपेण जनकः तद्भोगावसाने च संहारकोऽपि प्रभवाप्ययौ हि भूता-**

सर्वेश्वर तथा सर्वज्ञ होने के कारण यह अन्तर्यामी है, अपने शरीर और इन्द्रियों का आन्तरिक नियमन कर्ता है। उस परिस्थिति में अन्य पदार्थों का नियमन कर्तृत्व सिद्ध नहीं होने के कारण, यह केवल अन्तः नियामक ही नहीं है अपितु अपने कर्मों के द्वारा उन शरीरेन्द्रिय आदि का उत्पादक भी है। ब्रह्मा से प्रारम्भ कर स्थावर पर्यन्त समस्त जीव समुदाय का अपने अपने सत् असत् कर्मों के द्वारा उत्तम मध्यम एवं अधम योनि प्राप्ति के स्वरूप में यह उन उच्च नीच एवं मध्यम योनियों के शरीरों

नामिति, प्रभवत्वेन योनिः, तेन कस्यापि जीवस्य इत्थमवस्थात्रयवन्तं प्रकृति संश्लिष्टं स्वस्वरूपं दर्शयित्वा तद्विविक्तं स्वरूपं दर्शयन्नाह नबहिप्रज्ञमिति विश्वसाक्षिणि प्रत्यगात्मविषयकबाह्यविषयव्यापाराभावात् जाग्रदवस्था निषिध्यते । तर्हि मनोव्यापारस्यावश्यकत्वात् अन्तः प्रज्ञत्वं स्यादिति तदपि निषिध्यते नान्तः प्रज्ञमिति । इत्थं तैजससाक्षिणः स्वप्नावस्था वार्यते । उभयत्र निषेधेऽन्तरालव्यापारे प्राप्तेतन्निषेधायाह नोभयतः प्रज्ञमिति । जाग्रत् स्वप्नयोरन्तराले उभयत्र युगपत् प्रज्ञानार्थं व्यापारे प्राप्ते तन्निषेधायाह न प्रज्ञमिति । सर्वतोभावेन मनोव्यापारप्रतिषेधे प्राप्ते अव्यापृतं मनः समवतिष्ठते इति तन्निषेधति ना प्रज्ञमिति । ततः अस्साक्षिके सुषुप्ते प्राप्ते निषेधाय कथयति न प्रज्ञानघनमिति । इत्थं षड्भिः प्रतिषेधवचोभिः आत्मनः सर्वपदार्थविलक्षणत्वेन दुश्चिन्त्यत्वमवो

का जनक भी है। और उन-उन उत्तम मध्यम और अधम देह जनित सुख दुःख मोह रूप कर्म फलोपभोग के अवसान में यही संहारक भी है। कहा भी है-प्राणियों के प्रभव अर्थात् उत्पत्ति और अप्यय विनाशकारी है। प्रभव के रूपमें योनि अर्थात् उत्पत्ति कारण इसलिये किसी भी जीवात्मा की इसप्रकार जाग्रत स्वप्न और सुषुप्ति ये तीन अवस्थाये हुआ करती हैं। जो प्रकृति से सम्यक् प्रकार जुडी हुई अपनी आकृतियों को प्रदर्शित करके पुनः प्रकृति अत्यन्त पृथक् कृत स्वरूप को दिखाती है, इसका विवेचन करते हुए श्रुति कहती है, तुरीय अवस्था में आत्मा बहिः प्रज्ञ नहीं होती है। सर्वजगत् साक्षी चैतन्य में जीवात्म विषयक बाह्य विषय मूलक अन्तरिन्द्रिय बहिरिन्द्रिय व्यापार के अभाव होने से उसमें जाग्रत अवस्था का प्रतिषेध करते हैं। तब प्रश्न होता है कि बाह्येन्द्रियादि व्यापाराभाव से जाग्रत अवस्था का निषेध करने से उस समय मानसिक व्यापार का होना अत्यावश्यक है, इसलिये वह अन्तः प्रज्ञ होगा तो उसका भी निषेध करते हैं कि वह भी नहीं नान्तः प्रज्ञमिति अर्थात् अन्तः प्रज्ञ भी नहीं है। इसप्रकार तैजस साक्षी की स्वप्नावस्था का निवारण करते हैं। यदि जाग्रत स्वप्न दोनों ही अवस्थाओं के विषय में निषेध करे तो अन्तराल दोनों अवस्थाओं के मध्य की अवस्था प्राप्त होती है तो उसका निषेध करते हुए कहते हैं- 'न उभयतः प्रज्ञम्' जाग्रत स्वप्न के अन्तराल में दोनों में ही एक साथ प्रकृष्ट ज्ञान होगा उस प्रयत्न के प्राप्त होने पर निषेध करने के लिये कहते हैं 'न प्रज्ञम्' सभी प्रकार से मानसिक क्रिया कलाप का प्रतिषेध प्राप्त होने की परिस्थिति में यह कहें कि मन

**चत्। अदृष्टं दर्शनायोग्यमित्यर्थः। यस्येन्द्रियस्य यो विषयः तेनैव स विज्ञायते इतिनियमात्। अतः अव्यवहार्यम् यः एकेन्द्रियेण ज्ञायते स नान्येन इति अग्राह्यम् ग्रहीतुमशक्यम् लक्षणं चिह्नं न विद्यते यस्य तत् अलक्षणमनुमानेन तर्केण वा चिन्तितुं न योग्यमिति अचिन्त्यम् व्यपदेशोमुख्यव्यवहारः तस्य अयोग्यम् अव्यपदेश्यम् अतः एकात्मप्रत्ययसारं एकस्मिन् सर्वेषामात्मनां प्रत्ययः बोधः, समेषामात्मनां तुल्यत्वेन एकत्र आत्मनिबोधे सति समेषामात्मनां बोधः जायते**

जिसमें किसी व्यापार से जुडा हुआ नहीं है ऐसा अव्यावृत मन प्रतिष्ठित रहता है तो उसका भी प्रतिषेध करते हुए कहते हैं 'ना प्राज्ञमिति' प्रज्ञा विहीन अवस्था भी नहीं रहती है। तव जिस अवस्था में साक्षी चैतन्य कार्य नहीं करता है ऐसी सुषुप्त अवस्था होगी तो उसका भी निषेध करते हुए कहते हैं 'न प्रज्ञानघनमिति' इसप्रकार छ प्रकार के प्रतिषेध सूचक वचनों के द्वारा आत्म पदार्थ का संसार के जितने भी दृष्ट पदार्थ हैं उन सभी पदार्थों से निराला होने से सभी से विलक्षण होने के कारण यह आत्म पदार्थ दुश्चिन्त्य है, अर्थात् बहुत अधिक कठिनाई से चिन्तन करने योग्य है इसप्रकार श्रुति कहती है। तथा अदृष्ट नहीं देखा हुआ, दर्शन करने के अयोग्य, क्योंकि जिस इन्द्रिय का जो विषय होता है उस इन्द्रिय के द्वारा ही वह विषय विशेष रूपसे जाना जाता है, अन्य इन्द्रिय के द्वारा नहीं जाना जाता है यह सामान्य नियम है। किसी इन्द्रिय का विषय आत्मा के नहीं होने के कारण आत्मा को अव्यवहार्य कहा, अर्थात् व्यवहार स्वरूप में उदाहरण प्रत्युदाहरण आदि देकर आत्म स्वरूप का परिचय नहीं दिया जा सकता है जो पदार्थ एक इन्द्रिय के द्वारा जाना जाता है वह उस इन्द्रिय से भिन्न इन्द्रिय के द्वारा नहीं जाना जा सकता है। साधारणतया ज्ञान करने के योग्य नहीं होने के कारण आत्म तत्त्व को अग्राह्य कहा है। असाधारण धर्म को लक्षण कहते हैं आत्मा को अलक्षणम् कहा है अर्थात् लक्षण चिह्न जिसका कोई भी नहीं है उसको अलक्षणम् कहते हैं। आत्मा के विषय में अनुमान के द्वारा अथवा तर्क के द्वारा चिन्तन नहीं किया जा सकता है इसलिये आत्मा को अचिन्त्यम् कहा है। मुख्य व्यवहार को व्यपदेश कहते हैं, जो व्यपदेश करने योग्य होता है उसे व्यपदेश्य कहा जाता है आत्मा अव्यपदेश्य है। आत्मा के व्यपदेश्य नहीं होने के कारण इसे एकात्म प्रत्यय सारम् कहते हैं। एक में अर्थात् एक आत्मा के विषय में बोध हो जाने के पश्चात् एक ही आत्मा में सभी आत्माओं का प्रत्यय अर्थात् बोध हो जाने पर सभी आत्माओं की

**इतिभावः । एवं विधः प्रत्ययः सारं यस्य सः । सर्वेषां जीवात्मनां परमात्मशरीरत्वेन परमात्मविशेषणस्वभावतया तदभिन्नसत्ताकतया विशेषण भूतानामात्मनां परमात्मनामैक्यात् परमात्मरूपेण सर्वेषां एकात्मतयाबोधः स एव सारं यस्येतिभावः ।वस्तुतः आत्मा सर्वविलक्षणः तस्य वस्त्वन्तरसादृश्या भावात् अदृष्टतयाबोधः व्यपदेशश्च कर्तुं न शक्यते, सर्वविलक्षणस्यात्मवस्तुनः केनाऽपि दृष्टान्तेन बोद्धुं व्यपदेशविधातुञ्चाशक्यम् । परन्तु केवलं विशुद्धबुद्धि बोध्यमेव । तदुक्तं श्रुत्या 'मनसा तु विशुद्धेनाभिक्लृप्तः, दृश्यते त्वग्रया बुद्ध्या**

समानता के कारण एक में सबका बोध हो जाना ही महत्वपूर्ण जिसमें है एक आत्म विषय में ज्ञान होने पर सभी आत्माओं का बोध हो जाता है यह अभिप्राय है । इसप्रकार का अनुभव होना महत्वपूर्ण है जिसका वह आत्मा है । संसार के समस्त ब्रह्मा से आरम्भ कर स्थावर पर्यन्त सभी आत्माओं का परमात्मा का शरीर होने के कारण स्वाभाविक रूपसे परमात्मा श्रीरामजी का विशेषण होने से और श्रीरामचन्द्रजी से अभिन्नता है जिसकी ऐसा होने से परमात्मा का विशेषण बनी हुई आत्माओं का परमात्मा के साथ एक रूपता (तादात्म्य) होने से परमात्मा के स्वरूप में सभी आत्माओं का एकात्मता के कारण ज्ञान होता है । वही सार है जिसका उसे एकात्म प्रत्यय सार कहते हैं । वस्तुतः आत्म पदार्थ संसार के सभी पदार्थों से विलक्षण स्वरूप वाला है । उस आत्मा का संसार के आत्म पदार्थ भिन्न वस्तु के साथ सादृश्य का अभाव होने से, कभी भी नहीं देखा हुआ होने से आत्मा बोध अथवा मुख्य व्यवहार किया जाना सम्भव नहीं है । सभी वस्तुओं से विलक्षण आत्म वस्तु का किसी भी उदाहरण आदि के द्वारा समझाया जाना या मुख्य रूपसे व्यवहार किया जाना सामर्थ्य के अधीन नहीं होने के कारण असम्भव है । किन्तु आत्मा का अपरोक्ष दर्शन केवल अति पवित्र दोष शून्य बुद्धि के द्वारा ही आत्म पदार्थ ज्ञाने करने योग्य है ऐसा श्रुति के द्वारा कहा गया है अतः निश्चित रूपसे अत्यन्त विशुद्ध मनके द्वारा पूर्ण रूपसे आत्मा का निश्चयात्मक ज्ञान किया जा सकता है । अत्यन्त सूक्ष्म, पदार्थों को देखनेवाली परम श्रेष्ठ बुद्धि के द्वारा आत्मा का दर्शन किया जाता है । तत्वज्ञानी लोग सूक्ष्म दर्शी सूक्ष्म बुद्धि से आत्म साक्षात्कार करते हैं । इसीलिये आत्मा को प्रपञ्चोपशम कहा है । जिस आत्म पदार्थ के दर्शन मात्र से ही संसार समस्त प्रपञ्च (विस्तार) पूर्ण रूपसे शान्त हो जाते हैं । अपने बाह्य एवं अन्तरिन्द्रिय की क्रियाओं की शून्यता के कारण सभी

सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः' अतः उक्तम् प्रपञ्चोपशमं यस्य दर्शनमात्रेण प्रपञ्च उपशाम्यति, आत्मबाह्यान्तरेन्द्रियव्यापारशून्यत्वम् । अतः शान्तंमङ्गलस्वरूपं मङ्गलकरमात्मावच्छिन्नत्वेन ऐक्यात् प्रक्तेर्जडत्वेन तत् सादृश्याभावादुक्तम-द्वितीयम् तदाह अद्वैतं चतुर्थं तुरीयं पादम् ॥९॥

इन्द्रिय व्यापार शान्त हो जाते हैं आत्मा को इसलिये शान्त कहते हैं । परम मङ्गल स्वरूप सर्वजगत् का मङ्गलकारी संसार के समस्त आत्म पदार्थ में एक रूपता के कारण और प्रकृति को जड स्वरूप होने से समानता का अभाव होने से आत्मा को अद्वितीय कहा गया है । इसी को कहते हैं अद्वितीय चतुर्थ चरण ॥९॥

**स आत्मा विज्ञेयः सदोज्वलोऽविंद्यातत्कार्यहीनः स्वात्मबन्धहरः सर्व्वदाद्वैतरहितः । आनन्दरूपः सर्वाधिष्ठानसन्मात्रो निरस्ताविद्यातमो मोहोऽहमेवेति सम्भाव्यः ॥१०॥**

स आत्मा यः पूर्वमन्त्रेवर्णितः स विशेषेण शास्त्रद्वारा ज्ञातव्यः । किमात्मकः ज्ञातव्यः इत्यत आह सदोज्ज्वलः इति । जाग्रतादि अवस्थासु विकारित्वेन ज्ञायमानोऽपि स्वभावतः निर्मल एव । यतो हि अविद्या तत्कार्यत्वाभावेन विकारित्वासम्भवात् । बन्धमोक्षयोः गुणसंकोचविकासस्व रूपत्वेन न आत्मनः बन्धः न वा मोक्षः इति निदर्शयन् श्रुतिः कथयति 'स्वात्म बन्धहरः' इति । अहं ब्राह्मणः स क्षत्रियः इत्यादिप्रतीतिसत्वेऽपि न तदाकारत्वम् । तेन स्वरूपप्रतिबन्धरहिंतः सन् सर्वस्मिन् कालेऽद्वैतशून्यः । यतो हि आनन्द रूपः । अच्युतानन्दरूपत्वेन आत्मस्वरूपत्ववर्णनात् बद्धावस्थायांञ्च ज्ञानानन्दादेः सङ्कोचः तन्निरूपणायाः सर्वाधिष्ठानसन्मात्रः इति । अधिष्ठानमाधारः । सर्वस्य अधिष्ठानम् सर्वाधिष्ठानमसौ सन्मात्रः । तदुक्तं गीतायाम्-'इन्द्रियाणि मनोबुद्धिः अस्याधिष्ठानमुच्यते' इति भगवद् वचनात् देहेन्द्रियादि आधारावस्थायामपि सन्मात्रत्वात् तद् विलक्षणः इतिभावः ।

ननु वृत्त्याद्याधारस्य घटादेस्तद्धर्मसंश्लेष इव सर्वाधारस्यात्मनस्तद्धर्म संस्पर्शापत्तिरितिचेत् आह-निरस्ताविद्यातमोमोहः । तदुक्तं गीतायाम्-

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते ।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथाऽऽत्मानोपलिप्यते ॥

**इतिवचनेन सर्वाधिष्ठानत्वेन तद्धर्मसंस्पर्शः निषिध्यते । इत्थं सप्तविंशेषण विशिष्टमात्मानं विज्ञाय किं कर्त्तव्यम् इतिजिज्ञासायामाह-अहमेवेति संभाव्यः । सदा उज्ज्वलत्वादिगुणविशिष्टः सर्वेश आत्मा अहमेवाहमात्मकमेवेति विचार्य तमात्मानं ब्रह्मणा एकीकुर्यात् इतिवक्ष्यमाणश्रुत्या अन्वयः ॥१०॥**

यह आत्म स्वरूप है इसप्रकार जो पूर्वमन्त्र में वर्णन किया गया है वह आत्मा सदा उज्ज्वल है । जाग्रत आदि अवस्थाओं में विकारित्व आदि के स्वरूप में ज्ञात होता हुआ भी आत्म स्वरूप सदैव निर्मल अर्थात् दोष विहीन है । यह क्यों दोष विहीन है ऐसा प्रश्न होने पर श्रुति कहती है कि अविद्या तथा अविद्या जनित कार्य इन दोनों से रहित आत्मा है । अविद्या एवं अविद्या का कार्य का अभाव होने से आत्मा में विकारित्व होना सम्भव नहीं है इसलिये निर्मल कहा है । बन्ध एवं मोक्ष की अवस्थाओं में गुणों का सङ्कोच विकास के स्वरूप में होने पर बन्धन तथा मोक्ष नहीं हो सकता है ऐसा कहते हुए 'आत्मबन्धहरः' कहा है । अर्थात् स्वरूप प्रतिबन्ध से शून्य है । मैं ब्राह्मण हूँ, मैं क्षत्रिय हूँ यह व्यवहार जनित बोध होने पर भी वह वास्तविक स्वरूप नहीं है इस अभिप्राय को प्रकाशित करने के लिये सर्वदा द्वैत रहितः कहा गया है । अर्थात् हर परिस्थिति में भगवान् श्रीरामजी का विशेषण होने से अभिन्नता के कारण द्वैत शून्य है । क्योंकि यह आत्मा आनन्द स्वरूप है । अच्युत आनन्द स्वरूप में आत्मा का आनन्द रूप उपनिषदों में कहा गया है । वद्धावस्था में जीवात्मा के ज्ञान एवं आनन्द का सङ्कोच होता है इस विषय को प्रतिपादित करने के लिये कहते हैं कि यह आत्मा सभी का आधार एवं सत्ता मात्र है । अधिष्ठान का अर्थ आधार है, जो सभी का अधिष्ठान आधार है-आधार है ऐसा यह सत्ता मात्र है । यही गीता में कहा है, इन्द्रियां मन और बुद्धि इनका आधार आत्मा है । सत्ता मात्र होने से इनसे आत्म पदार्थ विलक्षण है ।

प्रश्न उठता है जैसे वृत्ति का आधार घट आदि का तद्गत धर्म का सम्यक् सम्बन्ध घट आदि के साथ रहता है, उसीतरह आत्मा का जो सभी का आधार है उसमें इन्द्रियादि धर्मों का सम्यक् स्पर्श होने का दोष होने लगेगा तो इसमें कहते हैं-दूर हो चुका है अविद्या जनित अज्ञानान्धकार तथा मोह जिसका ऐसी आत्मा है इस विषय को भगवान् के द्वारा गीता में कहा गया है । सभी में होते हुए भी आकाश अपनी सूक्ष्मता के कारण उन पदार्थों में परिलक्षित नहीं होने से उन वस्तु धर्म से लिप्त नहीं होता है । उसीप्रकार सभी

देहों में विद्यमान होने पर भी सूक्ष्मता के कारण आत्मा उनके धर्म से लिप्त नहीं होती है। इस वचन के अनुसार सभी का आधार होने से उसके धर्म का स्पर्श निषेध करते हैं। इसतरह सात विशेषणों से विशिष्ट इस आत्मा को जानकर क्या करना चाहिये ऐसी जिज्ञासा होने पर श्रुति कहती है मैं श्रीरामात्मक ही हूँ यह सम्भावना करनी चाहिये। सदैव निर्मलत्वादि गुणों से विशिष्ट आत्मा स्वरूप मैं हूँ यह विचार करें क्योंकि प्रकृत प्रसङ्ग का उस आत्मा को परब्रह्म श्रीरामचन्द्रजी के साथ एकत्व भावना करे इससे आगे कही जाने वीली श्रुति के साथ एक वाक्यता होती है ॥१०॥

**अहमों तत् सद्यत् परं ब्रह्म रामचन्द्रः चिदात्मकः ।**

**सोहमों तद्रामभद्रः परं ज्योतीरसोहमो**

**मित्यात्मानमादाय मनसा ब्रह्मणैकी कुर्यादिति ॥११॥**

ॐ पदवाच्यमहं ब्रह्म सर्वं ह्येतद् ब्रह्म, सर्वं खल्विदं ब्रह्म, ब्रह्मैवेदमग्र आसीत्। सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म, इत्यादिश्रुतिसिद्धं सर्वव्यापकं बृहद् गुणयोगितत् किमित्याह रामचन्द्रश्चिदात्मकः इति। स अहम्, तद् व्याप्यत्वेन तदात्मकत्वेन तद पृथक् सिद्धेः। तद्भिन्नसत्तावानहम्। पूर्वोक्तमेवार्थं पुनः तत् शब्देन परामृशन्नाह तद्रामभद्रपरं ज्योतिसारः अहमात्मा इतिश्रुत्या परंज्योतिः तद्भिन्नसत्ताकः इत्यर्थः। असौऽहमित्यात्मानमादाय मनसा ब्रह्मणा एकीकुर्यात् इत्युक्तमेवा परेशश्रीरामचन्द्राभिन्नसत्ताकत्वेन तदैक्यमादाय विशुद्धेन मनसा ध्यानेन परब्रह्मणा श्रीरामचन्द्रेण सह अनेकौ एकौ कुर्यादित्यर्थः। नियंतृत्वनियम्यत्वादि स्वभावेन भेदे वर्तमानेऽपि जीवात्मनः परमात्मव्याप्यत्वेन तदविनाभावात् तद्भिन्नसत्ताकत्वं भावयेत्। एवं भूतान् स्वात्मनः स्थितिं कुर्यात् यथा जलान्तर्गतस्यपदार्थस्य तूलकणादेः जलरूपेणैवबोधोभवति, तथैव सर्वेश्वर श्रीरामाख्येन परब्रह्मणाबहिरन्तरव्याप्तस्य चिद् रूपस्य जीवस्य श्रीरामब्रह्मत्वेनैव भानम्। तदुक्तम्-

'सदारामोहमित्येतत्तत्वतः प्रवदन्तिये ।

न ते संसारिणो नूनं राम एव न संशयः ॥'

अथवा ईश्वरत्वादीनां परमात्मधर्मत्वेन जीवस्य परमात्मशरीरत्वेन विशेषणैकस्वभावस्य जीवस्य तदपृथक्सिद्धेः। अहमों तत्सत् इत्यादिना

सविग्रहस्यापि श्रीरामस्य चित् रूपत्वं गमयति । श्रीरामस्य चैतन्यप्राधान्येन विशेष्यत्वं प्रकाशयति । 'परं ज्योतीरसः' इतिकथनेन स्वतेजसा सूर्य्यादिवत् सर्वप्रकाशकतया ज्योतिसामपि प्रकाशकत्वं श्रीरामस्येत्यर्थः । 'विश्वं जातं यतोऽद्धा यदवितमखिलं लीयते यत्र चान्ते सूर्यो यत्तेजसेन्दुः सकलमविरतं भासयत्येतदेषः । यद्भीत्यावातिवातोऽवनिरपि सुतलं याति नैवेश्वरोज्ञः साक्षीकूटस्थ एकोबहुशुभगुणवानव्ययो विश्वभर्ता' इत्याचार्योक्तेः ॥११॥

ॐ पद का अर्थ ब्रह्म है, वही ब्रह्म स्वरूप मैं हूँ, यह समस्त दृश्य जगत् ब्रह्ममय ही है । सवकुछ यह ब्रह्ममय है । सवसे पहले इस सृष्टि से पूर्व काल में ब्रह्म ही था । ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ भी नहीं था सत्य स्वरूप ज्ञान स्वरूप एवं अनन्त स्वरूप ब्रह्म है । इत्यादि श्रुति वचनों से सिद्ध सर्वव्यापक अनन्त कल्याण गुण सम्पन्न वह तत्त्व क्या है इस जिज्ञासा में कहते हैं-परम चैतन्य स्वरूप श्रीरामचन्द्रजी ही परं ब्रह्म हैं । तदात्मक मैं हूँ । भगवान् श्रीरामचन्द्रजी से व्याप्य होने के कारण स्वयं को श्रीरामचन्द्रजी के विशेषण स्वरूप में भावना करे, क्योंकि जीवात्मा की श्रीरामचन्द्रजी से अपृथक् सिद्ध विशेषण होने से अभेद है श्रीरामचन्द्रजी से अभिन्न सत्ता सम्पन्न मैं हूँ यह चिन्तन करे । पूर्व निरूपित अर्थ को ही पुनः तत् शब्द से परामर्श करते हैं। वे श्रीरामभद्र परम ज्योति ही सारभूत तत्त्व हैं जिसमें ऐसा आत्म स्वरूप मैं हूँ, इस श्रुति के अनुसार परं ज्योति से अभिन्न सत्तावान् वे श्रीरामजी हैं । 'असौहं' यह कहकर आत्मा को अवलम्बन करके मनके द्वारा ब्रह्म के साथ एकीकरण करे । इसप्रकार से श्रीरामचन्द्रजी से भिन्न सत्ता है जिसकी ऐसा होने से जीवात्मा एवं परमात्मा की एकता को ग्रहण करके विशुद्ध मन से ध्यान के द्वारा परब्रह्म श्रीरामचन्द्रजी के साथ जीवात्मा एवं परमात्मा इन अनेक को एक की भावना करे। नियामकत्व और नियम्यत्व आदि स्वभाव से भेद विद्यमान रहने पर जीवात्मा का परमात्मा से व्याप्य होने के कारण परमात्मा के विना जीवात्मा की सत्ता नहीं होने से, परमात्मा से अभिन्न सत्तावान् होने की भावना करे । इसप्रकार की अपनी स्थिति का अनुभव करे जैसे जलके अन्तर्गत पदार्थ का तूलकण आदि का जल के स्वरूप में ही बोध होता है उसीप्रकार श्रीरामचन्द्रजी नामक परब्रह्म के बाहर अन्दर सर्वत्र व्याप्त होने के कारण चित् एवं अणु स्वरूप जीव का श्रीराम ब्रह्म स्वरूप में ही बोध होता है । यही श्रुति में कहा है→सदैव मैं श्रीराम स्वरूप हूँ, इसप्रकार जो तात्विक

रूपसे कहते हैं वस्तुतः वे संसारी जीव नहीं हैं श्रीराम रूप ही हैं, अतः किसी प्रकार किसी तरह का संदेह नहीं है। अथवा ईश्वरत्व आदि का परमात्म धर्म होने से और जीव का परमात्मा का शरीर होने से एक मात्र विशेषण स्वभाव वाला जीव का श्रीरामचन्द्रजी से भिन्न नहीं है यह सिद्ध होता है 'मैं ॐकार ब्रह्म स्वरूप सत् पदार्थ हूँ' इत्यादि वचन के द्वारा साकार स्वरूप वाले श्रीरामचन्द्रजी को चिद् रूपत्व प्रकाशित करता है। श्रीरामचन्द्रजी के चैतन्य प्रधान होने से विशेष्यत्व को प्रकाशित करता है 'परं ज्योतीरसः' इस कथन से अपने प्रभात से सूर्य आदि के समान समस्त जडचेतन का प्रकाशक होने से सभी प्रकार के प्रकाशों का भी प्रकाशकत्व श्रीरामचन्द्रजी में ही है यह तात्पर्य है। इस विषय को श्रीआनन्दभाष्यकारजी ने श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर में विस्तृत निरूपित किया है उसे मेरी टीकाओं में वहीं देखें ॥११॥

**सदा रामोऽहमित्येव तत्त्वतः प्रवदन्ति ये।**
**न ते संसारिणो नूनं राम एव न संशयः ॥१२॥**

**सर्वेश्वरश्रीरामापृथक् सिद्धेः श्रीरामाधीनस्वरूपस्थितिप्रवृत्तिकत्वात् सर्वतोभावेनमच्छेषीश्रीरामः सर्वथा मम योगक्षेमं विधास्यतीति निर्भरत्वेन निर्भयोऽहमिति बुद्ध्या ये सदैव अहं 'रामः' इति तत्वतः प्रवदन्ति, चिदचितोरीश्वरस्य च नित्यत्वेन तद् व्याप्यव्यापकत्वयोरपि नित्यत्वसिद्धेः, जीवः तस्य**

जीवात्मा का श्रीरामजी से अपृथक् सिद्ध सम्बन्ध होने से भगवान् श्रीरामजी के अधीन जीवात्मा का स्वरूप स्थिति और प्रवृत्ति आदि होने के कारण सभी तरह से मेरा शेषी श्रीरामजी हैं, सभी प्रकार से मेरा योगक्षेम करेंगे ऐसी भावना से परिपूर्ण होने से मैं भय मुक्त हूँ इस भावना के साथ जो भक्त सदैव 'मैं राम स्वरूप हूँ' इस तरह तात्विक रूपसे कहते हैं। चित् अचित् और ईश्वर के नित्य होने से श्रीरामचन्द्रजी के साथ व्याप्य व्यापकत्व की भी नित्यता सिद्ध होती है। जीवात्मा भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का शेष है और भगवान् श्रीरामचन्द्रजी शेषी हैं। जैसे गोत्व विशिष्ट गो में अभेद है, उसी प्रकार जीवात्मा और श्रीरामजी में अभेद है। इसलिये मैं राम स्वरूप हूँ, राम स्वरूप हूँ मैं, इसप्रकार जो तात्विक रूपसे बोलते हैं विभिन्न प्रकार के शास्त्रार्थ को देखने से भी जो अपने सिद्धान्त से विचलित नहीं होते हैं अपनी आत्मा में ही परमात्मा का विशेषण रूप में निश्चय होने पर अच्छी तरह से देह एवं सांसारिक

शेषः श्रीरामश्च शेषीगोत्वविशिष्टगोशब्दवद् द्वयोरभेदः । तस्मात् अहं 'रामः' 'रामोऽहम्' इति ये तत्वतः प्रवदन्ति, विभिन्नप्रकारकशास्त्रार्थावलोकनेनापि ये स्वसिद्धान्तान्न प्रच्यवन्ते, स्वात्मनिष्ठपरमात्मप्रकारत्वनिश्चये सति सुतरां देहादावहन्ताममताद्यभावात् जीवन्तोऽपि ते मुक्तसमाना एव, देहान्तेऽपि श्रीरामसदृशा एव । 'अशनापिपासेशोकं मोहं जरां मृत्युमत्येति' इतिश्रुतेः । अशनापिपासाद्यतिक्रम्य श्रीरामसाधर्म्यं साक्षात्तदैक्यासिद्धेः, तत् सायुज्यमुक्तिम्ववाप्यैव सादृश्यमनुभवन्ति । सायुज्यं नाम सर्वदा तदविनाभूतत्वेनानुसन्धानम् । आत्मनः देहान्ते साधर्म्यप्राप्तिपूर्वकं तत्समानभोगवत्त्वम् । सहयुनक्तीति सयुक् सयुजः भावः सायुज्यम् ।

'यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः'

इतिगीतोक्तेः । 'तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैतीति, सोऽश्नुतेसर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता' इत्यादिसायुज्यमुक्तिदशायामिव परेशश्रीरामाभिन्नात्मभावनावान् भवेत् । न ते संसारिणः 'रामः' एवेति पदद्वयोपादानेन, एवेत्यनयोरवधारणद्वयोक्तेश्चमुक्ताभिप्रायेणैषवचनमिति निश्री

अन्य पदार्थों में अहन्ता एवं ममता आदि का अभाव होने से जीवन दशा में भी वे मुक्त के समान ही हैं । और इस शरीर का अन्त हो जाने पर वह श्रीरामजी जैसा ही हो जाता है । भुख प्यास शोक मोह वढापा और मृत्यु पर विजय प्राप्त करता है । इस श्रुति प्रमाण से भूख प्यास आदि का अतिक्रमण करके श्रीरामजी साधर्म्य को प्राप्त करके अर्थात् सायुज्य मुक्ति दशा में श्रीरामजी जैसे स्वरूप वेष भूषा आदि से सम्पन्न होने पर ही सायुज्यत्व होता है । अन्यथा जीव और श्रीरामजी का ऐक्य सा सिद्ध नहीं होगा । इसलिये श्रीरामजी के सायुज्य मुक्ति को पाकर ही सादृश्य का अनुभव करता है । सायुज्य वह वस्तु है, सदैव श्रीरामजी के साथ अविनाभाव होने से श्रीराम रूपता का अनुशीलन होता हैं । अपने इस शरीर के अन्त में साधर्म्य प्राप्ति पूर्वक भगवान् श्रीरामजी के समान भोगवत्व है । साथ साथ जो युक्त रहता है उसे सयुक् कहते हैं, और सयुक् के भाव को सायुज्य कहते हैं । गीता के कथन से भी प्रमाणित है जिस जिस भाव को अनुचिन्तन करते हुए अन्तकाल में इस शरीर का त्याग करता है, उस उस स्वरूप को ही वह प्राप्त करता है, हे अर्जुन ? उस भावना से संस्कृत होने से

**यते। एतेन जीवन्मुक्तदशायां घटकलशाविवैकार्थाभिधायकत्वं भवति, श्रीराम-ब्रह्मपदयोरेकार्थबोधकत्वनिश्चयात्। तदुक्तम्-**

**भूमौ जले नभसि देवनरासुरेषु, भूतेषु देवि सकलेषु चराचरेषु।**
**पश्यन्ति शुद्धमनसा खलु रामरूपं, रामस्य ते भुवितले समुपासकाश्च ॥१॥**

**'देवोभूत्वा देवं यजेत्' इतिश्रीरामोपासकानां श्रीरामसादृश्यप्राप्तये तदा-युधधारणस्यावश्यकतोपपाद्यते।**

उसमें उन रूपों की प्राप्ति होती है। मुक्ति दशा में आत्म ज्ञानी पुण्य पापों को विशेष रूपसे नष्ट करके निष्कल्मष होकर परब्रह्म से परम साम्य को प्राप्त करता है। वह समस्त कामनाओं को भोगता है परमज्ञानमय परं ब्रह्म के साथ जिस तरह सायुज्य मुक्ति की अवस्था में उपभोग करता है। अर्थात् जीवात्मा श्रीरामजी से अभिन्न भावना से सम्पन्न सा होवे। 'वे संसारी नहीं हैं, निश्चित ही वे श्रीराम स्वरूप ही हैं इसमें किसी तरह का सन्देह नहीं है' इन दोनों पदों का प्रयोग करने से सायुज्यत्व प्रकाशित होता है। 'ननु' एवं 'एव' ये दो अवधारणा अर्थ वाले दो पदों के प्रयोग से भी यह सिद्ध होता है कि मुक्त के अभिप्राय से ही यह वचन है यह निश्चय किया जाता है। इससे यह प्रमाणित है कि जीवन मुक्त अवस्था में जैसे घट और कलश नाम से भिन्न होने पर भी एकार्थ वाचक है, उसीप्रकार वह जीव और श्रीराम एक अर्थ का वाचक होगा यह निश्चय होने से, एकार्थ बोधकत्व होता है। यह कहा गया है-पृथिवी में जल में आकाश देवता मनुष्य और असुर में हे देवि सभी प्राणियों एवं समस्त जडचेतनात्मक संसार में जो भक्त अत्यन्त विशुद्ध मनसे भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के स्वरूप का अनुशीलन करते हैं, वे भगवान् श्रीरामजी के समुपासक भगवान् श्रीरामजी के परम धाम में निवास करते हैं। इसी को कहा है 'निज प्रभुमय देखऊँ जगत का सन करुँ विरोध' इसी अभिप्राय को 'देवो भूत्वा देवं यजेत्' वाक्य से कहा गया है इसलिये श्रीवैष्णवजन श्रीराम रूपता प्राप्ति हेतु धनुष बाण से अंकित होते हैं। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के उपासकों का श्रीरामचन्द्रजी की समानता को प्राप्त करने के लिये श्रीरामचन्द्रजी के आयुध आदि धारण करने की आवश्यकता सिद्ध की जाती है। वाम भुजा में धनुष का चिह्न करना चाहिये एवं दक्षिण भुजा में बाण का चिह्न धारण करना चाहिये। जो व्यक्ति धनुष और बाण के चिह्न से चिह्नित नहीं है, नहीं श्रीराम मन्त्र से दीक्षित हुआ है। न हीं ब्रह्मतारक षडक्षर श्रीराम मन्त्र को धारण करता है। न

वामे करे धनुः कुर्याद्दक्षिणे बाणमेव च ।
नांकितोधनुर्बाणाभ्यां न मन्त्रो न षडक्षरः ॥
न नाम राम सम्बन्धी न रामोपासको भवेत् ॥१॥

एवमादिप्रामाणिकवचनैः 'राम एव न संशयः' इत्यस्य पुष्टिर्भवति ।

ननु 'राम' पदमत्र न सविशेषवस्तुपरं किन्तु निर्विशेषब्रह्मपरं 'चिदात्मकः' 'परंज्योतीरसः' इतिपदाभ्यां विशेषितत्वादितिचेत् तन्न । 'इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते' इत्यभिधाशक्त्या विषयत्वप्रकाशनेन लक्षत्वाभावात् । 'धृत्वा व्याख्याननिरतश्चिन्मयः परमेश्वरः' इतिव्याख्याननिरतत्वेन शरीरस्य चिन्मयत्वा भिधानेन 'ब्रह्मानन्दैकविग्रहः' इतिविग्रहस्य प्राकृत्यश्रवणाच्च श्रीरामार्थस्यैव सर्वोत्कृष्टत्वबोधात् । इत्थमुक्तप्रकारप्रकारिणोरेकशब्दज्ञेयत्वेन 'अहं रामः' 'रामोऽहमिति' सामानाधिकरण्यव्यपदेशः । श्रीरामशरीरत्वेनाविनाभावात् तद
हीं भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का सम्बन्धी है वह व्यक्ति भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का उपासक नहीं होगा । अर्थात् जो व्यक्ति धनुष बाण से चिह्नित है, तथा षडक्षर श्रीराम मन्त्र से दीक्षित होकर श्रीवैष्णवीय सभी चिह्नों को धारण करता है, भगवान् श्रीरामजी का सम्बन्धी है वही श्रीरामजी का उपासक है, इत्यादि प्रामाणिक वचनों से वह श्रीराम स्वरूप ही है इसमें संदेह नहीं है इस अभिप्राय की पुष्टि होती है ।

यदि यह प्रश्न करें कि यहां पर श्रीराम पद सविशेष वस्तु से सम्बन्धी नहीं है किन्तु निर्विशेष ब्रह्म बोधन परक है 'चिदात्मक परं ज्योतीरसः' इन पदों के द्वारा विशेषित किये जाने के कारण यदि ऐसा कहें तो नहीं कह सकते हैं 'इसप्रकार वह श्रीराम पद से परब्रह्म कहा जाता है' इसप्रकार अभिधा शक्ति के द्वारा विषयत्व प्रकाशन करने से लक्षणा शक्ति द्वारा लक्ष्यत्व किया जाना सम्भव नहीं है । 'धारण करके व्याख्यान तत्पर चैतन्यमय परमेश्वर' इस कथन में व्याख्यान निरतत्व कथन से सशरीर और चिन्मयत्व कथन से और 'ब्रह्मानन्द स्वरूप एक मात्र शरीर है जिसका' इस कथन से विग्रह शरीर का दिव्य प्राकृतत्व सुने जाने से सविशेषत्व ही है । 'श्रीराम पदार्थ का ही सर्वोत्कृष्ट बोध होने से' इसतरह वर्णित विशेषणता एवं विशेष्यता को एक शब्द के द्वारा ज्ञेय होने से 'मैं राम स्वरूप हूँ, राम स्वरूप हूँ मैं' में समान विभक्तिकत्व व्यवहार किया गया है । क्योंकि जीवात्मा को श्रीरामजी का शरीर होने से अविनाभाव सम्बन्ध है । तथा श्रीरामजी से अभिन्न सत्ता वाला मैं हूँ इसप्रकार का

पृथक् सत्ताकोहमितिदृढविश्वासः । दृढविश्वासवन्तो जीवन्तोऽपिमुक्ता इवात एवोक्तं सदा रामोऽहमिति ॥१२॥

दृढ विश्वास है । इसतरह के दृढ विश्वास वाले व्यक्ति जीवन दशा में भी मुक्त जैसा ही है इसलिये कहा है-सदा रामोऽहम् ॥१२॥

**इत्युपनिषद् य एवं वेद स विमुक्तो भवति ।**

**स विमुक्तो भवतीति याज्ञवल्क्यः ॥१३॥**

ज्ञानं ब्रह्मविद्या उपनिषद् रहस्यभूतम् । यः श्रीरामभक्तोऽनेन प्रकारेण जानाति स त्रैलोक्यपूज्यो भवति एवं याज्ञवल्क्योभारद्वाजमुपदिष्टवान् ॥१३॥

इतितृतीयकण्डिका

ब्रह्म विद्या ज्ञान उपनिषद् का रहस्यभूत अभिप्राय है । जो भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का भक्त इसप्रकार से जानता है वह तीनों लोक के लिये पूजनीय होता है । इसप्रकार महर्षि श्रीभरद्वाजजी को याज्ञवल्क्यजी ने उपदेश दिया ॥१३॥

卐 तृतीय कण्डिका सम्पन्न 卐

**अथ हैनमत्रिः पप्रच्छ याज्ञवल्क्यं य एषोऽनन्तो**

**ऽव्यक्त आत्मा तं कथमहं विजानीयामिति ।**

**स होवाच याज्ञवल्क्यः सोऽविमुक्ते उपास्यः ।**

**य एषोऽनन्तोऽव्यक्त आत्मा सोऽविमुक्ते प्रतिष्ठितः ॥१॥**

अनन्तरं चतुर्थकण्डिकायामत्रिः याज्ञवल्क्यं पृष्टवान् यत् एषोऽनन्त आत्मा तमात्मानं कथं साक्षादवलोकयितुं शक्नुयामिति । पूर्वकण्डिकायां सदोज्व-लोऽविद्या तत्कार्यहीन इत्यादिलक्षणैरात्मस्वरूपं प्रकाशितः, तं कथं विजानी यामिति साक्षात्कारोपायविज्ञानाय पृच्छति ।

तत उत्तरमाह याज्ञवल्क्यः-उपासनामन्तरान्तःकरणाविशुद्धिपूर्वकं तत्साक्षात्कारो न स्यादतः उपासना विधानं करोति सोऽविमुक्ते उपासनीय इति। आत्मा अविमुक्तं सन्धितुरीयं तस्मिन्नुपासनीयः, प्रदेशान्तरे वर्तमानेऽपि अविमुक्ते एव उपासनीय इति कोऽयं नियमः, य एष अनन्तोऽव्यक्त आत्मा स अविमुक्ते तिष्ठति, इत्थमुपासनासुलभतां दर्शयित्वा, तस्मिन् मनोनिरोधस्यातिं कठिनत्वात्

**साक्षात्कर्तुः साध्यं निदर्शयन्नाह तस्याविमुक्तशब्दवाच्यस्य किं स्थानमिति कथयति वक्ष्यमाणं मन्त्रम् ॥१॥**

इसके वाद चतुर्थ कण्डिका में अत्रि याज्ञवल्क्य से प्रश्न किये कि जो यह अनन्त स्वरूप वाली आत्मा है उसको मैं कैसे साक्षात् अवलोकन करने में सक्षम हो सकुँगा। पूर्व कण्डिका में 'सदैव निर्मल अविद्या एवं अविद्याजनित कार्य से हीन' इत्यादि गुणों से सम्पन्न आत्मा का स्वरूप निरूपण किये हैं। उसे मैं कैसे जान सकुँगा, इस तरह आत्म साक्षात्कार का उपाय विज्ञान करने के लिये प्रश्न करते हैं।

इसके वाद याज्ञवल्क्यजी अत्रि के प्रश्न का उत्तर कहते हैं। अन्तःकरण की अत्यन्त विशुद्धि होने के अभाव में साक्षात्कार सम्भव नहीं है। इसलिये आत्मा की उपासना का विधान करते हैं। उस आत्मा की अविमुक्त में उपासना करनी चाहिये। आत्मा अविमुक्त है एवं सन्धि तुरीय है। उसमें उपासना करनी चाहिये अन्य प्रदेशों के विद्यमान होने पर भी अविमुक्त क्षेत्र में ही आत्मा की उपासना करनी चाहिये। यह कौनसा नियम है-'जो यह अनन्त अव्यक्त आत्मा है वह अविमुक्त क्षेत्र में रहती है। इसप्रकार उपासना की सरलता को प्रदर्शित करके आत्म साक्षात्कार करने में मनो निरोध अत्यावश्यक है, और मन को विषय प्रदेशों में जाने से रोककर इसे निरुद्ध करके रखना अत्यन्त दुष्कर कर्म है अतः अत्यन्त कठिनता के कारण साध्य का स्वरूप निरूपण करने के लिये कहते हैं। उस अविमुक्त शब्द प्रतिपाद्य का क्या स्थान है इस विषय को कहे जाने वाला आगे के मन्त्र से कहते हैं ॥१॥

**सोऽविमुक्तः कस्मिन् प्रतिष्ठते ।**
**वरणायां नाश्याञ्च मध्ये प्रतिष्ठित इति ॥२॥**

**उपास्यत्वेन प्रतिपादितस्यात्मनो यत्रोपासनाविधीयते सोऽविमुक्तः । स कस्मिन् स्थाने प्रतिष्ठते इतिप्रश्नोत्तरं कथयति याज्ञवल्क्यः वरणायां नाश्यां चान्तराले प्रतिष्ठित इति तदाकर्ण्य पुनरत्रिरपृच्छत् ॥२॥**

उपास्य के स्वरूप में निरूपित की गयी आत्मा की जहां उपासना की जाती है वह अविमुक्त है। वह किस में प्रतिष्ठित है इस प्रश्न का उत्तर याज्ञवल्क्यजी कहते हैं। वरणा और नाशी के मध्य में अविमुक्त प्रतिष्ठित है इस उत्तर को सुनकर पुनः अत्रि पूछते हैं ॥२॥

**का वै वरणा का च नाशीति,**

**सर्वानिन्द्रियकृतान् दोषान् वारयतीति तेन वरणा भवतीति ।**

**सर्वानिन्द्रियकृतान् पापान् नाशयतीति तेन नाशी भवतीति ॥३॥**

पुनः संशयापन्नोऽत्रिराह हे भगवन् का वरणा का च नाशी इति ततो याज्ञवल्क्य उवाच सर्वान् इन्द्रियकृतान् स्वस्वविषयेच्छारूपान् दोषान् वारयतीति वरणा भवति । विषयेच्छापराधीनत्वात् रूपरसादिषु विषयेषु इन्द्रियैरविहिता-चरणस्वरूपान् पापान् नाशयतीति नाशीभवति ॥३॥

पुनः सन्देह ग्रस्त होकर अत्रिजी याज्ञवल्क्य ऋषिजी को कहते हैं, हे भगवन् वरणा क्या है और नाशी क्या है। इसके वाद याज्ञवल्क्यजी कहते हैं-समस्त इन्द्रियों के द्वारा अपने अपने विषयों के प्रति इच्छा स्वरूप दोषों का जो निवारण होता है उसे वरणा कहते हैं, विषयों के प्रति इच्छा पराधीन होने के कारण जो रूप रस आदि विषयों में इन्द्रियों के द्वारा शास्त्र द्वारा जिसका विधान नहीं किया गया है, उन आचरणों का आचरण स्वरूप पापों को नाश करता हो उसको नाशी कहते हैं ॥३॥

**कतमं चास्य स्थानमिति भ्रुवोर्घ्राणस्य च यः सन्धिः स एष द्यौर्लोकस्य परस्य च सन्धिर्भवतीति। एते द्वैतसन्धि सन्ध्यां ब्रह्मवि दुपासते इति । सोऽविमुक्ते उपास्य इति सोविमुक्तं ज्ञानमाचष्टे यो वै एतदेवं वेदेति ॥४॥**

'वरणा' इति 'नाशी' इति यदुक्तं अनयोः स्थानं कतममिति जिज्ञासायां याज्ञवल्क्य आह-भ्रुवोः नासिकायाश्च यः सन्धिः स द्यौः लोकः तस्य परस्य च यः सन्धिः भवतीति सोऽविमुक्तेकाश्यभिधेये । उक्तमयोध्यामाहात्म्ये-विष्णोः पादमवन्तिकां नाशाग्रवाराणशी' स त्वया जिज्ञासितोऽविमुक्त एष सन्धिः भवति। अविमुक्तसन्धिशब्दौपर्यायौ, तदेव उपासनास्थानमिति सदाचारेण दृढयति । एनां प्रख्यातां सन्धिं सन्ध्यांब्रह्मविद उपासनां कुर्वन्ति तं कथमहं विजानीयामिति । य आत्मसाक्षात्कारोपायः त्वया जिज्ञासितः स आत्मा भ्रुवोः घ्राणस्य च सन्धौ अविमुक्ते उपासनीयः । इत्थमुपासनया आत्मानं साक्षात्कृत्य, तस्य श्रीरामाविनाभावात् श्रीराममेव प्रकारितया सर्वरूपं यः पश्यति सः श्रीरा-

मोपासकः त्रैलोक्यगुरुर्भवतीत्युपासनाफलमाह-सोविमुक्तज्ञानमाहेत्यादि-यः उपासकः उक्तप्रकारेण जानाति सः तुरीयाख्यं सन्धिज्ञानं सर्वत्र श्रीरामस्वरूपत्व दर्शनस्वरूपं कथयति। शिक्षायोग्यस्य शिष्यस्य कृते तद्धितार्थमतिरहस्यभूतं ज्ञानं तत्क्षणमुत्पादयति तदुक्तं गीतायाम्-उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनः तत्वदर्शिनः। भगवताप्येतन्निरूपितं यत् ज्ञानोपदेशे तत्वज्ञानिन एव अधिकारिणः। अयमुपायः इन्द्रियसंयमाधीनः, इन्द्रियसंयमान्तःकरणशुद्ध्योश्च परस्परसापेक्षत्वेन तस्य कठिनत्वं सकलजीवासाधारणत्वं च बुध्वा बृहस्पतिना गुरुणा पृष्टमतिकरुणया रुद्रः तारकं ब्रह्मव्याचष्टे, तदेवाधुना अत्रिणा पृष्टः याज्ञवल्क्यः करुणया तमाह सर्वसुलभत्वेन सर्वजीवसाधारणं अन्यसहायानपेक्षत्वात् स्वानुष्ठानसाध्यं प्रारब्ध व्यतिरिक्तसर्वपापदाहकं सर्वफलदायकं सर्वोत्कृष्टं स्वाभिमतञ्चेति उपदिदेश ॥४॥

वरणा और नाशी का जो स्वरूप पहले कह चुके हैं, इन दोनों का स्थान कौन सा है, ऐसी जिज्ञासा करने पर याज्ञवल्क्य कहते हैं। दोनों भौंह और नाक का जो सन्धि स्थान है वह आकाश है या स्वर्गलोक है। और इन दोनों का जो सन्धि स्थान होता है वह काशी अविमुक्त नाम से अभिहित है। यही अयोध्या माहात्म्य में कहा है। विष्णु का चरण अवन्तिका है, और नासिका का मूल वाराणसी है। वही तुम से प्रश्न किया गया, अविमुक्त नाम की यह सन्धि है। अविमुक्त और सन्धि ये दोनों शब्द पर्यायवाचक है। और ये ही उपासना स्थान है। इस विषय को सदाचार के द्वारा दृढ करते हैं। इस प्रसिद्ध सन्धि को सन्ध्या रहस्य ब्रह्म तत्व ज्ञानी उपासना करते हैं। उस को मैं कैसे जान सकूँगा। ऐसी जिज्ञासा में कहते हैं। जो आत्मा साक्षात्कार करने का उपाय तुमसे पूछा गया है, वह आत्मा दोनों भौंहों और नाक के सन्धि में अविमुक्त नामक स्थान पर उपासना करने योग्य है। इस तरह उपासना के द्वारा आत्मा का साक्षात्कार करके और वह आत्मा श्रीरामजी के विना सिद्ध नहीं है इसलिये वह श्रीरामजी में विशेष्यता होने से उनके सर्वरूप को जो देखता है वह श्रीरामजी का उपासक तीनों लोकों का गुरु होता है। यह विचार कर उपासना का फल कहते हैं। वह अविमुक्त ज्ञान को कहते हैं इत्यादि जो उपासक उक्त प्रकार से जानता है वह चतुर्थ नामक सन्धि ज्ञान को सभी जगह श्रीराम स्वरूपत्व रूप दर्शन स्वरूप को कहते हैं। शिक्षा देने योग्य शिष्य के लिये उसके हित के लिये अत्यन्त रहस्यभूत ज्ञान तत्क्षण उत्पन्न करते हैं। यही गीता में भी कहा है। तत्वदर्शी ज्ञानी लोग तुम्हे उपदेश करेंगे।

भगवान् के द्वारा भी यह बताया गया कि ज्ञान के उपदेश देने में तत्त्वज्ञानी ही अधिकारी है। यह आत्म साक्षात्कार इन्द्रिय संयम के अधीन है। इन्द्रिय संयम और अन्तःकरण शुद्धि परस्पर सापेक्ष होने के कारण उसकी अत्यन्त कठिनता है। और समस्त जीवात्माओं के लिये असाधारणता भी है। यह समझ कर बृहस्पति के द्वारा गुरु से पूछने पर अत्यन्त करुणा से आर्द्र चित् होकर भगवान् रुद्र तारक ब्रह्म नामक मन्त्रोपदेश किये, और वही इस समय अत्रि के द्वारा पूछे जाने पर याज्ञवल्क्य अत्यन्त दयालुता पूर्वक उन्हें कहते हैं। सभी के लिये सुलभ होने से जीवमात्र के लिये साधारण, किसी अन्य की सहायता की अपेक्षा नहीं होने से केवल स्वयं के उपासना द्वारा साध्य प्रारब्ध कर्म को छोडकर सभी पापों को भस्मकरदेनेवाला सभी को फलप्रद सर्वोत्कृष्ट एवं अपना अभिमत रहस्य का उपदेश दिये ॥४॥

**अथ तं प्रत्युवाच स्वयमेव याज्ञवल्क्य→**

**श्रीरामस्य मनुं काश्यां जजाप वृषभध्वजः ।**
**मन्वन्तरसहस्त्रैस्तु जपहोमार्चनादिभिः ॥५॥**

**ततः प्रसन्नो भगवान् श्रीरामः प्राह शङ्करम् ।**
**वृणीष्व यदभीष्टं तद्दास्यामि परमेश्वरेति ॥६॥**

अत्रिं प्रति स्वयमेव याज्ञवल्क्य उवाच, यत् जगदानन्दरूपिणः श्रीरामचन्द्रस्य षडक्षरं तारकं मन्त्रं वाराणस्यांवृषभवाहनः सर्वजीवमङ्गलकरः शङ्करः जपहोमार्चनादिभिः सार्धं मन्वन्तरसहस्त्रकालावधिं यावत् जजाप । जपहोमादयः श्रीरामप्रसन्नताहेतवः सन्ति । काशीमृतानां जीवानां मोक्षाय सर्वेश्वरश्रीरामं प्रसादयितुं प्रवृत्तस्य शिवस्य भगवन्मन्त्रान्तरेषु सत्स्वपि श्रीराममन्त्रस्य सर्वश्रेष्ठत्वं प्रकाशयति ''मुक्तिः काशीमृतानां मृतिसमयशिवः प्रत्य यन् मन्त्रशक्तेः यन्नामग्राहमन्तर्मुमुदितपुलकः सास्त्रुनेत्रस्त्रिनेत्रः । साकेतेशः समस्त श्रुतिसकलशिरोऽभ्यस्तमाहात्म्यभूमिर्भव्यायास्माकमास्तामनुपधिकरुणो भूमिजा भूषिताङ्गः'' इत्यानन्दभाष्यकारोक्तेः । प्रसन्नो भगवान् श्रीरामचन्द्रः शङ्करं प्राह। सर्वेश्वरश्रीरामचन्द्रः शङ्करं प्राह यत् ते यदभिमतं तत्वृणीष्व, हे परमेश्वर तत् तुभ्यं प्रदास्यामि। परमेश्वरस्यापि स्वाभिमतवरप्रदातृत्वेन सर्वेश्वरश्रीरामस्य 'तं देवतानां परमं च दैवतम्, ईश्वराणां परमं महेश्वरमितिश्रुतिविषयः स्फुटी क्रियते ।५/६।

महर्षि अत्रि के प्रति स्वयं ही याज्ञवल्क्य कहते हैं कि सर्व जगत् आनन्द स्वरूपी श्रीरामचन्द्रजी के षडक्षर तारक मन्त्र का वाराणसी में वृषभ वाहन वाले संसार के समस्त प्राणियों का मङ्गलकारी शिवजी जप होम एवं अर्चना आदि के साथ हजारों मन्वन्तर काल पर्यन्त जप किये। जप होम आदि भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की प्रसन्नता के कारण हैं। काशी नगरी में मरे हुए जीवों के मोक्षलाभ कराने के लिये भगवान् श्रीरामचन्द्रजी को प्रसन्न करने के लिये तत्पर भगवान् शङ्कर का भगवान् के अन्य मन्त्रों के होने पर भी श्रीरामचन्द्रजी का षडक्षर तारक श्रीराम महामन्त्र का जप उसकी सर्वश्रेष्ठता को प्रकाशित करता है। भगवान् शङ्कर के ऊपर प्रसन्न भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ने श्रीशङ्करजी को कहा, भगवान् श्रीरामचन्द्रजी श्रीशङ्करजी को कहते हैं कि जो आपको अभीष्ट है वह वर आप मांग लें, हे परमेश्वर आपको वह अभिमत वर प्रदान करूँगा। परमेश्वर शिवजी को भी अभीष्ट वर प्रदायक होने से भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का उन सभी देवताओं के भी परम देवता, ईश्वरों के भी परम महेश्वर इस श्रुति वचन का विषय श्रीरामजी ही हैं यह सुस्पष्ट किया जाता है ॥५-६॥

卐 सहोवाच 卐

**मणिकर्ण्यां वा मत्क्षेत्रे गङ्गायां वा तटे पुनः।**
**म्रियते देहि तज्जन्तोमुक्तिं नातोवरान्तरम् ॥७॥इति।**

**मणिकर्णिकागङ्गातटयोः क्षेत्रान्तर्गतत्वात् पृथग् द्वयोर्ग्रहणात् ज्ञायते, 'वदान्यात् कृपण इव मुक्तिमतिदुर्लभं विज्ञाय उक्तस्थले अन्यत्र वा यत्र तवेच्छा भवेत् मृतस्य प्राणिनः मुक्तिं देहि इति शङ्करः श्रीरामं प्रार्थितवान्। प्राणिनमृतस्य अन्यतरस्मिन् मुक्तिविषये सन्दिहान आह नातोवरान्तरमिति। अस्य वरस्याति दुर्लभत्वादेनं विहायान्यं वृणीष्वेति वारणायाह नातो वरान्तरमस्यैवाभीष्टत्व मितिभावः ॥७॥**

मणिकर्णिका और गंगा तट का महादेव के क्षेत्रान्तर्गत होने से अलग-अलग दोनों का उपादान करने से ज्ञात होता है कि जैसे किसी अत्यन्त उदार व्यक्ति से कृपण व्यक्ति याचना करता हो उस तरह मुक्ति को अत्यन्त दुर्लभ समझ कर जहां पर आपकी इच्छा हो वहां पर मरे हुए प्राणी को मुक्ति प्रदान करें। इसप्रकार भगवान् शङ्करजी भगवान् श्रीरामचन्द्रजी से प्रार्थना किये। मरे हुए प्राणी का मणिकर्णिका अथवा गङ्गा

तट दोनों में से किसी एक स्थान पर मोक्ष के विषय में सन्देह करते हुए शङ्करजी कहते हैं कि इस वरदान को छोडकर दूसरा कोई वरदान नहीं चाहिये। इस वरदान को अत्यन्त दुर्लभ होने के कारण इसे छोडकर कोई दूसरा वरदान मांग लो इस आशय का निवारण करने के लिये कहते हैं कि इससे भिन्न वरदान नहीं चाहिये ऐसा तात्पर्य है ॥७॥

अथ सहोवाच श्रीरामः-

**क्षेत्रेऽस्मिन् तव देवेश ? यत्र कुत्रापि वा मृताः ।**
**कृमिकीटादयोप्याऽशु मुक्ताः सन्तु न चान्यथा ॥८॥**

महादेववरयाचना प्रार्थनानन्तरं स भगवान् श्रीरामचन्द्रः उवाच-हे देवेश वृषभध्वज ? अस्मिन् मणिकर्ण्याम् गंगातटे च मृतस्य जन्तोः मुक्तिं देहि इति तव प्रार्थनां स्वीकृत्य शुद्धाशुद्धस्थानयोरपि क्षेत्रद्वये यत्र कुत्रापि मृताः ब्रह्मणः आरभ्य कृमिकीटादयः आदिशब्दात् ततोऽपि निकृष्टजन्तवः मृताः भविष्यन्ति ते सर्वेऽपि अतिशीघ्रमेव मुक्ताः भवन्तु अन्यथा न भवेदिति वरप्रदानमकरोत् ।

अत्र शिवोक्तस्य क्षेत्रविशेषे मुक्तिप्रार्थनावचनस्य क्षेत्रैकदेशे मुक्तिप्रार्थना बोधकत्वे सर्वक्षेत्रदेशमृतजन्तुमुक्तिप्रार्थनाबोधकत्वे वा न काचित् हानिः न लाभाधिक्यं वा । श्रीरामवरबोधकत्वे क्षेत्रसर्वदेशमृतजन्तुमुक्तिबोधकत्वे वा न लाभः न वा काचित् हानिः अतः श्रीरामवरवाक्यस्य स्फुटमशेषक्षेत्रेषु मृतजन्तु मोक्षबोधकत्वेन शिवस्याभीष्टसिद्धेः । 'आशु' इतिपदेन च देहत्यागसमकालोप दिष्टमन्त्राव्यवहितसमयं सूचयन् महतामपि पापानां क्षणमात्रेण भोगेन क्षयं प्रकाशयति । बहुकालफलभोगानन्तरं न मुक्ताः सन्तु अपितु आशु मुक्ताः सन्तु । 'अन्यथा' इतिवचनेन 'रामोद्विर्नाभिभाषते' इतिस्मरणात् यत् अभीष्टं वरं त्वया प्रार्थितं तन्मया दत्तं तद्विपरीतं न भवेदितिभावः ॥८॥

जब भगवान् शिवजी वर सम्बन्धी प्रार्थना किये उसके पश्चात् श्रीरामचन्द्रजी कहे कि-हे देवेश वृषभध्वज ? इस मणिकर्णिका अथवा गङ्गा तट पर मरे हुए प्राणी के लिये मुक्ति प्रदान करिये इससे भिन्न दूसरा वर नहीं चाहिये इस प्रार्थना को स्वीकार करता हूँ। पवित्र स्थान हो या अपवित्र स्थान हो आपके इन दोनों क्षेत्रों में जहां कहीं भी मरे हुए ब्रह्मा से लेकर कृमिकीटादि पर्यन्त आदि शब्द से उससे भी निकृष्ट प्राणी

प्राण त्याग करेंगे ये सभी के सभी अत्यन्त शीघ्र ही मुक्त हो जाँय । इसके विपरीत नहीं होगा इसप्रकार कहे ।

यहां पर भगवान् शिवजी के द्वारा कहा गया क्षेत्र विशेष में मोक्ष प्राप्त होने के प्रार्थना वचन का क्षेत्र के एक भाग में मुक्ति की प्रार्थना बोधकता में या सभी क्षेत्रों में मृत प्राणियों की मुक्ति प्रार्थना बोधकता में न तो कोई लाभ है या न हानि है, यानी इसमें कोई लाभ हानि नहीं है अतः श्रीरामचन्द्रजी के वरदान वाक्य का स्पष्ट अर्थ है कि समग्र पंचकोशी क्षेत्रों में मृत प्राणियों के मोक्ष बोधकता होने से ही शिवजी की अभीष्ट सिद्ध होने के कारण आशु पद के द्वारा देह त्याग के समकाल में उपदेश दिया गया मन्त्र श्रवण के अव्यवहित उत्तर काल को सूचित करता हुआ यह प्रकाशित करता है कि महान् से महान् पापों का क्षण मात्र में ही भोग से विनाश हो जाता है। बहुत समय तक फल भोग करने के पश्चात् मुक्त न हो अपितु अत्यन्त शीघ्र ही मुक्त हो जाय । अन्यथा इस वचन के द्वारा भगवान् श्रीरामचन्द्रजी दोहरा कर नहीं बोलते हैं यानी श्रीरामजी जो बोलते हैं उसे पूर्ण करते हैं असत्य भासण कभी नहीं करते हैं। इस वचन का स्मरण होने से जो अभिमत वरदान देने की याचना आपके द्वारा की गयी है, वह मुझ से दे दिया गया । इसके विपरीत नहीं होगा यह भाव है ॥८॥

**अविमुक्ते तव क्षेत्रे सर्वेषां मुक्तिसिद्धये ।**
**अहं सन्निहितस्तत्र पाषाणप्रतिमादिषु ॥९॥**

**क्षेत्रेऽस्मिन् योऽर्चयेद् भक्त्या मन्त्रेणानेन मां शिव ?।**
**ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥१०॥**

**त्वत्तो वा ब्रह्मणोवापि ये लभन्ते षडक्षरम् ।**
**जीवन्तो मन्त्रसिद्धाः स्युरन्ते मां प्राप्नुवन्ति च ॥११॥**

हे शिव ? तव अस्मिन् अविमुक्ते क्षेत्रे सर्वेषामविचारिताधिकारानधिकाराणां मोक्षलाभसफलता प्राप्तये तत्र पाषाणप्रतिमाप्रभृतिषु अहं श्रीरामः समुपस्थितः तिष्ठामि । ननु 'अन्यक्षेत्रे कृतं पापं तीर्थक्षेत्रे विनश्यति । तीर्थक्षेत्रे कृतं पापं गुरुक्षेत्रे प्रणश्यति । गुरुक्षेत्रे कृतं पापं वज्रलेपो भविष्यति' इत्युक्तेः क्षेत्रान्तरेषु कृतानां पापानामविमुक्तक्षेत्रदर्शनमात्रेण विनाशेऽपि वाराणसीकृत पापानां तु वज्रलेपतया बहुकालभोगेनापि विनाशासम्भवात् कथं मुक्तिसिद्धिरिति

विप्रतिपन्नः स्वक्षेत्रवासिनां विमोक्षाय मया परिश्रमेण श्रीरामचन्द्रं तोषयित्वा तादृशे वरेलब्धेऽपि क्षेत्रकृतपापनिमित्तकमसहनीयं दुःखं तदवस्थमेवेति चिन्ता ग्रस्तं शिवमालक्ष्यमन्त्रान्तरमाह-

हे देवेश ? शिव ? यः कोऽपि अविमुक्तक्षेत्रकृतपापः मम तारकमन्त्रेण पाषाणप्रतिमादिषु अर्चयेत् । अथवा केवलमन्त्रजपेनैव अर्चयेत् स भक्तिपूर्वक मर्चनापरायणो नरो ब्रह्महत्याप्रभृतिभ्यः सर्वेभ्योऽपि पापेभ्यो ग्रस्तः सन्नपि मदर्चनात्सद्गुरूपलब्धब्रह्मतारकषडक्षरमहामन्त्रजपाच्च विनष्टपापो भवति, तेन तमाशुमोक्षयिष्यामि । अत्र विषये शोकं माकार्षीः । वचनमिदं काशीकृतपाप प्रायश्चित्ताभिप्रायसूचकम् तदुक्तं 'य एतत्तारकं ब्राह्मणो नित्यमधीते स पाप्मानं तरति ।

इदानीं शिवस्य स्वक्षेत्रवासीनामात्मीयत्वेन समेषां तेषां मुक्तये आग्रहमव लोक्य स्वस्याशेषजीवस्वामीत्वात् सर्वदेशसर्वकालमृतानामपि स्वधामप्राप्तये मन्त्रान्तरमाह-त्वत्तः शिवात् अथवा ब्रह्मणः अपि ये षडक्षरं तारकं मन्त्रं यथा शास्त्रं लभन्ते ते जीवनदशायामपि मन्त्रसिद्धाः भवेयुः । देहत्यागावशाने च ते मां प्राप्नुवन्ति । न च इदानींतनानां ब्रह्मरुद्राभ्यां षडक्षरलाभाभावात् कथं तत्प्राप्तिः इतिवाच्यम् । अद्यापि तेषां परम्परया तदुपदेशसत्वात् । अतः उक्तम् 'आशुमुक्ताः सन्तु' इति ॥९-१०-११॥

हे शिव ? आपके इस अविमुक्त नामक वाराणसी क्षेत्र में सभी प्राणियों का विना विचार किये ही सभी प्राणियों को मोक्ष लाभ की सफलता प्राप्त करने के लिये जगह जगह पर पाषाण प्रतिमा आदि में मैं श्रीरामचन्द्रजी समुपस्थित होकर रहता हूँ। प्रश्न उठता है कि अन्य क्षेत्रों में किये गये पापों का अविमुक्त क्षेत्र वाराणसी का दर्शन मात्र से बिनाश हो जाने पर भी वाराणसी क्षेत्र में किये गये पापों का तो वज्र लेप के समान अत्यन्त कठोर होने से बहुत दीर्घकाल पर्यन्त भोग करने पर भी विनाश होना सम्भव नहीं होने से मुक्ति की सफलता कैसे होगी इस दुविधा में पडे हुए अपने क्षेत्र में निवास करने वाले के विशेष मोक्ष के लिये मुझ शङ्कर से परिश्रम के द्वारा श्रीरामचन्द्रजी को प्रसन्न करके इसप्रकार का वरदान प्राप्त होने पर भी क्षेत्र में किया गया पाप के निमित्त से नहीं सहन करने योग्य दुःख उसी पुरानी स्थिति से ही होगी इस चिन्ता में पडे हुए श्रीशिवजी को देख अन्य मन्त्र को कहते हैं-हे देवराज शङ्करजी?

जो कोई भी अविमुक्त वाराणसी क्षेत्र में पाप करने वाला प्राणी मेरे इस षडक्षर तारक मन्त्र के द्वारा पाषाण प्रतिमा आदि में अर्चना करेगा या केवल षडक्षर तारक मन्त्र जप से ही पूजा करेगा, वह भक्तिपूर्वक अर्चना परायण मानव ब्रह्महत्या आदि सभी तरह के पापों से ग्रस्त होने पर भी मेरी उपासना करने से विनष्ट पाप हो जाता है। इसकारण से उन प्राणियों को मैं अतिशीघ्र मोक्ष प्राप्त करा देता हूँ। इस विषय में आप किसी तरह की चिन्ता नहीं करिये। यह वचन जिसने काशी में निवास करके पाप किया है उसके अभिप्राय से कहा गया है। यही विषय पूर्व में कहा गया है कि-जो इस षडक्षर ब्रह्मतारक श्रीराम मन्त्र को ब्राह्मण प्रतिदिन अध्ययन करता है वह समस्त पापों को तरण करलेता है।

इस समय भगवान् शङ्करजी के अपने वाराणसी क्षेत्र में निवास करने वालों के प्रति आत्मीय भाव होने के कारण उनके मोक्ष के लिये आग्रह को देखकर और अपना समस्त चराचर जगत् का स्वामित्व के कारण सभी देश और सभी काल में मृत प्राणियों का भी अपना परमधाम प्राप्ति के लिये दूसरा मन्त्र प्रारम्भ करते हैं-

आप शङ्करजी से अथवा ब्रह्माजी के द्वारा भी जो षडक्षर तारक श्रीराम मन्त्र को प्राप्त करते हैं वे जीवन दशा में ही मन्त्र सिद्ध होंगे, और इस देह का अवसान होने पर वे मुझ श्रीरामचन्द्रजी को प्राप्त करते हैं। यदि कहें कि वर्तमान समय के लोगों को ब्रह्माजी और शङ्करजी के द्वारा षडक्षर मन्त्र का लाभ नहीं होने से किस तरह उन्हें मोक्ष की प्राप्ति होगी ? यह नहीं कहना चाहिये क्योंकि आज भी उनकी परम्परा के द्वारा आचार्य मुख से श्रीराममन्त्र प्राप्त होना सम्भव है एवं हो रहा है। उन्हीं से साक्षात् नहीं तो परम्परया सम्भव हैं इसलिये कहा है-अति शीघ्र मुक्त होवें।

तदत्रानुसन्धेयम्-'**इममेव मनुं पूर्वं साकेतपतिर्मामवोचत्। अहं हनुमते मम प्रियाय प्रियतराय। स वेद विदिने ब्रह्मणे। स वशिष्ठाय। स पराशराय। स व्यासाय। स शुकाय। इत्येषोपनिषद्। इत्येषा ब्रह्मविद्या।** (श्रीमैथिलीमहोपनिषद् ५)

प्रकृत उपनिषद् में लाट्यायन प्रभृति महर्षियों को विशिष्ट तत्त्वोपदेशान्तर श्रीराम महामन्त्रराज की परम्परा के विषय में सर्वेश्वरी श्रीसीताजी कहती हैं-यही षडक्षर श्रीराम महामन्त्र को दिव्यलोक श्रीसाकेत में श्रीसाकेताधिनायक सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी ने मुझे कहा अर्थात् सविधि उपदेश दिया। मैने मेरे प्रियातिप्रिय सेवक मरुत नन्दन श्रीहनुमानजी को यथा शास्त्र विधि विधान से उपदेश दिया। श्रीहनुमानजी

ने भी शास्त्रीय विधान से वेद के ज्ञाता श्रीब्रह्माजी को उपदेश दिया। श्रीब्रह्माजी ने भी शास्त्र विधान के अनुसार ही स्वमानस पुत्र श्रीवशिष्ठजी को उपदेश दिया। श्रीवशिष्ठजी ने शास्त्रीय विधि से श्रीपराशरजी को उपदेश दिया। श्रीपराशरजी ने शास्त्र विधि के अनुसार श्रीव्यासजी को उपदेश दिया। श्रीव्यासजी ने शास्त्र विधि-विधानानुसार श्रीशुकदेवजी को उपदेश दिया। यही उपनिषद् श्रीरामचन्द्रजी के दिव्यधाम श्रीसाकेत में जाने का साधन है यानी शास्त्रीय विधि से श्रीगुरुमुख से प्राप्त तारक श्रीराम महामन्त्र के अनुष्ठान से ही सायुज्य मुक्ति या श्रीराम प्राप्ति की जा सकती है अन्य साधनों से नहीं। यही ब्रह्मविद्या है-उपरोक्त क्रम से सत् आचार्य परम्परा प्राप्त श्रीराम मन्त्रराज से या उसके सविधि सदनुष्ठान से जीवों की मुक्ति होती है अतः यह ब्रह्मविद्या इस नाम से संसार में प्रसिद्ध है। इससे यह स्फुटित हुआ कि श्रीसम्प्रदाय की परम्परा निम्न रूपसे है-१-सर्वेश्वर श्रीरामजी २-सर्वेश्वरी श्रीसीताजी ३-श्रीहनुमानजी ४-श्रीब्रह्माजी ५-श्रीवशिष्ठजी ६-श्रीपराशरजी ७-श्रीव्यासजी ८-श्रीशुकदेवजी।

गुह्यतम वेदार्थ तत्त्वों के प्रचारक-प्रसारक संहिता शास्त्रों ने श्रीसम्प्रदाय परम्परा तत्त्व को निम्न रूपसे वर्णन किया है-

ψ श्रीवशिष्ठसंहिता ψ

**श्रृणु वदामि ते वत्स ? मन्त्रराजपरम्पराम्।**
**यस्याश्च वन्दनाद् रामश्चात्यन्तं हि प्रसीदति।**
**सृष्ट्यादौ च सिसृक्षुः श्रीरामोविधिं विधाय हि।**
**सृष्टये प्रेसयामास वेदं ज्ञानमहानिधिम्॥**
**तथाप्यर्थावबोधस्याभावाद्विधिः ससर्ज न।**
**जातायामीशभक्तौ च गुरुभक्तिर्यतो नहि॥**
**भक्तिद्वये यतश्चास्ति तत्त्वप्रकाशहेतुता।**
**ततो वेदार्थबोधो न गुरोर्भक्तेरभावतः॥**
**ततो रामस्य खेदं हि समुद् वीक्ष्य च मैथिली।**
**गृहीत्वा विधिवद् रामान्मन्त्रराजं षडक्षरम्॥**
**हनुमते च दत्त्वा तं राममन्त्रं षडक्षरम्।**
**विधये मन्त्रदानाय प्रेरयामास मारुतिम्॥**

महर्षि पराशरजी के श्रीराम मन्त्र परम्परा विषयक जिज्ञासा करने पर ब्रह्मर्षि श्रीवशिष्ठजी ने श्रीराम महामन्त्र का महत्व एवं पूर्व भूमिका बताते हुये कहा कि सर्वेश्वरी श्रीसीताजी ने सर्वेश्वर श्रीरामजी से प्रार्थना पूर्वक सविधि षडक्षर श्रीराम महामन्त्र की दीक्षा-शिक्षा प्राप्तकर यथानियम श्रीहनुमानजी को प्रदान की एवं उन्हें प्रेरित किया कि ब्रह्माजी को यथाशास्त्र उपदेश करो। इससे यह ज्ञात हुआ कि ऊपर उपनिषद् में वर्णित क्रमानुसार ही श्रीसम्प्रदाय परम्परा सुस्थिर है।

ॐ श्रीअगस्त्यसंहिता ॐ

ब्रह्मा ददौ वशिष्ठाय स्वसुताय मनुं ततः।
वशिष्ठोऽपि स्वपौत्राय दत्तवान् मन्त्रमुत्तमम् ॥
पराशराय रामस्य मन्त्रं मुक्तिप्रदायकम्।
स वेदव्यासमुनये ददावित्थं गुरुक्रमः ॥
वेदव्यासमुखेनात्र मन्त्रो भूमौ प्रकाशितः।
वेदव्यासो महातेजः शिष्येभ्यः समुपादिशत् ॥

प्रस्तुत अगस्त्य संहिता के श्लोकानुसन्धान से यही अवगत होता है कि यह क्रम श्रीवशिष्ठ संहितानुकूल ही है।

ॐ श्रीवाल्मीकिसंहिता ॐ

इदं तु परमं तत्त्वं देवानामप्यगोचरम्।
पृष्टं युष्माभिरनघं कथ्यते श्रृणुतर्षयः ॥
भगवान् रामचन्द्रो वै परं ब्रह्म श्रुतिश्रुतः।
दयालुः शरणं नित्यं दासानां दीनचेतसाम् ॥
इमां सृष्टिं समुत्पाद्य जीवानां हितकाम्यया।
आद्यां शक्तिं महादेवीं श्रीसीतां जनकात्मजाम् ॥
तारकं मन्त्रराजं तु श्रावयामास ईश्वरः।
जानकी तु जगन्माता हनुमन्तं गुणाकरम् ॥
श्रावयामास नूनं स ब्रह्माणं सुधियांवरम्।
तस्माल्लेभे वशिष्ठर्षिः क्रमादस्मादवातरत् ॥
भूमौ हि राममन्त्रोऽयं योगिनां सुखदः शिवः।
एवं क्रमं समासाद्य मन्त्रराजपरम्परा ॥

प्रस्तुत श्रीवाल्मीकि संहिता उपरोक्त उपनिषद् मार्ग को ही प्रस्फुटित करती है। इन्हीं उपनिषद् तथा संहिताओं में वर्णित श्रीसम्प्रदायीय परम्परा को ही जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी ने आबद्धकर अपनी परम्परा प्रस्तुत की है-

ψ गीतानन्दभाष्यम् ψ

**श्रीरामं जनकात्मजामनिलजं वेधो वशिष्ठावृषी**
**योगीशं च पराशरं श्रुतिविदं व्यासं जिताक्षं शुकम्।**
**श्रीमन्तं पुरुषोत्तमं गुणनिधिं गङ्गाधराद्यान्यतीन्**
**श्रीमद्राघवदेशिकं च वरदं स्वाचार्यवर्यं श्रये॥**

यानी अव सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी के निर्देशानुसार श्रीब्रह्माजी सम्बन्धी क्रम बद्ध परम्परा यों बनी १-सर्वेश्वर श्रीरामजी २-सर्वेश्वरी श्रीसीताजी ३-श्रीहनुमानजी ४-श्री ब्रह्माजी ५-श्रीवशिष्ठजी ६-श्रीपराशरजी ७-श्रीव्यासजी ८-श्रीशुकदेवजी ९-श्री पुरुषोत्तमाचार्यजी बोधायन (वि.पू. ५६९-३२०) १०-श्रीगङ्गाधराचार्यजी (वि.पू. ४८९-२८९) श्लोक के आदि शब्द से ११-श्रीसदानन्दाचार्यजी (वि.पू. ३३७-८०) १२-श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजी (वि. पू. १३६-२३६ वि.) १३-श्रीद्वारानन्दाचार्यजी (१९६-३७६) १४-श्रीदेवानन्दाचार्यजी (३२६-५२६) १५-श्रीश्यामानन्दाचार्यजी (४८६-६८६) १६-श्रीश्रुतानन्दाचार्यजी (६३६-८३६) १७-श्रीचिदानन्दाचार्यजी (७४६-८९६) १८-श्रीपूर्णानन्दाचार्यजी (८६६-१०६७) १९-श्रीश्रियानन्दाचार्यजी (१०२६-१२०६) २०-श्रीहर्यानन्दाचार्यजी (११५६-१३५६) २१-श्रीराघवानन्दाचार्यजी (१२०६-१३९६) २२-वें में स्वयं आनन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी (१३५६-१५३२) आगे की अविच्छिन्न परम्परा निम्नानुसार है २३-श्रीभावानन्दाचार्यजी (१३७६-१५३९) २४-श्रीअनुभवानन्दाचार्यजी (१५०३-१६११) २५-श्रीविरजानन्दाचार्यजी (१५५०-१७७५) २६-श्रीआशारामाचार्यजी-हाथीरामजी (१५६५-१७६८) २७-श्रीरामभद्राचार्यजी (१७३३-१७९८) २८-श्रीरघुनाथाचार्यजी (१७५७-१८०७) २९-श्रीविश्वंभराचार्यजी (१७७७-१८२७) ३०-श्रीराघवेन्द्राचार्यजी (१८०७-१८३८) ३१-श्रीवैदेहीवल्लभाचार्यजी (१८११-१८७१) ३२-श्रीकोसलेन्द्राचार्यजी (१८३५-१८८५) ३३-श्रीरामकिशोराचार्यजी (१८५१-१९११) ३४-श्रीजानकीनिवासाचार्यजी (१८५१-१९१५) ३५-श्रीसाकेतनिवासाचार्यजी (१८६७-१९३५) ३६-श्रीजानकीजीवनाचार्यजी (१८७५-१९०२) ३७-श्रीभरताग्रजाचार्यजी

(१८४८-१९२३) ३८-श्रीहनुमदाचार्यजी (१९०७-१९७८) ३९-महामहोपाध्याय जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरघुवराचार्यजी वेदान्तकेसरी श्रीरघुवरीयवृत्तिकार (१९४३-२००७) ४०-जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामप्रपन्नाचार्यजी योगीन्द्र (१९४४-२०४६) भाष्यदीपकार ४१-आनन्दभाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजी (१९८८) भाष्यप्रकाशकार महर्षि श्रीबोधायनजी (वि. पू. ५६९-३२०) से विश्रामद्वारका में संस्थापित श्रौत विशिष्टाद्वैतमत प्रचार-प्रसार परक आचार्यपीठ के वर्तमान पीठाचार्य हैं। जिन्हों ने श्रीरामानन्दसम्प्रदाय की श्री-ऐश्वर्य एवं दर्शन भण्डार के अमूल्यनिधि दोसौ से अधिक तात्विक दार्शनिक ग्रन्थों का निर्माणकर साधक-दर्शन जगत को प्रदान किया।

प्रकृत आर्ष प्रबन्धों के सामञ्जस्य में ही निम्न दिव्य प्रबन्ध-निबन्ध ग्रथित हुये हैं जिनके वास्तविक आलोक से श्रीसम्प्रदाय-श्रीरामानन्दसम्प्रदाय के वास्तविक स्वरूप का अवलोकन कर तथ्यों से अवगत हुआ जा सकता है-

१- आचार्यस्मृतिः १ से ३८ तक आचार्यों का चरित चित्रण है ले. महामहोपाध्यय जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरघुवराचार्यजी वेदान्तकेसरी।

२- आचार्यस्तुतिचन्द्रिका १ से ३९ तक आचार्यों की संस्तुति है ले. जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामप्रपन्नाचार्यजी योगीन्द्र।

३- प्राचार्यविजयध्वजः १ से २२ आचार्यों एवं ३६ द्वाराचार्यों का विवरण है ले. अभिनव वाचस्पति पण्डितसम्राट् स्वामी श्रीवैष्णवाचार्यजी।

४- आचार्यपरिचर्या १ से ४१ आचार्यों तथा ३६ द्वाराचार्यों का विवरण है ले. कविकिंकर श्रीबलरामदासजी त्यागी।

५- देशिकपरिचर्या १ से ४१ आचार्यों तथा ३६ द्वाराचार्यों का चित्रण है ले. आनन्दभाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजी।

६- श्रीसम्प्रदायदिग्दर्शन १ से ४१ आचार्यों तथा ३६ द्वाराचार्यों का विवरण है ले. रामायणी श्रीअबधेशदासजी।

७- परम्परावन्दनम् १ से ४० आचार्यों का स्तव है ले. आनन्दभाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजी

८- श्रीरामानन्दसम्प्रदाय का इतिहास १ से २२ आचार्यों का विवरण सम्पादक वैद्यराज श्रीत्रिभुवनदासजी शास्त्री।

९- आचार्यमङ्गलध्वजः १ से ४१ आचार्यों का चित्रण ले. आनन्दभाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजी

१०- श्रीरामानन्दसम्प्रदाय का इतिहास ३६ द्वाराचार्यों का चित्रण सम्पादक वैद्यराज श्रीत्रिभुवनदासजी शास्त्री ।

११- गुरुमहिम्नस्तोत्रम् १ से ४० आचार्यों का स्तवन ले. आनन्दभाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजी

१२- आचार्यकीर्तिलता १ से ४१ आचार्यों का चित्रण ले. पं. श्रीवैद्यनाथमिश्रजी ।

१३- जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यः १ से ४१ आचार्यों तथा ३६ द्वाराचार्यों का चित्रण ले. आनन्दभाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजी

१४- आचार्यकीर्तिरत्नमंञ्जूषा १ से ४१ आचार्यों के चरित्र चित्रण ले. विद्यावारिधि पं. श्रीघनेशझाजी ।

१५- श्रीशेषमठ-शींगडा ले. उमेशपाल वर्णवालजी ।

१६- श्रीरामानन्दसम्प्रदाय की पूर्व परम्परा का सांस्कृतिकपक्ष ले. श्रीपुष्पेन्द्र वर्णवाल आदि ॥११॥

**मुमुर्षोर्दक्षिणे कर्णे यस्य कस्यापि वा स्वयम् ।**
**उपदेक्ष्यसि मन्मन्त्रं स मुक्तो भविता शिव ? ॥१२॥**

**ज्ञानभक्त्याद्यनेकेषु मोक्षसाधनेषु सत्सु अपि षडक्षरतारकस्यात्यन्त सुकरत्वात् साधनान्तरनिपेक्षत्वात् उच्चारणमात्रसापेक्षत्वात्, सकलजीवाधिकारत्वात् अनुष्ठानानपेक्षत्वाच्च उपदेशमात्रेणैव सर्वेषां जीवानाम्मुक्तिरिति विज्ञाय यस्य कस्यापि दक्षिणे कर्णे मम मन्त्रमुपदेक्ष्यसि सोऽवश्यमुक्तोभवितेति, मां च प्राप्स्यतीत्यभिप्रायः ।**

ज्ञान भक्ति वैराग्य आदि अनेक मोक्ष प्राप्ति के उपायों के होने पर भी षडक्षर तारक ब्रह्म श्रीराम महामन्त्र का अत्यन्त सुकर होने के कारण अन्य मोक्ष साधनों से निरपेक्ष होने के कारण और अनुष्ठान आदि की अपेक्षा नहीं होने के कारण केवल उपदेश देने से ही समस्त जीवात्मा मात्र की मुक्ति होती है इस तात्पर्य को भलि भाँति समझ कर उन्नत अवनत योनि जाति देशकाल अवस्था आदि में भी विद्यमान जिस किसी प्राणी के भी दाहिना कान में सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी के षडक्षर तारक मन्त्र को

**अत्राविमुक्तक्षेत्रनिवासिनामकृतपापानां विनाशितपापानाञ्च प्राणोत्क्रमण काले रुद्रोपदिष्टषडक्षरमन्त्रश्रवणसमकाले मुक्तिः । अकृतप्रायश्चित्तानान्तु कालभैरवकृतयातनया विशुद्ध्यनन्तरं रुद्रोपदेशान्मुक्तिः श्रूयते । यातना अपि स्वप्नादिभोगवत् रुद्धकण्ठस्य सम्भवति, न तु देहत्यागानन्तरम् । 'जन्तोः प्राणेपूत्क्रममाणेषु रुद्रस्तारकं ब्रह्म व्याचष्टे' इतिसमानकालत्वज्ञापनात् । सपाप निष्पापभेदेनोपदेशभेदस्याश्रवणात् ।**

उपदेश करोगे वह जीवात्मा अवश्य ही मोक्ष को प्राप्त करेगा और अवसान काल में मुझे प्राप्त करेगा ।

यहां पर अविमुक्त क्षेत्र में निवास करने वाले जो कि कभी भी पाप कर्म नहीं किये हैं और जो मन्त्रोपासना आदि के द्वारा अपने अर्जित पापों का विनाश पूर्वकाल में ही कर चुके हैं ऐसे प्राणियों के प्राणों के निकलने के समय भगवान् रुद्र द्वारा उपदेश दिये गये षडक्षर तारक श्रीराम मन्त्र के श्रवण समकाल में ही मुक्ति हो जाती है। और जिन्होंने पाप किये हैं और पापों का प्रायश्चित्त नहीं किये हैं ऐसे प्राणियों का तो कालभैरव के द्वारा दी गई यातनाओं से पाप से विशुद्ध हो जाने के पश्चात् रुद्र के द्वारा तारक मन्त्रोपदेश के श्रवण से मुक्ति होती है। भैरवी यातनाओं के भी भोग स्वप्नादि भोग के समान मृत्यु के समय निरुद्ध कण्ठ प्राणी का हो सकता है। न कि देह त्याग करने के पश्चात् मुक्ति होती है। क्योंकि श्रुति कहती है प्राणी के प्राणों के निकलते हुए होने पर भगवान् रुद्र तारक मन्त्र का उपदेश करते हैं । इन दोनों का ही समान कालत्व प्रतिपादन किया गया है क्योंकि 'उत्क्रममाण' में वर्तमान अर्थ में शंतृ प्रत्यय किया गया है। तथा 'व्याचष्टे' में भी वर्तमानार्थक लट् लकार है अतः प्राणों का निकलता हुआ होना एवं रुद्रोपदेश दोनों समान कालीन है। पाप सहित एवं पाप रहित भेद से उपदेश भेद का श्रवण नहीं होने के कारण यह भेद समुचित नहीं लगता ।

पुराण आदि का कथन भी शास्त्रों की मर्यादा संरक्षण के लिए है अथवा अविमुक्त क्षेत्र में पाप करने वाले प्राणियों के नरक भोग का अवसर नहीं हो इसके लिए अथवा अविमुक्त क्षेत्र में जिन्होंने यथेष्ट मात्रा में पाप किये हैं उनकी निन्दा के द्वारा नरक भोग का परित्याग करने के लिये या किसी अन्य अभिप्राय से पुराणादि की उक्तियां सुसंगत हो सकती है। यदि ऐसा नहीं होता तो परम दयालु भगवान्

**पुराणाद्युक्तयोऽपि शास्त्रमर्यादार्थं वा अविमुक्तकृतपापानां नानादेश वासिनां नरकभोगवारणार्थमथवा । अविमुक्तकृतयथेष्टपापानां निन्दया नरकभोग हानार्थमन्याभिप्रायेण वोपपद्यन्ते । अन्यथा परमदयालोः शिवस्य निजक्षेत्र-वासिनामात्यन्तिकदुःखनिवृत्यर्थमियताश्रमेण श्रीरामं प्रसाद्यमुक्तियाचना कथमुपयुक्ता स्यात् । षडक्षरोपदेशात् न किञ्चित् पापमवशिष्यते यस्य निवृत्तये यातनावचनमुपपद्येत । यतोऽहिदेहत्यागसमकाले एव षडक्षरोपदेशसमकाले जीवमुक्तिः प्रारब्धस्यापि कर्मणः श्रीरामनामानुकीर्तनेन विनाशश्रवणात् तदुक्तं**

शंकरजी के अपने क्षेत्र में निवास करने वाले प्राणियों के आत्यन्तिक दुःखों की निवृत्ति के लिए इतना महान् परिश्रम के द्वारा भगवान् श्रीरामचन्द्रजी को प्रसन्न करके मुक्ति याचना करना किस प्रकार उपयुक्त हो सकेगी । षडक्षर तारक मन्त्र का उपदेश करने से पाप की कुछ भी मात्रा अवशिष्ट नहीं रह जाती है । जिस पाप की निवृत्ति के लिये यातना बोधक वचन युक्ति संगत हो सके क्योंकि जिस समय में शरीर का परित्याग करते रहते हुए हैं उसके समान काल में ही षडक्षर तारक ब्रह्म का उपदेश होता है। और उपदेश समकाल में ही जीवात्मा की मुक्ति हो जाती है । जिस कर्म का फल मिलना प्रारम्भ हो जाता है उसको प्रारब्ध कर्म कहते हैं । उस प्रारब्ध कर्म का भी भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के नाम का संकीर्तन करने से विनाश हो जाता है, ऐसा शास्त्रों में सुने जाने से प्रारब्ध कर्म मुक्ति प्राप्ति में बाधक नहीं है । 'साध्यभक्तिस्तु सा हन्त्री प्रारब्धस्यापि भूयसी' इस वचन एवं 'सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते । अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम' इस अभयदायक वचन प्रमाण से श्रीराम प्रपन्न होकर श्रीरामनाम के जप करने वाले का प्रारब्ध कर्म नाश हो जाता है' इसप्रकार आनन्दभाष्यकारजी ने गीता १८/६६ में निरूपण किया है विशेषार्थी वहीं देखें । यही विषय कहा गया है-

हजारों एवं करोडों पातक और उपपातक से उत्पन्न होने वाले भी समस्त पापपुञ्ज भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के नाम का संकीर्तन करने से विनष्ट हो जाता है । मन के द्वारा किया गया पाप हो या वचन के द्वारा अथवा कर्तव्य के द्वारा समुपार्जित पाप हो, जिस किसी भी प्रकार का पाप हो वह सब भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के स्मरण मात्र से ही तत्काल निश्चित रूपसे नष्ट हो जाता है । प्राणों के प्रस्थान के समय में जो जीवात्मा भगवान् श्रीरामजी के नाम का एक वार भी स्मरण करेगा वह सूर्यमण्डल

**"कोटिकोटिसहस्राणि ह्युपपातकजान्यपि । सर्वाण्यपि प्रणश्यन्ति रामनामानुकीर्तनात् । मानसं वाचिकं पापं कर्मणा समुपार्जितम् । श्रीरामस्मरणादेव तत्क्षण्णान्नश्यति ध्रुवम् । प्राणप्रयाणसमये यस्तु नामसकृत्स्मरेत् । स भित्वा मण्डलं भानोः परम्पदमवाप्नुयात्" इत्यादिपुराणवचनानामुक्तार्थप्रकाशकत्वात् षडक्षरोपदेशस्याऽशेषपापविनाशश्रवणात् यातनाशब्दस्याश्रवणात् च । योऽविमुक्तं पश्यति स जन्मान्तरितान् दोषान् नाशयतीति अविमुक्तदर्शनमात्रेण ब्रह्मसंहितादिषु च षडक्षरस्याशेषाघविनाशकत्वश्रवणात् । अविमुक्तकृतपापविनाशाय यातनावचनं नोपपद्यते । श्रूयते च परेशश्रीरामचन्द्रस्य यातनां विनैवायोध्यावासिनां सर्वेषां स्थावरजङ्गमानां स्वपरमधामप्रापकत्वम् । पुराणादिषु श्रुतं यातनावचनमन्यदेशाभिप्रायकं नत्वविमुक्ताभिप्रायकम् ।**

का भेदन करके परमधाम को प्राप्त करेगा । इत्यादि पुराणों में प्रतिपादित वचनों का पूर्व प्रतिपादित अर्थ का प्रकाशक होने से षडक्षर तारक मन्त्रोपदेश में सम्पूर्ण पापों के विनाश का सामर्थ्य है । तो यातना शब्द का इन वचनों में श्रवण नहीं होने के कारण असंगति बोधक होता है । जो व्यक्ति अविमुक्त नामक वाराणसी को देखलेता है वह व्यक्ति अन्य जन्मों में भी किये गये दोषों को विनष्ट करलेता है । इसप्रकार काशी क्षेत्र का दर्शन मात्र से ही पाप विनाश होता है । ऐसा ब्रह्मसंहिता आदि ग्रन्थों में भी कहा गया है कि षडक्षर तारक ब्रह्म में अशेष पाप पुञ्ज विनाशक क्षमता है। अविमुक्त क्षेत्र में किये गये पापों का विनाश करने के लिए भैरवी यातना होती है यह वचन उपयुक्त प्रतीत नहीं होता है और सुना भी जाता है कि भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के विना किसी प्रकार के यातना भोग के ही अयोध्या नगरी में निवास करने वाले समस्त स्थावर जङ्गम प्राणियों का अपने परमधाम प्राप्त कराना हुआ था। पुराण आदि ग्रन्थों में सुना गया यातना वचन का किसी अन्य देश में निवास करने वाले के अभिप्राय से हो सकता है, न कि अविमुक्त क्षेत्र वासी के अभिप्राय से । पुराण वचनों के विधान को उपेक्षा करके तिर्यग् योनि को प्राप्त करता है भले ही सुशान्त और सुदान्त भी हो किन्तु पुराण वचन के विपरीत आचरण करने वाला सद् गति को कहीं भी प्राप्त नहीं करता है। इस अग्नि पुराण के वचन के अनुसार पौराणिक वचनों का वेदार्थ सम्बर्धन स्वरूप होने से उलङ्घन करना उचित नहीं । वेद के रहस्यभूत अर्थ का प्रकाशक होने के कारण सभी पुराण वचनों का अपने तात्पर्य के विषय में प्रामाणिकता

''पुराणमन्यथाकृत्वा तिर्यग् योनिमवाप्नुयात् ।
सुशान्तोऽपि सुदान्तोऽपि न गतिं प्राप्नुयात् क्वचित् ॥

इत्यग्निपुराणवचनेन पुराणानां वेदार्थोपबृंहणरूपतया वेदगूढार्थप्रकाशकत्वेन सर्वेषां पुराणवचनानां स्वार्थे प्रामाण्यात् । 'क्षेत्रेऽस्मिन्' इत्यत्र 'माशुचः' इतिकथनेनाविमुक्तविषयपापिनो यातनां सूचयति, तद्भिन्नविषये शिवशोकानुपलभ्यात् । इत्थं श्रीरामं तद्भक्तान् वा ये न भजन्ते प्रत्युतदुर्वचोभिः दुराचरणैश्च ये अवजानन्ति पाषाणप्रतिमास्थितं न भजन्ते तत्कृते भैरवीयातनास्यादिति । अथवा प्राणेषूत्क्रममाणेष्वित्यत्र भूतकालार्थेवर्तमानत्वनिर्देशः स्वीकर्तव्यः । अन्यथा यातना हेतोः तारकोपदेशस्य सकलपापविनाशकत्वं न सिद्ध्येत । भूतकालार्थस्वीकारेतु पापरहितानां तारकोपदेशसमकाले मुक्तिः, काशीकृतपापानां श्रीरामपाषाणप्रतिमाद्यवहेलकानाञ्च भैरवीयातनाऽनन्तरं रुद्रद्वारातारकोपदेशान्मुक्तिरिति ।

प्राणप्रयाणसमये यस्तु नामसकृत् स्मरेत् ।
स भित्वा मण्डलं भानोः परम्पदमवाप्नुयादिति, स्मृतेः ॥

है । 'क्षेत्रेस्मिन्' इस वाक्य में 'शोक नहीं करें' इस कथन के द्वारा वाराणसी क्षेत्र में निवास करने वाले पापी जीवों की यातना को प्रकाशित करती है । वाराणसी से भिन्न क्षेत्र में निवास करने वाले के विषय में भगवान् शंकरजी का शोक होना सम्भव नहीं है । इसलिये वाराणसी निवासी पापियों के लिए ही भगवान् शंकर चिन्ता करते हैं । इसप्रकार भगवान् श्रीरामजी की अथवा श्रीराम भक्तों की जो सेवा नहीं करते हैं । प्रत्युत दूषित वचनों के द्वारा और दूषित आचरणों के द्वारा जो व्यक्ति श्रीराम और श्रीराम भक्त का अनादर करते हैं । पाषाण आदि की प्रतिमाओं में स्थित भगवान् श्रीरामजी का भजन नहीं करते हैं । उनके लिए यह कालभैरव की यातना होगी ऐसा सम्भव है । अथवा प्राणों के निकलते हुए होने पर इस वचन में भूतकाल अर्थ में वर्तमान काल का निर्देश किया गया है यह स्वीकार करना चाहिये । ऐसा स्वीकार नहीं करने पर भैरवी यातना के कारण का और तारक मन्त्रोपदेश का समस्त पाप विनाशकत्व सिद्ध नहीं हो सकेगा । यदि भूतकालार्थक वर्तमान प्रयोग मानते हैं तो पाप रहित प्राणियों का तारकोपदेश के समकाल में ही मुक्ति होती है । और जो काशी में निवास कर पाप किये हैं तथा श्रीरामचन्द्रजी के पाषाण प्रतिमा आदि की अवहेलना

**श्रुतेश्च तारकोपदेशः सञ्चिताघनाशप्रारब्धाघनाशौसूचयति । सूक्ष्माघ सत्वेऽपि न साक्षात्कारस्वरूपामुक्तिः सम्भाव्यते ।**

**'रामेति द्व्यक्षरोमन्त्रोमरणे यस्तु संस्मरेत् ।**
**नरो न लिप्यते पापैः पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥'**

**इत्थं देशान्तरस्थितैरपि मुमुक्षुभिः तारकस्मरणं नित्यं विधेयम् नित्यमधीतस्य तारकस्यान्तकालेऽपि स्मृतेः । सदा तत् स्मरणकर्तुर्निखिल पापविनाशपूर्वकं निर्विवादोमोक्षः पापरहितानां काश्यां देशान्तरे च निवासे समानेऽपि फले काशीवासादपि तारकाश्रयस्याधिक्यं फलं प्रकाशयति । अविमुक्त कृतपापानां यातनाभोगानन्तरं तारकोपदेशेनैव मोक्षश्रवणात् ।**

करने वाले हैं, उन्हें भैरवी यातना भोगने के पश्चात् भगवान् रुद्र के द्वारा तारकोपदेश करने से मुक्ति होती है, यह अभिप्राय बोध होता है।

प्राण-प्रयाण करते समय जो जीवात्मा एक वार भी भगवान् श्रीरामजी के नाम का स्मरण करता है वह तत्काल सूर्यमण्डल का भेदन करके परमपद को प्राप्त करता है, इस स्मृति एवं श्रुति वचनों से स्पष्ट अवगत होता है कि तारक मन्त्रोपदेश संचित पापों का विनाश एवं प्रारब्ध कर्म का विनाश दोनों कार्य एक साथ करता है। सूक्ष्म अंशों में यदि पाप का अन्त हो जाय तो साक्षात्कार स्वरूप तथा मुक्ति दोनो सम्भव नहीं है ऐसी सम्भावना नहीं की जा सकती है। जो व्यक्ति मृत्यु काल में 'राम' इस दो अक्षर मन्त्र का सम्यक् प्रकार से स्मरण करता है वह पाप से उसीप्रकार लिप्त नहीं होता है जैसे कमल का पत्ता पानी से लिप्त नहीं होता है अतः अन्य देशों में विद्यमान भी मुमुक्षुओं के द्वारा तारक मन्त्र का स्मरण नित्य प्रतिदिन अवश्य ही करना चाहिये प्रतिदिन अध्ययन किया हुआ तारक मन्त्र का देह के अन्त काल में भी स्मरणजनकत्व हो सकता है। सदैव तारक मन्त्र के स्मरण करने वाले का समस्त पापों का विनाशपूर्वक मुक्त होना निर्विवाद है। जो पाप रहित है, ऐसे प्राणियों का काशी में और अन्य देश में निवास करने में समान रूपता होने पर भी फल प्राप्ति में काशी निवास से भी तारक मन्त्र की अधिकता फल में है, इस आशय को प्रकाशित करता है। अविमुक्त क्षेत्र में जो पाप किये हैं, उनका भैरवी यातना भोग लेने के पश्चात् तारक मन्त्र के उपदेश से ही मोक्ष होता है ऐसा सुना जाता है, इसलिए तारक मन्त्र का किसी अन्य सहायक साधनों की अपेक्षा नहीं होने के कारण तारक जप परायण व्यक्ति का

**तस्मात् तारकस्य सहायान्तरानपेक्षत्वात् तारकजपपरायणस्योपायान्तर शून्यस्य यथाकथञ्चिद् यत्रकुत्रापि स्थितस्य प्रारब्धकर्मफलावसानेऽशेषाघ विनाशपुरस्सरं मोक्षोनिर्विवादः । सुकरोपायत्वादभिमतसाधकत्वादशेषफल प्रदायकत्वाच्च सर्वमन्त्रश्रेष्ठत्वमपि विवादशून्यमेव ॥१२॥**

जो तारक मन्त्र को छोडकर अन्य उपाय से शून्य है उस व्यक्ति का जिस किसी प्रकार से जिस किसी स्थान पर स्थित रहने पर भी प्रारब्ध कर्मों के फल भोगों के अन्तकाल में समस्त पापपुञ्ज का विनाश पूर्वक मोक्ष होता है यह सिद्धान्त निर्विवाद है। अत एव अत्यन्त सरल उपाय होने के कारण और अपने अभिमत प्रयोजन को सिद्ध करने वाला होने से तथा समस्त फल प्रदायक होने से सभी मन्त्रों में तारक मन्त्र की श्रेष्ठता है यह विषय भी विवाद शून्य ही है ॥१२॥

**श्रीरामचन्द्रेणोक्तं योऽविमुक्तं पश्यति ।**
**स जन्मान्तरितान् दोषान् वारयति । तान् पापान्नाशयतीति ॥१३॥**

卐 इति चतुर्थकण्डिका 卐

**अस्याः कण्डिकाया अवसाने वरणायां नाश्यां मध्ये प्रतिष्ठितमविमुक्तमिति पूर्वोक्तं दृढयन् कथयति श्रीरामचन्द्रेण भगवता स्वपरमकृपया यदुक्तमविमुक्तं तं यः पश्यति ज्ञानचक्षुषा साक्षादवलोकयति । सोऽनन्तजन्मोपार्जितान् मनोवा क्कायकृतान् पापान् निवारयति । तत्तद्विषयेभ्य इन्द्रियाणि निरुद्ध्यापि उपार्जितान् पापान् निषिद्धाचरणरूपान् वा प्रबलतरान् पापान् नाशयतीति । इतिशब्दः कण्डि कासमाप्त्यर्थः ॥१३॥**

卐 इति चतुर्थकण्डिका 卐

इस चतुर्थ कण्डिका के अवसान में वरणा और नाशी के अन्तराल क्षेत्र में प्रतिष्ठित अविमुक्त को जो पहले कह चुके हैं उसका दृढीकरण करते हुए कहते हैं-> भगवान् मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी के द्वारा अपने जीव मात्र पर परम अनुकम्पा से जो अविमुक्त कहा गया है उस अविमुक्त को ज़ो देखता है अर्थात् अपनी ज्ञान दृष्टि से अवलोकन करता है। या साक्षात्कार करता है, वह अनन्त जन्मों द्वारा समुपार्जित मन वचन काया के द्वारा किये गये पापों को निवारित करता है। अर्थात् सैकडों जन्मों से अर्जित पापों को नष्ट कर देता है। उन-उन विषयों से इन्द्रियों को रोककर भी उपार्जन किये गये पाप कलाप को या निषिद्ध आचरण रूप पापों को ऐसे अत्यन्त

प्रबल पापों को नष्ट करता है। यहां पर इति शब्द चतुर्थ कण्डिका की समाप्ति सूचक है ॥१३॥

**अथ हैनं भरद्वाजो याज्ञवल्क्यमुवाचाथ कैर्मन्त्रैः स्तुतः श्रीरामः प्रीतो भवति स्वात्मानं दर्शयति तन्नो व्रूहि भगवन्निति ॥१॥**

अथ पूर्वं यत् श्रीरामचन्द्रस्य सर्वशब्दवाच्यत्वं सर्वावतारित्वमित्यादि निर्दिष्टं 'ब्रह्मणोरूपकल्पना, सर्ववाच्यस्य वाचकः' इत्यादि तदेव पञ्चमकण्डिकायां स्पष्टीकरोति। एवं योगीश्वरं याज्ञवल्क्यं भारद्वाजः पुनः पप्रच्छ भगवन्? श्रीरामचन्द्र यैः मन्त्रैः संस्तुतः प्रसन्नोभवति स्वात्मानं च दर्शयति, ते के मन्त्रास्तदस्मान् कृपया भवान् कथयतु। श्रीरामचन्द्रोपदेशविषयीकृतं तापनीयमभिप्रायं सर्वरूपिणं सर्ववाच्यं श्रीरामं निर्णीय श्रीरामं प्रणम्य याज्ञवल्क्य उक्तवान् ॥१॥

इसके वाद जो पहले श्रीरामचन्द्रजी का सर्वशब्द वाच्यत्व सर्वावतारित्व इत्यादि प्रतिपादित किया गया है 'ब्रह्म के रूप की कल्पना सभी शब्दों के प्रतिपाद्य अर्थ का वाचक' इत्यादि वही विषय इस उपनिषद् के पञ्चम कण्डिका में अस्पष्ट अभिप्राय को सुस्पष्ट करते हैं।

उन योगीश्वर याज्ञवल्क्यजी से श्रीभरद्वाज ऋषि पुनः प्रश्न किये। हे भगवन् याज्ञवल्क्य? भगवान् श्रीरामचन्द्रजी जिन मन्त्रों के द्वारा सम्यक् स्तुति का विषय बनाये जाने पर प्रसन्न होते हैं। और अपने परम दिव्य मङ्गल विग्रह का साक्षात् दर्शन कराते हैं वे कौन से मन्त्र हैं, उन मन्त्रों को हमलोगों को परम कृपापूर्वक आप बतायें। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के द्वारा उपदेश दिये गये श्रीरामतापनीय उपनिषद् के अभिप्राय स्वरूप सर्वरूपी सर्वशब्द प्रतिपाद्य भगवान् श्रीरामजी को निश्चित कर भगवान् श्रीरामजी को प्रणाम करके याज्ञवल्क्यजी श्रीभरद्वाज को कहे ॥१॥

**सहोवाच याज्ञवल्क्यः श्रीरामेणैवं शिक्षितो ब्रह्मा पुनरेतया गाथया नमस्करोति ॥२॥**

स याज्ञवल्क्यः उक्तवान् भगवता श्रीरामचन्द्रेणैवोपदिष्टः, ब्रह्मा भूयः वक्ष्यमाणया गाथया प्रणमति। याज्ञवल्क्यः शिष्टाचारपूर्वकं विश्वाधारमित्यादि कथयति तदाह ॥२॥

वे याज्ञवल्क्यजी श्रीभरद्वाजजी को कहे-भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के द्वारा उपदेश दिये गये ब्रह्माजी पुनः आगे कही जाने वाली गाथा के साथ प्रणाम करते हैं। वही महर्षि याज्ञवल्क्यजी शिष्टाचार परिपालन पूर्वक विश्वाधारं इत्यादि मन्त्र को कहते हैं इस मन्त्र के विषय में विशेष चर्चा पवित्रा टीका में किया हूँ वहीं से अनुसन्धान करें ॥२॥


श्रीराममंत्रप्रदाचार्य , श्री ब्रह्माजी

**विश्वाधारं महाविष्णुं नारायणमनामयम्**
**पूर्णानन्दैकविग्रहं परंज्योतिः स्वरूपिणम् ।**
**मनसा संस्मरन् ब्रह्मा तुष्टाव परमेश्वरम् ॥३॥**

**अत्रायं प्रश्नः श्रीरामचन्द्रस्य महाविष्ण्वादि-कार्यत्वमभिमतमाहोस्वित् तत्कारणत्वं वा । ब्रह्मा-विष्णुनारायणवासुदेवादीनां बहूनां चेतनानां युगपत् चिद् रूपैककार्योत्पादनस्याशक्यतया, पिण्डीयभूयैकरूपेणावस्थानासिद्धेश्च महाविष्ण्वादिकार्यत्वं न भवितुमर्हति । श्रीविष्णुहर्यादीनाञ्च पुराणादिप्रसिद्धानां मूलकारणत्वस्य पूर्वतापनीये उपक्रमभागे खण्डितत्वात् कारणत्वं न सम्भवति । तदुक्तम्-**

**मणिर्यथाविभागेन नीलपीतादिभिर्युतः ।**
**रूपभेदमवाप्नोति ध्यानभेदात्तथाच्युतः ॥**

यहां प्रश्न उठता है कि श्रीरामचन्द्रजी का महाविष्णु आदि का कार्यत्व है, यानी कार्यत्व अभिमत है अथवा महाविष्णु आदि में श्रीरामचन्द्रजी का कारणत्व अभिमत है ? ब्रह्मा, विष्णु, नारायण वासुदेव आदि बहुत चेतनों का एक कालावच्छेदेन चिद्रूप एक कार्य का उत्पादन करना अशक्य होने के कारण यदि कहें सभी मिलकर एक रूप में कार्य उत्पन्न करते हैं तो यह सम्भव नहीं । इसलिये महाविष्णु आदि का श्रीरामचन्द्रजी में कार्यत्व नहीं हो सकता है। श्रीविष्णु हरि आदि का जो पुराण आदि में प्रसिद्ध मूलकारणत्व कहा गया है उसका श्रीरामतापनीय उपनिषद् के भूमिका भाग में खण्डन किया जा चुका है। इसलिये महाविष्णु आदि में कारणत्व होना भी सम्भव नहीं है । इसीलिये कहा गया है जिसप्रकार मणि अविभक्त रूपसे नील, पीत आदि अनेक गुणों से सम्पन्न होता है उसी प्रकार भगवान् अच्युत भी ध्यान भेद से अनन्त

इतिस्मृतेः । एककालावच्छेदेनानन्तरूपवान् भवितुं शक्नोति विलक्षणसामर्थ्यसम्पन्नत्वात् । यथा सौभरिः, इत्यनुमानबलेन 'ब्रह्मणोरूपकल्पनेतिश्रुतेश्च श्रीरामचन्द्रस्यानेकरूपधारित्वसिद्धेः । श्रीरामस्य द्विभुजादिसहस्रान्तभुजवद् विग्रहवत्वेन प्रयोजनवशाद् बहुरूपधारित्वेन च सर्ववाच्यस्य वाचकत्वम् । श्रीविष्णुमहाविष्णुवासुदेवनारायणहरिमहेश्वरादीनान्तु व्यापकत्वस्वभक्तदुःखहारित्वसर्वनियन्तृत्वादिविशिष्टवाचकानां गुणद्वारा तद्वाचकत्वम् । श्रीरामव्याप्यदेवासुरमानवादिवाचकानां तु सर्वशरीरिणस्तद्वाचकत्वं गम्यते । एवमादिविषयं हृदि-निधायविश्वाधारमित्याद्याह विश्वाधारत्वशक्तिमन्तं महाविष्णुम् । आकाशादौ अतिव्याप्तिवारणाय महदिति विशेषणम् । व्यापकानामपि आकाशादीनां व्यापकम् । सर्वव्यापकस्य परमेश्वरस्य सर्वनियन्तृत्वेन हेतुत्वमुपपद्यते । सर्वव्यापकत्वबोधकेन महाविष्णुपदेन चिन्मयपदार्थविशेषितः । चतुर्भुजबोधकं विष्णुपदं तु यौगिकम् । अतएव श्रीमद्वाल्मीकीये दुर्धर्षत्वाद्यर्था उक्ताः । चेतनानां स्वकारणस्याधारत्वासिद्धेः, श्रीरामस्य विष्णवादिव्यापकत्वेन मूलकारणत्वद्योतनाय महदित्युक्तम् । संसारस्यावान्तरकारणत्वं कथयन्नाह नारायणमिति ।

रूपों के भेद को प्राप्त करते हैं इस स्मृति वचन के अनुसार एक साथ ही भगवान् श्रीरामजी अनन्त रूपों से सम्पन्न हो सकते हैं क्योंकि भगवान् विलक्षण सामर्थ्य से परिपूर्ण हैं । जिसप्रकार सौभरि जीव होकर भी अनन्त देहों को धारण किये थे । इसी अनुमान के बल से तथा 'ब्रह्मणोरूपकल्पना' इस श्रुति वचन के अनुसार एक ही परब्रह्म श्रीरामजी में अनन्त रूपों की कल्पना होती है । भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का इसप्रकार अनन्तरूपधारित्व सिद्ध होता है । श्रीरामजी का द्विभुज से आरम्भ कर सहस्र भुज पर्यन्त शरीर धारी होने से प्रयोजनवश बहुत प्रकार के रूपधारी होने से सभी शब्दों के वाच्यार्थ का वाचक श्रीरामजी हैं ऐसा वेद स्मृति शास्त्रों से नियत है । विष्णु महाविष्णु, वासुदेव, नारायण, हरि महेश्वर आदि की व्यापकत्व तो अपने भक्तों के दुःखहारित्व सर्वनियन्तृत्व आदि विशिष्ट वाचकों का गुण द्वारा श्रीरामवाचकत्व से है । क्योंकि भगवान् श्रीरामजी के व्याप्य देवता असुर मानव आदि वाचक शब्दों का तो सभी का शरीरी श्रीरामवाचकत्व प्रतीत होता है । इत्यादि विषयों को मन में रखकर 'विश्वाधारं' इत्यादि मन्त्र का प्रारम्भ करते हैं । विश्व के आधारत्व शक्ति सम्पन्न महाविष्णु को आकाश आदि अर्थ में अतिव्याप्ति दोष ग्रस्त नहीं होना पडे इसलिये

**अप्सु आयतनकरणात् नारायणेति संज्ञां प्राप्तवानित्यवगम्यते । अत्र सामान्य शब्दत्वेन ज्ञातोनरशब्दोविशेषशब्दवाच्ये श्रीरामचन्द्रेपर्यवसन्नमतः नारायण कारणत्वं बोधयति । तेन सर्वकारणत्वं द्योत्यते । अतएव 'महार्णवेशयानोऽप्सु मां त्वं पूर्वमजीजनः' इतिश्रीरामकार्यत्वं दुर्वारमेव । 'छागो वा मन्त्रवर्णात्' इतिवत् सति विशेषोपस्थापके सामान्यवाचकशब्दस्य विशेषेपर्यवसानात् । 'महार्णवे शयानोप्सु मां त्वं पूर्वमजीजनः' इतिश्रीरामविग्रहविशेषं प्रति ब्रह्मणोवचने श्रीरामस्यैव नारायणकारणत्वमवगम्यते । सामान्यतो नारायणकारणत्वेन उच्चारिते नरशब्दवाच्ये श्रीरामे एव निश्चयात् । 'अनामयम्' इति 'आमयो रोग' तत्कारणमविद्या, इत्थमनामयमित्यस्याऽविद्यासम्बन्धरहितमित्यर्थः । पूर्णानन्दैकविग्रहमिति बोध्यते यत् पूर्वमिति विशेषणेन कदाचिदपि दुःखित्वं केनापि अंशेन**

विष्णु शब्द में महत् यह विशेषण प्रयोग किया गया है क्योंकि आकाश आदि व्यापक पदार्थों का भी भगवान् श्रीरामजी महाव्यापक हैं। सर्व व्यापक परमेश्वर का सर्व नियामकत्व हाने से कारणत्व युक्ति संगत होता है। सर्वव्यापक बोधक महाविष्णु पद के द्वारा चिन्मय पदार्थ विशेषित किया गया है। चतुर्भुजधारी बोधक विष्णु पद तो यौगिक है। इसीलिये वाल्मीकीय श्रीमद्रामायण में दुर्धर्षत्व आदि अर्थ कहे गये हैं। चेतन पदार्थों का अपना ही कारणत्व होना सिद्ध नहीं हो सकता है। इसलिये श्रीरामजी का विष्णु आदि पदार्थ का व्यापक होने के कारण मूलकारणत्व प्रकाशित करने के लिए महत् यह विशेषण प्रयोग किया गया है। संसार की अवान्तर कारणता को कहते हुए मन्त्र में 'नारायणम्' इस शब्द का प्रयोग करते हैं। जल में आयतन करने के कारण नारायण इस नाम को प्राप्त किया यह अभिप्राय प्रतीत होता है। यहां पर सामान्य शब्द के रूपमें ज्ञात नर शब्द विशेष शब्द प्रतिपाद्य श्रीरामचन्द्र अर्थ में परिपूर्ण होता है, इसलिए नारायण कारणता श्रीरामजी में बोध कराता है इससे श्रीरामजी की सर्वकारणता प्रकाशित होती है। इसीलिए ही 'महा सागर में सोते हुए आप जलके अन्दर मुझे वार-वार जन्म दिये' इस स्मृति वचन से नारायण आदि का श्रीराम कार्यत्व होना किसी भी स्थिति में नहीं रोका जा सकता है। 'छागो वा मन्त्र वर्णात्' इस श्रुति वचन के उपस्थापक होने पर सामान्य वाचक शब्द का विशेष अर्थ में परिपूर्णत्व होता है। तदनुसार महासागर में सोते हुए आप मुझे पुनः पुनः जन्म दिये, इस कथन से श्रीरामचन्द्रजी का शरीर विशेष के प्रति ब्रह्मा के वचन में श्रीरामजी का ही नारायण

दुःखप्रवेशत्वं च निरस्तं भवति । तेन पूर्णं यत् आनन्दं तदेव एकं विग्रहः शरीरं यस्य तम् । अत्र आनन्दप्रधानत्वात् विग्रहस्य आनन्दरूपत्वमुक्तं भवति । 'परंज्योतिः रूपिणम्' अत्र ज्योतिः चिन्मयशब्दौपर्यायौ । ज्योतिषामुत्कृष्टं यत् ज्योतिः तत्स्वरूपमस्ति अस्य तम् । भगवतः श्रीरामचन्द्रस्य मुक्तजीवप्राप्यत्वं बोध्यते । परमेश्वरमिति ब्रह्मादीनामपि स्वामीत्वं प्रकाश्यते । एवं विधं श्रीरामचन्द्रं ब्रह्मामनसाहृदयेन संस्मरन् स्तुतिमकरोत् ॥३॥

कारणत्व प्रतीत होता है। सामान्य रूपसे नारायणकारणत्व के उच्चारण करने पर नर शब्द प्रतिपाद्य श्रीरामचन्द्रजी में ही निश्चय होता है। मन्त्र में 'अनामयं' इस शब्द का प्रयोग किये हैं। आमय रोग को कहते हैं। इस संसाररूपी रोग का कारण अविद्या है। इसप्रकार अनामय शब्द का अर्थ अविद्या सम्बन्ध से रहित होता है। 'पूर्णानन्दैकविग्रहम्' इस पद से ज्ञात कराया जाता है कि पूर्णं इस विशेषण के द्वारा किसी अवस्था में भी दुःखित्व, किसी अंश में भी दुःख प्रवेशत्व निवारित होता है। इससे पूर्ण जो आनन्द वही है एक मात्र शरीर जिसका उन श्रीरामचन्द्रजी को, यहां पर श्रीरामचन्द्रजी के शरीर में आनन्द अर्थ की प्रधानता के कारण आनन्दरूपत्व प्रतिपादित होता है। 'परंज्योतिः रूपिणं' इस प्रयोग में ज्योति शब्द और चिन्मय शब्द पर्याय वाचक है। बहुत प्रकार के प्रकाशों में भी जो उत्कृष्ट प्रकाश है वह स्वरूप है जिनका उन श्रीरामचन्द्रजी को। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का मुक्त जीवों द्वारा प्राप्यत्व बोध कराया जाता है। 'परमेश्वरं' यह पद ब्रह्मा आदि का भी भगवान् श्रीरामजी नियामक हैं, क्योंकि भगवान् श्रीरामजी का ब्रह्मा आदि का भी नियामक होने से उनका स्वामित्व प्रकाशित होता है इसप्रकार के विशे षताओं से परिपूर्ण श्रीरामचन्द्रजी को ब्रह्मा मन ही मन स्मरण करते हुए स्तुति किये ॥३॥

**ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवानद्वैतपरमात्मा**
**नन्दात्मा यत् परंब्रह्म भूर्भुवः स्वस्तस्मै वै नमोनमः ॥१॥**

यः सर्वशास्त्रेषु प्रख्यातः भगवान् श्रीरामचन्द्रः 'ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यतेजोवीर्याद्यशेषगुणवान् भगवानुच्यते, तदुक्तम्-रामः सर्वगुणोपेतः कौशल्यानन्दवर्धनः' तथैव श्रीरामभगवत्वे जगद्गुरुश्रीगङ्गाधराचार्याः-

"ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यवीर्यतेजांसि षड्गुणाः ।
भगवत्त्वेनेरिताः सन्ति श्रीरामे भगवान् स तत् ॥
श्रीरामे भगवच्छब्दो मुख्यवृत्त्या प्रवर्त्तते । गौण एव स चान्यत्र षड्विधैश्वर्यलेशतः ॥
स्वप्रकाशश्च सर्वेषां सर्वदा भासको विभुः ।
गुणश्चालोचकैः प्राज्ञैर्ज्ञानत्वेन प्रकीर्तितः ॥
सामर्थ्यमद्भुतस्याथकर्मणः करणे च यत् ।
तद्धिशक्तितया प्रोक्तो गुणो भागवतो महान् ॥
सर्वधारणसामर्थ्यं गुणोबलतया मतः ।
जगतो रचनायां हि श्रमाभावोऽथवा च सः ॥
नियन्तृत्वञ्च सर्वेषामैश्वर्यं परिकीर्तितम् ।
सर्वस्य जगतश्चाथो स्वतन्त्रकर्तृता हि तत् ॥
विश्वोपादानता रामेश्रुतिशङ्खे हि विश्रुता ।
प्रोक्ता वीर्यतया तस्य तथात्वेप्यविकारिता ॥
तेजश्च नैरपेक्ष्यं हि परस्य सहकारिणः ।
पराभिभवसामर्थ्यं मता वा जानकीपतेः ॥ इति"

अद्वैतम् स्वसमाभ्यधिकरहितः 'न तत्समश्चाभ्यधिकश्च श्रूयते' इतिश्रुतेः । परमानन्दं सर्वोत्कृष्टं केवलं दुःखप्रतियोगियदानन्दं तदेवात्मा यस्य तदाविधम् । पूर्णानन्दैकविग्रहम् । सच्चिदानन्दाद्वैतैकरसात्मेतिश्रुतेः । यः परब्रह्मशब्दप्रतिपाद्यम् । भूर्भुवः स्वरितिलोकनिर्देशेन भगवतः श्रीरामचन्द्रस्य सर्वत्रानुस्यूतत्वेन सर्वकारणत्वमुपपद्यते, अथवा लोकादिरसस्वरूपभूर्भुवः स्वः स्वरूपत्वेन श्रीरामचन्द्रस्य सकललोकस्वामित्वं निखिलदेवोपास्यत्वं सर्ववेदप्रतिपाद्यत्वं च प्रदर्श्यते । व्याहृतेः लोकादिरसत्वं छान्दोग्योपनिषदि निरूपितम् । प्रजापतिर्लोकानभ्यतपत्तेषां तप्यमानानां रसान्प्राबृहदग्निपृथिवीवायुमन्तरिक्षादादित्योदिवः स एवस्तिस्त्रोदेवता अभ्यतपत्तासां तप्यमानानां रसान् प्रावृहद्भूरितिऋग्भ्योभुव इति यजुर्भ्यः स्वरिति सामभ्य इति तस्मै वै इति । 'अर्धमात्रात्मको रामोब्रह्मानन्दैकविग्रहः । पूर्णानन्दैकविग्रहं परंज्योतिः स्वरूपिणम् ।

**अहमोंतत्सत्यत्परं ब्रह्मरामचन्द्रः ।' एवमादिश्रुतिषु परमानन्दैकविग्रहत्वेन परंज्योतिः स्वरूपत्वेन परब्रह्मशब्दाख्येन च प्रसिद्धः । लोकशास्त्रप्रसिद्धावतारद्योतितः श्रीरामः उच्यते। श्रीरामस्य दिव्यमङ्गलविग्रहे अद्वैतैकरसस्वरूपकथनात् सर्वोत्कृष्टत्वमुच्यते । स परंपुरुषशब्दवाच्यः परमात्मा रामचन्द्रः तस्मै नमोनमः । एतेनास्य मन्त्रस्य षडक्षरार्थबोधकत्वं प्रतीयते ॥१॥**

जो सभी वेदादि शास्त्रों में प्रसिद्ध भगवान् श्रीरामचन्द्रजी हैं, ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, तेज, वीर्य आदि अशेष गुणों से सम्पन्न को भगवान् कहा जाता है जगद्गुरु श्रीगङ्गाधराचार्यजी ने श्रीरामभगवत्व में इसका विस्तारपूर्वक वर्णन किया है वह मेरी टीका में वहीं देखें । यही अन्यत्र भी कहा गया है कि सभी गुणों से परिपूर्ण माता कौशल्याजी के आनन्द बर्धक सर्वेश्वर श्रीरामजी हैं। अपने समान या अपने से अधिक गुणशाली से रहित होने के कारण श्रीरामजी को अद्वैत कहा जाता है। श्रीरामजी के समान अथवा अधिक न देखा जाता है न सुना ही जाता है, इसी श्रुति के अनुसार सर्वोत्कृष्ट केवल दुःख का प्रतिद्वंदी जो एकमात्र आनन्द है वही है स्वरूप जिनका ऐसे परमानन्द स्वरूप श्रुति भी कहती है पूर्ण आनन्द ही एकमात्र जिनका शरीर है। सत् चित् आनन्द, अद्वैत मात्र रस स्वरूप है जिनका जो परब्रह्म शब्द से प्रतिपादन करने योग्य है, भूः भूवः, स्वः ये तीन शब्द तीनों लोकों का निर्देशक होने से भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का सभी लोकों में अनुस्यूत अर्थात् कण कण में व्याप्त होने के कारण सर्वकारणत्व युक्ति युक्त होता है। अथवा लोकों का रस स्वरूप भूर्भुवः स्वः स्वरूप में भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का सभी लोकों का स्वामित्व समस्त देगण का उपास्यत्व एवं सभी ऋग् यजुः सामाथर्व वेदों से प्रतिपाद्यत्व प्रदर्शित किया जाता है। भूर्भुवः स्वः इन महाव्याहृतियों का सभी लोकों का रसस्वरूपत्व छान्दोग्योपनिषद् में निरूपण किया गया है कि प्रजापति ने सभी लोकों को पूर्ण रूपसे तपाया उन तपते हुए समस्त लोकों का रस प्रवाहित हुआ। उससे अग्नि, पृथिवी, वायु अन्तरिक्ष आदित्यमण्डल एवं स्वर्ग हुआ । वहीं ये तीनों देवतायें तपायी गई, इन देवताओं के भी अतिशय मात्रा में संतप्त होने पर रस प्रवाहित हुआ। भूः भूवः स्वः ये तीनों वेदों से रस स्वरूप हुए एकमात्र पूर्णानन्द स्वरूप परंज्योतिस्वरूप अर्धमात्रात्मक ॐकार स्वरूप जो परंब्रह्म हैं वही श्रीरामचन्द्रजी हैं। इत्यादि श्रुतियों में परमानन्द विग्रह के रूपमें परं ज्योति स्वरूप में तथा परं ब्रह्म नाम से प्रतिपाद्य प्रसिद्ध है। लोक एवं शास्त्रों में जो

भगवान् के प्रख्यात विभिन्न अवतार हैं उन शब्दों से प्रकाशित सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी कहे जाते हैं क्योंकि "सर्वेषामवताराणामवतारी रघूत्तमः" इसप्रकार सभी अवतारों के एकमात्र अवतारी श्रीरघुनाथजी हैं ऐसा आगम शास्त्र में प्रतिपादित है। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के अलौकिक परम मङ्गलकारी स्वरूप में अद्वैत एकमात्र रसस्वरूप कहा गया है इसलिए भगवान् श्रीरामचन्द्रजी को सर्वोत्कृष्ट कहा जाता है। वे परमपुरुष अर्थात् पुरुषोत्तम शब्द से प्रतिपाद्य परमात्मा श्रीरामचन्द्रजी हैं। उनको भूयोभूयः प्रणाम है। इस कथन से उपर्युक्त मन्त्र का षडक्षर तारक ब्रह्म मन्त्रार्थ प्रतिपादकत्व प्रतीत होता है ॥१॥

**ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्**

**यश्चाखण्डैकरसात्मा भूर्भुवः स्वस्तमै वै नमोनमः ॥२॥**

**ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्**

**यच्च यो ब्रह्मानन्दामृतं भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥३॥**

**ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्**

**यत्तारकंब्रह्म भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥४॥**

आभ्यां मन्त्राभ्यां श्रीरामचन्द्रस्य स्वरूपावताराभ्यामानन्दस्वरूपत्वमस्पृष्ट संसारधर्मत्वं स्वभक्ततारकत्वं च प्रतिपाद्यते । तेन श्रीरामतारकवाच्ययोरभेदत्वमुक्तं भवति ॥२/३/४॥

उपर्युक्त इन मन्त्रों के द्वारा भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का विभिन्न स्वरूपों का आनन्द स्वरूपत्व सांसारिक धर्मों से सम्पर्क नहीं होना एवं अपने समस्त भक्तों का उद्धारकत्व होने के कारण तारकत्व प्रतिपादित होता है। इससे भगवान् श्रीरामचन्द्रजी और तारक शब्द प्रतिपाद्य अर्थ का अभेद सम्बन्ध कहा जाता है ॥२/३/४॥

**ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान् यो ब्रह्मविष्णुरीष्वरोयः**

**सर्वदेवात्मा भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥५॥**

**ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान् ये सर्वे वेदासांगाः**

सशाखाः सपुराणाः भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥६॥

ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्

यो जीवात्मा भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥७॥

ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्

यः सर्वभूतान्तरात्मा भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥८॥

ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्

यो देवासुरमनुष्यादिभावाः भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥९॥

एभिः मन्त्रैः अन्तर्यामीस्वरूपत्वं प्रतिपाद्यते । सुरासुरमानवादीनां चेतना नामचेतनानाञ्च श्रीरामचन्द्रव्याप्यत्वेन तदविनाभावेन तदभिन्नसत्ताकत्वसिद्धेः सामानाधिकरण्यनिर्देशः सकलचराचरविषयकश्रीरामरूपभावनाबोधाय प्राणि नामानुकूल्याय, अथवा सदारामोऽहमितिश्रीरामरूपत्वदर्शनविधान इव चराचरस्य श्रीरामाभिन्नसत्ताकत्वेन स्वात्मानं ये श्रीरामस्वरूपेण पश्यन्ति त एव श्रीरामस्य सम्यक् समुपासकाः । तदुक्तम् महारामायणे-

भूमौ जले नभसि देवनरासुरेषु, भूतेषु देवि सकलेषु चराचरेषु ।
पश्यन्ति शुद्धमनसा खलुरामरूपं, रामस्य ते भुवितले समुपासकाश्च ॥

एवं विधा ये प्राणिनः सन्ति ते जीवन्तोऽपि मुक्तसमा एव । अत्र विषये श्रुतिरप्याह-न ते संसारिणोनूनं राम एव न संशयः' इति । स्वात्मनि सर्वत्र च जगति श्रीरामरूपदर्शिनां जीवनमुक्तसमत्वमेवेत्यत्र न सन्देहः ॥५/६/७/८/९॥

इन मन्त्रों के द्वारा सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी का अन्तर्यामी स्वरूप प्रतिपादित होता है देवता असुर मानव आदि सचेतन प्राणियों को और अचेतन प्राणियों को श्रीरामचन्द्रजी से व्याप्य होने से तथा श्रीरामजी को सर्वत्र व्यापक होने से श्रीरामजी के साथ इनका अविनाभाव सम्बन्ध होने से श्रीरामजी से अभिन्न सत्ता इनकी सिद्ध होने के कारण इनमें समान विभक्तिकत्व निर्देश यह प्रकाशित करता है कि समस्त चराचर के विषय में भी श्रीरामजी के परम भक्तों का श्रीरामस्वरूपत्व का बोध हो। एवं भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की प्राणी मात्र के प्रति अनुकूलता का व्यवहार रहता है।

अथवा सदैव मैं रामात्मक हूँ ऐसी भावना करे' इस श्रुति वचन के अनुसार जैसे सर्वत्र श्रीराम स्वरूपत्व का विधान है उसी प्रकार समस्त जडचेतनात्मक संसार को श्रीरामजी से अभिन्न सत्ता है जिनकी इस रूपमें जो अपने आप को भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के स्वरूप में अनुभव करते हैं वे श्रीराम भक्त श्रीरामचन्द्र स्वरूप जैसे ही हैं। और वे ही वास्तविक में भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की सम्यक् उपासना करने वाले हैं। यही विषय महारामायण में कहा गया है→हे देवि ? पृथिवी पर जल में आकाश में देवता मनुष्य और असुरों में समस्त प्राणियों में तथा सभी चराचर जगत् में अत्यन्त विशुद्ध भावना से जो भगवान् श्रीरामजी के स्वरूप को देखते हैं वे ही भगवान् श्रीरामजी के सम्यक् समुपासक हैं। इस तरह के जो प्राणी हैं वे अपनी जीवन अवस्था में भी मुक्त जैसे ही हैं। इस विषय में श्रुति भी कहती है→सर्वत्र श्रीरामचन्द्रजी का दर्शन करने वाले प्राणी निश्चित ही संसारी नहीं है श्रीराम स्वरूप ही हैं इसमें किसी तरह का सन्देह नहीं है। इसप्रकार स्वयं में एवं सर्वत्र संसार में श्रीराम स्वरूप देखने वाले श्रीराम भक्त जीवन मुक्त से ही हैं। इस विषय में किसी प्रकार का सन्देह नहीं है ॥५/६/७/८/९॥

**ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्**
**मत्स्यकूर्मवराहाद्यवतारा: भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥१०॥**

**अवतारत्वकथनं 'सर्वेषामवताराणामवतारीरघूत्तमः' इत्यागमोक्ते लीलाविभूतौ प्राकट्यमात्राभिप्रायेण, न तु नूतनाकृतिधारिणः 'सर्वेनित्याः शास्वताश्च देहास्तस्य परात्मनः' इतिस्मृतेः सर्वेषां भगवद्विग्रहाणां नित्यत्वबोधनात् ॥१०॥**

प्रकृत मन्त्र में अवतारत्व कथन मत्स्य कूर्म आदि सभी अवतारों के अवतारी समय-समय पर भिन्न-भिन्न अवतार लेने वाले श्रीरघुनाथजी हैं इस आगम वचन के अनुसार लीलाविभूति में प्रकटता मात्र के तात्पर्य से है न कि नवीन स्वरूप धारण के अभिप्राय से क्योंकि उन परमात्मा का समस्त शरीर नित्य और शास्वत हैं इस कथन के अनुसार भगवान् के समस्त विग्रहों का नित्यत्व बोध कराये गये हैं ॥१०॥

**ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्**
**यश्चप्राणो भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥११॥**

ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्

योऽन्तःकरणचतुष्टयात्मा भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥१२॥

ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्

यश्चप्राणो भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥१३॥

ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्

यश्चान्तको भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥१४॥

ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्

यश्च मृत्युः भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥१५॥

ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्

यश्चामृतं भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥१६॥

ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्

यानि पञ्च महाभूतानि भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥१७॥

ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्

यः स्थावरजङ्गमात्मा भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥१८॥

ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्

ये पञ्चाग्नयो भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥१९॥

ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्

याः सप्तव्याहृतयो भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥२०॥

ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्

या विद्या भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥२१॥

ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्
या सरस्वती भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥२२॥
ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्
या लक्ष्मी भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥२३॥
ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्
या गौरी भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥२४॥
ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्
या जानकी भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥२५॥
ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्
यच्च त्रैलोक्यं भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥२६॥
ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्
यश्च सूर्य्यः भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥२७॥
ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्
यश्च सोमः भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥२८॥
ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्
यानि नक्षत्राणि भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥२९॥
ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्
ये च नवग्रहाः भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥३०॥
ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्
ये चाष्टौलोकपालाः भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥३१॥

ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्
ये चाष्टौ वसवः भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥३२॥
ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्
ये चैकादशरुद्राः भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥३३॥
ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्
ये च द्वादशादित्याः भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥३४॥
ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्
यच्च भूतभव्यं भविष्यत् भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥३५॥
ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान् यो ब्रह्माण्ड-
स्यान्तर्बहिर्व्याप्नोति यो विराट् भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥३६॥
ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्
यो हिरण्यगर्भः भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥३७॥
ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्
या प्रकृतिः भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥३८॥
ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्
यश्चोंकारः भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥३९॥
ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्
याश्चतस्त्रोऽर्धमात्रा भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥४०॥
ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्
यः परमपुरुषः भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥४१॥

ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्
यश्च महेश्वरः भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥४२॥
ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्
यश्च महादेवः भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥४३॥
ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान् ॐ नमोभगवते
वासुदेवाय यो महाविष्णुः भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥४४॥
ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्
यः परमात्मा भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥४५॥
ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्
यो विज्ञानात्मा भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥४६॥

अन्तकः प्रलयकारी, मृत्युः प्रारब्धकर्मभोगावसाने मारकः । यो वै ब्रह्माण्डस्यान्तर्बहिः इत्यत्र विराट् शब्देन नारायण उच्यते ।

यच्च किञ्चिज्जगत्यस्मिन् दृश्यते श्रूयतेऽपि वा ।
अन्तर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः ॥

इतितुल्यार्थकश्रुत्या नारायणस्य जगद्बहिरन्तर्व्यापित्वबोधकश्रुतेः । अन्यत्र च विराट् पदस्थाने नारायणपदप्रयोगाच्चानयोरैक्यं बुध्यते । ॐ नमो भगवते वासुदेवायेत्यत्रैकस्मिन् मन्त्रे वासुदेवभगवत्शब्दयोः पाठादेकत्वं ज्ञायते । अत्रोपनिषदि ये मत्स्यकूर्मादयः यानि पञ्चभूतानि याः सप्तव्याहृतयः इत्यादिषु बहुवचनं पुंस्त्रीनुंसकत्वञ्चोक्तम् । श्रीरामचन्द्रानुवादेन तेषां विधानात् प्रसिद्धमुद्दिश्याप्रसिद्धस्य च विधानात् विधेयानां पार्थक्यं बोध्यते । इत्थं सर्वरूपी श्रीरामस्तत्तदाकारेण प्रतीयतेऽभिधीयते च । सर्वं तदात्मकं तदविनाभूतमित्यर्थः । जीवप्रकृत्योश्च तात्विकोऽभेदः ॥११/४६॥

अन्तकः का अर्थ प्रलयकारी है । मृत्यु का अर्थ जिस कर्म का फल मिलना प्रारम्भ हुआ है उस प्रारब्ध कर्म फल के भोग के अन्त में मारने वाला मृत्यु अन्तक

कहलाता है। जो 'ब्रह्माण्ड के भीतर बाहर' इत्यादि मन्त्र में विराट् शब्द से श्रीनारायण कहे जाते हैं। जो कुछ भी इस संसार में पदार्थ दिखलाई देता है अथवा सुनाई देता है। जो भीतर है और जो बाहर है, उन सभी पदार्थों को व्याप्त करके श्रीनारायण स्थित है। यह कथन तो समानार्थ प्रतिपादक श्रुतियों के द्वारा श्रीनारायण शब्द का संसार के अन्दर और बाहर में व्यापकत्व रूपसे रहने वाले नारायण है, इस व्यापकत्व बोधक श्रुति के द्वारा कहा गया है। और अन्य स्थान पर विराट् पद के स्थान पर श्रीनारायण शब्द का व्यवहार किये जाने के कारण नारायण और विराट् इन शब्दों का अर्थ एक हैं, यह अभिप्राय ज्ञात होता है। और ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' इस मन्त्र में एक ही मन्त्र में वासुदेव और भगवत् इन दोनों शब्दों का व्यवहार दोनों का पाठ होने के कारण यह अभिप्राय ज्ञात होता है कि वासुदेव और भगवत् शब्द एक पदार्थ है। इस श्रीरामतापनीय उपनिषद् में जो मत्स्य कूर्म वराह आदि और जो जो पञ्च महाभूत और सात व्याहृतियां इत्यादि प्रयोगों में जो पुलिङ्ग स्त्रीलिङ्ग और नपुंसक लिङ्ग तथा बहुवचन आदि का व्यवहार किया गया है ये विभिन्न लिङ्ग और विभिन्न वचनों के प्रयोग से प्रतीत होता है कि श्रीरामचन्द्रजी का अनुवाद के द्वारा उनका व्यवहार किये जाने के कारण प्रसिद्ध शब्दों का प्रयोग करने के साथ-साथ अप्रसिद्ध शब्दों का विधान किये जाने के कारण प्रतिपाद्य अर्थों की पृथकता समझी जाती है। इसप्रकार भगवान् श्रीरामचन्द्रजी सर्वरूपी हैं। जो उन-उन आकारों में प्रतीत होते हैं, वस्तुतः सभी श्रीरामचन्द्रजी ही हैं। इसलिये सभी श्रीरामात्मक ही हैं। और परब्रह्म से लेकर विज्ञानात्मा पर्यन्त समस्त पदार्थों का श्रीरामचन्द्रजी के साथ अविनाभाव सम्बन्ध है। अर्थात् ये सभी अभिन्न हैं श्रीरामजी को छोडकर इनका अस्तित्व नहीं है। जीवात्मा तथा प्रकृति इन दोनों में भी वस्तुतः तात्विक रूपसे अभेद सम्बन्ध है सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी के अपृथक् सिद्ध विशेषण होने से ॥११/४६॥

**ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्**

**यः सच्चिदानन्दाद्वैतैकरसात्मा भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥४७॥**

ॐकार वाच्यः यो वै प्रसिद्धः 'सीतारामौ तन्मयावत्र पूज्यौ' 'अत्र रामोऽनन्तरूपस्तेजसावह्निना समः' इत्यादिवचोभिः प्रतिपाद्यः स ज्ञानादिगुणपरिपूर्णो भगवान् श्रीरामः सदानिर्बाधितस्वरूपत्वं चित्त्वं स्वयं प्रकाशः परं ज्योतिः स्वरूपत्वं

**सुखस्वरूपत्वं समाभ्यधिकरहितत्वं तेन च अनुपमेयत्वं 'न तस्य प्रतिमा अस्ति तस्य नाममहद् यशः'' 'न तत् समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते' एवमादिश्रुतिशतबोध्यम् । ''नेदं यशो रघुपतेः सुरयाच्चयात्त, लीलातनोर्ह्यधिकसाम्यविमुक्तधाम्नः''**

**इत्यादिस्मृतिबोध्यम् । अत्र उपमाबोधकः प्रतिमाशब्दः । आत्तं धारितं लीलाशरीरं येन सः । तेन एकरसत्वम् । न्यूनाधिक्यराहित्येन विकाररहितत्वम्, अत्र सच्चिदानन्दादिपदानामेकवद्भावस्तेन सच्चिदानन्दाद्वैते एकरसम् तदेवात्मा स्वरूपं यस्य तथा विधः, तस्मै भूयो भूयः नमः ॥४७॥**

ॐकार शब्द से प्रतिपाद्य जो लोक शास्त्र में प्रसिद्ध अर्थ है 'सीताभिन्न राम' यहां पूजनीय हैं इस उपनिषद् में भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अनन्त स्वरूपधारी हैं जो अपने विलक्षण प्रभाव से अग्नि सदृश हैं। इत्यादि श्रुति स्मृति वचनों के द्वारा निरूपित करने योग्य हैं वे ज्ञान इच्छा बल क्रिया आदि गुणों से परिपूर्ण भगवान् श्रीरामजी हैं। सदैव निर्बाधित स्वरूपत्व चेतनत्व स्वतः प्रकाश सर्वोत्कृष्ट ज्योति स्वरूपत्व परम आनन्दस्वरूपत्व अपने समान तथा अपने से बढकर किसी का नहीं होना, और इस कारण से श्रीरीमजी में अनुपमेयत्व कहा भी है। उन परमात्मा श्रीरामचन्द्रजी की तुलना समस्त ब्रह्माण्ड में नहीं है। उनका नाम ही महान् कीर्ति स्वरूप है। मन्त्र का प्रतिमा शब्द उपमा वाचक है अतः परब्रह्म श्रीरामचन्द्रजी के समान अथवा उनसे बढकर कहीं भी देखा नहीं जाता है। इत्यादि सैकडों श्रुति वचन समुदाय से निरूपण किया गया है।

भगवान् रघुकुलनायक श्रीरामचन्द्रजी की इतनी ही कीर्ति नहीं है, जो जगत् लीलावश शरीर को धारण किये हैं। जिसके समान अथवा अधिक प्रभावशाली दूसरा कोई नहीं है। इत्यादि स्मृतियों के द्वारा जानने योग्य यहां आत्त शब्द का अर्थ धारण किया गया है लीला शरीर जिनके द्वारा वे इससे श्रीरामचन्द्रजी में एकरसत्व ज्ञात होता है। न्यून और अधिक दोनों से शून्यत्व के कारण उनमें विकार रहितत्व प्रतीत होता है। यहां उपनिषद् वचन में सत् चित् आदि पदों का एक वद्भाव किया गया है इसलिये सत् चित् आनन्द अद्वैत में ही एकरस आत्मा स्वरूप जिनका है इसप्रकार का संकलित अर्थ होता है ऐसे भगवान् श्रीरामचन्द्रजी को पुनः पुनः प्रणाम है ॥४७॥

**इत्येतैः ब्रह्मा सप्तचत्वारिंशन्मन्त्रैः नित्यं देवं स्तौति । तस्य**

स्तुतोदेवः प्रीतो भवति स्वात्मानन्दं दर्शयति तस्माद् य एतैर्मन्त्रैर्नित्यं देवं स्तौति स देवं पश्यति सोऽमृतत्वं च गच्छति सोऽमृतत्वञ्च गच्छतीति ॥४८॥

॥ इत्यथर्वणरहस्ये श्रीरामोत्तरतापनीयोपनिषत् समाप्ता ॥

卐 श्रीसीतारामार्पणस्तु 卐

हरिः ॐ सह नाववतु सहनौ भुनक्तु सहवीर्यं करवावहै
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै

卐 ॐ शान्तिः ॐ शान्तिः ॐ शान्तिः 卐

पूर्वनिरूपितैः सप्तचत्वारिंशत् संख्याकैः मन्त्रैः ब्रह्मा प्रतिदिनं सर्वावतारिणं देवतानामपि अन्तर्यामित्वात् देवदेवं श्रीरामं स्तुतिं करोति । नित्यं स्तुतिपरायणस्य देवः सर्वावतारीश्रीरामः प्रसन्नोभवति । निजात्मानं दर्शयति, एभिः मन्त्रैः यो श्रीरामचन्द्रं भगवन्तं स्तौति स उपासकः भगवन्तं श्रीरामचन्द्रं पश्यति । उपसंहारमन्त्रेण सप्तचत्वारिशत् मन्त्राणां स्तुतिविषयभूतस्य श्रीरामचन्द्रस्य दृष्टिगोचरत्वविषयसूचनेन तापनीयश्रुतिनिरूपणीयस्य श्रीरामाभिधस्य देवस्यकृते यत् पूर्वं दर्शितं 'द्विभुजः कुण्डलीरत्नमालीधीरो धनुर्धरः' इतिदर्शितविग्रहस्यावतारित्वं ज्ञाप्यते । एवम्भूतं देवं यः पश्यति स सायुज्यमोक्षं प्राप्नोति । अमृतत्वप्राप्त्या ग्रन्थसमाप्तिंबोधयति ॥४८॥

卐 हरिः ॐ तत्सत् 卐

इतिश्रीमज्जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामप्रपन्नाचार्याणां गुरुवर्याणां चरणसरोरुहा
श्रितस्यआनन्दभाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्य
श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यस्य कृतौ श्रीरामानन्दभाष्यस्य
सम्पन्नता लोकमङ्गलाय भूयात् ।

卐 शुभमस्तु ॥ श्रीरस्तु ॥ श्रीरामः शरणं मम 卐

❀ ॥ ❀

पूर्व में प्रतिपादित सैंतालिक मन्त्रों के द्वारा ब्रह्मा प्रतिदिन सर्वावतारी सभी देवताओं के भी अन्तर्यामी होने के कारण देवाधिदेव श्रीरामचन्द्रजी की स्तुति करते हैं। प्रतिदिन भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की स्तुति में तत्पर रहने वाला उपासक के प्रति भगवान् श्रीरामचन्द्रजी जो सर्वावतारी हैं वे प्रसन्न होते हैं। और उसके ऊपर प्रसन्न होकर स्वात्म साक्षात्कार कराते हैं। इन मन्त्रों के द्वारा जो भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की स्तुति करता है, वह उपासक भगवान् श्रीरामचन्द्रजी को देखता है। उपसंहार मन्त्र के द्वारा सैंतालिस मन्त्रों का स्तुति विषय बने हुए श्रीरामचन्द्रजी के दृष्टि गोचरत्व सूचन के द्वारा श्रीरामतापनीय उपनिषद् का प्रतिपाद्य श्रीरामचन्द्रजी नाम से प्रसिद्ध देव के लिये जो पहले कहा गया है दो भुजाओं वाला कुण्डलादि आभूषण मण्डित रत्नों की माला धारण करनेवाले धनुर्धर इत्यादि कथन के द्वारा जिनका स्वरूप बताया गया है उनका सर्वावतारित्व प्रकाशित किया जाता है। इसप्रकार स्वरूप गुण सम्पन्न देव को जो देखता है वह सायुज्य मोक्ष प्राप्त करता है। अमृतत्व प्राप्ति कथन के द्वारा ग्रन्थ की समाप्ति सूचित करते हैं ॥४८॥

卐 हरिः ॐ तत्सत् 卐

श्रीसीतारामचन्द्रार्पणमस्तु

इसप्रकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामप्रपन्नाचार्यजी गुरुवर के चरण

कमलाश्रित आनन्दभाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य

श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजी की कृति उद्योत टीका की

पूर्णता हुई यह समस्त लोक मङ्गलकारी हो।

शुभम् भूयात्

卐 श्रीरामः शरणं मम 卐



卐 श्रीसीतारामाभ्यां नमः 卐

❁ जगद्गुरु श्रीविजयरामाचार्यप्रणीतः ❁

# श्रीरामषडक्षरस्तवः

**आनन्दभाष्यकृद्रामानन्दं ब्रह्म च राघवम् ।**

**नत्वा गुरुं च कुर्वे श्रीरामषडक्षरस्तवम् ॥**

आनन्दभाष्यसिंहासनासीन

**❁ जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामेश्वरानन्दाचार्य ❁**

प्रणीता लघु दीपिका

**सीतारामसमारम्भां रामानन्दार्यमध्यमाम् ।**

**रामप्रपन्नगुर्वन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥**

द्वाराचार्य जगद्गुरु श्रीविजयरामाचार्यजी मन्त्रराज षडक्षर श्रीराम महामन्त्रस्तव प्रणयन के लिये शिष्टाचार प्रयुक्त मङ्गलाचरण करते हैं-आनन्द इत्यादि से ।

आनन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी तथा सर्वेश्वर परब्रह्म श्रीराघव रघुकुल प्रदीप श्रीरामजी और जग तारक मेरे गुरुदेव जगद्गुरु श्रीमल्हदेवाचार्यजी को सादर नमन-दण्डवत् प्रणाम करके सर्व जीवोद्धारक श्रीराम षडक्षर महामन्त्र स्तव को बनाता हूँ अर्थात् सव मनुष्य सुलभतया महामन्त्र के अर्थ को जान सकें इस उद्देश्य से मन्त्रार्थ को स्पष्ट करने वाले श्लोकों को बनाता हूँ ॥

**वेदैकवेद्याय परात्पराय जगच्छरीराय महात्मने च ।**

**निर्दोषरूपाय गुणाकराय नमोऽस्तु रेफाय च राघवाय ॥१॥**

'रां रामाय नमः' इस महामन्त्र के प्रथमाक्षर 'रां' के अर्थ को बताते हैं-रां इस वीजाक्षर से बोध्य सर्वेश्वर श्रीराघवजी है जो वेदैक वेद्य अर्थात् 'ब्रह्मसत्त्वे प्रमाणं च शास्त्रमेव सुनिश्चितम् । तन्त्वौपनिषजश्चैतच्छुतिवाक्यप्रमाणतः (श्रीबोधायनमतादर्श १३१) श्रीपूर्णानन्दाचार्यजी ने ऐसा कहा है अतः श्रीरामजी वेदशास्त्र से ही जाने जाते हैं तथा परात्पर यानी पर स्वरूप से प्रतिपादित नारायण कृष्ण वासुदेवादि से पर हैं क्योंकि-'परान्नारायणाच्चैव कृष्णात्परतरादपि । यो वै परतमः श्रीमान् रामोदाशरथिः स्वराष्ट्र' ऐसा वशिष्ठसंहेता में लिखा है अतः सर्वेश्वर श्रीरामजी इतर सव देवों से पर हैं तथा श्रीरामचन्द्रजी 'यस्य पृथिवीशरीरम्' इस वेदवचन तथा 'जगत्सर्वं शरीरं ते

स्थैर्यं ते वसुधातलम्' इस महर्षि वाल्मीकिजी के वचनानुसार सम्पूर्ण जगत् शरीर वाले हैं और वे सर्वातिशायि महान् आत्मा हैं यानी सर्वजन शरण्य उदारचेता हैं उनके शरण में गये किसी को भी निरास न करने वाले हैं। इसीलिये महर्षि श्रीवाल्मीकिजी सर्वेश श्रीरामजी की प्रतिज्ञा के विषय में लिखते हैं-'सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम' असाधारण महत्वशाली आत्मा ही इसप्रकार की सर्वाभय प्रद प्रतिज्ञा कर उसको निभा सकता है अन्य नहीं तथा श्रीरामचन्द्रजी निर्दोष रूप हैं यानी समस्त विश्व श्रीरामजी से उत्पन्न होकर उन्हीं में स्थित रहकर अन्त में श्रीरामजी में ही उपसंहृत होता है तो भी श्रीरामजी सर्व प्रकार दोष से रहित ही रहते हैं। इसलिये श्रीनारायणजी श्रीरामचन्द्रजी की शरणागति स्वीकारते हुए कहते हैं-'योऽसौ सर्वतनुः सर्वः सर्वनामा सनातनः। अलिप्तः सर्वभावेषु श्रीरामः शरणं मम' (वृहद् ब्रह्मसंहिता) तथा वे श्रीरामचन्द्रजी गुणाकर हैं अर्थात् दया दाक्षिण्य आदि समस्त गुणों के समुद्र हैं ऐसे रेफ स्वरूप रेफ वाच्य रेफात्मा सर्वेश्वर श्रीरामजी को मेरा नमस्कार हो अर्थात् सर्वजगद् बीज श्रीरामजी को मैं सर्वदा नमन करता हूँ ॥१॥

**भक्त्यैकलभ्याय च भक्तिदाय भक्तिप्रियायाथ च मुक्तिदाय।**
**भक्तस्य वश्याय परेश्वराय नमः सुरेफाय च राघवाय ॥२॥**

रामाय में रकार का अर्थ निर्देश करते हैं-भक्त्यैक लभ्याय यानी 'निरमल मन जन सो मोहिपावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा' इस गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी की उक्ति तथा 'भक्त्यैव निःश्रेयसम्' इस बोधायन श्रीपुरुषोत्तमाचार्यजी के कथनानुसार विशुद्ध निर्मल भक्ति से ही प्राप्त किये जा सकने वाले तथा 'ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते' इस भगवद्वचनानुसार अपनी प्राप्ति के लिये अपने शरण में आये जनों को भक्ति देनेवाले और 'भक्तिप्रियोराघवः' इस कथन के अनुसार भक्ति प्रिय या भक्ति वाले जनों को अतिप्रिय तथा स्वशरणापन्न जनों को सायुज्य मुक्ति देनेवाले और 'अहं भक्त पराधीनः' इस कथनानुसार अपने शरण में आये अनन्य भक्तों के वश में रहने वाले तथा ब्रह्मा विष्णु रुद्रादि सवदेवों से पर रूप से सर्वदा उपासित ऐसे सुरेफात्मक रकार बोध्य पर रूप से जाने जाने वाले सर्वेश राघव श्रीरामजी को नमस्कार हो यानी श्रीरामचन्द्रजी को मैं सर्वदा नमन करता हूँ ॥२॥

**दयानिधानाय च दीनलोकसुबन्धवे दैन्यहरात्मने च।**
**श्रितैकरक्षाक्रतुदीक्षिताय नमोमकाराय च राघवाय ॥३॥**

तीसरा अक्षर मकार का अर्थ बताते हुए कहते हैं-दया निधानाय दया के निधान खजाने आदि कारण स्वरूप तथा दीन दुःखीजनों के एक मात्र बन्धु अनन्य सहचर और शरणागंत जनों के दैन्य दीनता त्रिविध दैहिक दैविक एवं भौतिक दुःखों व अन्य अनेक विध दीन हीनता को हरण करनेवाले तथा अपने शरण में आये जन की सर्वतोभाव से रक्षा के लिये सर्वदा तत्पर महर्षि श्रीवाल्मीकिजी लिखते हैं 'अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम' यानी स्वशरणापन्नजनों को सर्वभूतों से सर्वदा के लिये अभय प्रदान करना ही मेरा व्रत है ऐसा श्रीरामजी कहते हैं अतः श्रीरामजी से अतिरिक्त किसी में भी सर्वाभय प्रदत्व शक्ति नहीं है ऐसे सवको अभय देनेवाले मकार वाच्य मकार स्वरूप श्रीराघवज़ी का मेरा नमन हो अर्थात् सवको अपने शरण में रखकर सवप्रकार से अभय देनेवाले श्रीरामचन्द्रजी को मैं सर्वदा नमन करता हूँ ॥३॥

**समस्तलोकस्य च कारकाय समस्तलोकस्य च हारकाय ।**
**समस्तलोकस्य च पालकाय नमोयकाराय च राघवाय ॥४॥**

महामन्त्र के चौथे कक्षर यकार के अर्थ निरूपण करने के लिये कहते हैं समस्त लोकस्य 'यतो वै इमानि भूतानि जायन्ते' इस श्रुति तथा 'कर्ता सर्वस्य जगतो भर्ता सर्वस्य सर्वगः । जाहर्ता कार्यजातस्य श्रीरामः शरणं मम' इस आगम वचनानुसार सङ्कल मात्र से सम्पूर्णलोक को उत्पन्न करनेवाले तथा स्वयं से उत्पादित उस समस्त विश्व का पालन संरक्षण भरण पोषण कर अन्त में सव जगत् को संहार करनेवाले यकारात्मा यकार स्वरूप सर्व कार्य कर्ता सर्वेश रघुकुल शिरोमणि श्रीरामचन्द्रजी को नमस्कार हो यानी सर्वदा श्रीरामजी को मैं नमन किया करूँ ॥४॥

**अमोघपूजास्तवदर्शनाय सुदिव्यदेहाय मनोहराय ।**
**विशिष्टरूपाय चिताऽचिता च नमोनकाराय च राघवाय ॥५॥**

मन्त्रराज के पांचवें अक्षर नकार के स्वरूप को बतलाने के लिये कहते हैं अमोघपूजास्तवदर्शनाय 'अमोघं दर्शनं राम अमोघस्तव संस्तवः । अमोघास्ते भविष्यन्ति भक्तिमन्तो नरा भुवि' यानी हे श्रीरामजी ? आप का दर्शन अमोघ है आपका स्तवन भी अमोघ है तथा आप में भक्ति रखने वाले मनुष्य भी इस भूमण्डल में जिनका दर्शन दर्शक को निश्चित ही दिव्यफल देता है तथा पूजा करनेवाले को और स्तव स्तुति प्रार्थना करनेवाले को भी उन लोगों के भावनानुसार अचूक फल देता है तथा 'चिदानन्दमय देह तुम्हारी' इस मानस के कथनानुसार दिव्य शरीर वाले हैं और भुवन

जन के मनको मोहित करनेवाले हैं। चित् एवं अचित् से विशिष्ट हैं यानी जीवात्मा तथा प्रवृति जिसके विशेषण हैं अथवा पृथिवी जल तेज वायु आकाश बुद्धि अहंकार मन रूप जड पदार्थ तथा जीव चेतन पदार्थ जिसके ऊपर तथा पर प्रकृति के रूपमें समस्त विश्व के कार्यों को जिनके सङ्कल्प मात्र से वशवर्ति होकर सव कार्यों को सम्पादन करते हैं ऐसे सर्वशेषी नकारात्मा नकाराश्रय रूप सर्वेश्वर राघव रघुकुल शिरोमणि श्रीरामचन्द्रजी को सर्वदा नमस्कार हो ॥५॥

**महेषुशार्ङ्गैकधनुर्धराय महाशरण्याय महाश्रयाय।**

**स्वयं प्रकाशाय तमः पराय नमोमकाराय च राघवाय ॥६॥**

महामन्त्रराज के छठे अक्षर म कार के अर्थ निर्देशनार्थ आचार्यजी कहते हैं- महेषु अक्षय तूरिण सर्वाभयप्रद बाण तथा चाप को धारण करनेवाले तथा 'जौ नर होइ चराचर द्रोही। आवइ सभय सरन तकिमाही। तजि मद मोह कपट छल नान। करहुं सद्य तेहि साधु समाना' इस मानस के कथनानुसार सवजन शरण प्रद यानी शरण में आये सभी जनों को अपने ही अभय प्रद शरण में रखने वाले और सव जीवों को आश्रय दाता तथा स्वयं प्रकाश स्वरूप तम यानी अन्धकार से पर अर्थात् लोक प्रकाशक चन्द्र सूर्य अग्नि आदि को प्रकाशित करनेवाले परतत्व रूप मकारात्मक मकार स्वरूप सर्व प्रकाशमय राघव श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी को सर्वदा नमन किया करता हूँ। ताकि मेरे जन्म जन्मान्त के अघ पूंजनाश होकर सर्वेश्वर श्रीरामजी के श्रीचरणयुगलों में मेरी प्रिति सर्वदा बनी रहे यों-'रां रामाय नमः' इस ब्रह्मतारक षडक्षर श्रीराम महामन्त्र के प्रत्येक अक्षर का अतिसंक्षिप्त अर्थ निम्न प्रकार से भी समझा जा सकता है-

रां-सम्पूर्ण जीवों को सायुज्य मुक्ति से प्राप्य परमानन्द देनेवाले सर्वेश्वर श्रीरामजी।

रा-शरणागत सवजीवों को धर्म अर्थ काम तथा मोक्ष के प्रदाता।

मा-सर्व व्यापक सृष्टि के आदि काल में ब्रह्मा तथा अन्य महर्षियों को वेदोपदेश करनेवाले।

य-शरणागत सवजीवों को इन्द्रियादि भोगों से निवृत्ति कर देनेवाले।

न-ब्रह्मा विष्णु महेश इन्द्र प्रभृति समस्त देव देवी तथा समस्त मानवों से उपास्य।

मः-अपने पूर्वकृत कर्म फलों को भोगने के लिये वार-वार मृत्यु लोक में आने वाले जीवों के अन्तरात्मा।

आचार्य प्रवर श्रीआनन्दभाष्यकारजी ने प्रकृत प्रसङ्ग में 'यावद्वेदार्थगर्भम्' कहा है अतः इस महामन्त्र का पूर्णतया अर्थ को कह पाना अतिदुस्तर है तथापि यथा बुद्धि वैभव सव वेदशास्त्र इतिहास पुराण आगम आदि की सामञ्जस्यता के साथ साङ्गोपाङ्ग रूपसे मैंने श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर की प्रभा-किरण संस्कृत हिन्दी तथा गुजराती टीका में भाष्य किया है अतः विशेषार्थी जनों को वहीं देखना चाहिये यहां तों केवल दिग्दर्शन मात्र कराया गया है ॥६॥

**श्रीरामरावलाचार्यद्वारपीठेशनिर्मितः । स्तवोऽयं भवतान्नित्यं लोककल्याणकारकः ॥**

श्रीरामरावल द्वारपीठाचार्य श्रीविजयरामाचार्य प्रणीत यह श्रीरामषडक्षर महामन्त्रस्तव नित्य पाठ करनेवाले को कल्याण प्रद हो ।

आनन्दभाष्यसिंहासनासीन

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामेश्वरानन्दाचार्य प्रणीता

लघुदीपिका

卐 श्रीरामः शरणं मम 卐

श्रीहनुमान् जयन्ती कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी मङ्गलवार २०४१

शं भवतु सर्व जगतः

卐 श्रीसीतारामाभ्यां नमः 卐

अथबृहद् ब्रह्मसंहितान्तर्गतश्रीनारायणप्रोक्तम्

# श्रीरामाष्टाक्षरस्तोत्रम्

**चिद्रूपस्याऽऽत्मनो नित्यं पारतन्त्र्यं विचिन्त्य च ।**

**चिन्तयेच्चेतसा नित्यं श्रीरामः शरणं मम ॥१॥**

आनन्दभाष्यसिंहासनासीन

**जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामेश्वरानन्दाचार्य**

कृता बालबोधिनी टीका

**सीतारामसमारम्भां रामानन्दार्यमध्यमाम् ।**

**रामप्रपन्नगुर्वन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥**

चित् स्वरूप जीवात्मा की श्रीराम पराधीनता का सर्वदा स्मरण कर हृदय से हर हमेशा श्रीरामजी ही मेरे एकमात्र शरण (रक्षक) हैं इसका चिन्तन करें ॥१॥

**अचिन्त्यस्य शरीरादेः स्वातन्त्र्यं नैव विद्यते । चिन्तयेच्चेतसा नित्यं श्रीरामः शरणं मम ॥२॥**

चिन्तन योग्यता रहित शरीरादि की स्वतन्त्रता नहीं है, अतः आत्मा के उद्धार के लिए हृदय से सर्वदा श्रीरामजी मेरे आश्रय शरण हैं, इसका चिन्तन करें ॥२॥

**आत्माधारं स्वतन्त्रं च सर्वशक्ति विचिन्त्य च । चिन्त्येच्चेतसा नित्यं श्रीरामः शरणं मम ॥३॥**

सर्वेश्वर श्रीरामजी को सम्पूर्ण जीवात्मा का एकमात्र आधार और सर्व शक्ति सम्पन्न स्वतन्त्रता का सर्वदा स्मरण कर हृदय से सर्वदा श्रीरामजी मेरे शरण हैं, इसका चिन्तन करें ॥३॥

**नित्यात्मगुणसंयुक्तो नित्यात्मतनुमण्डितः । नित्यात्मकेलिनिलयः श्रीरामः शरणं मम ॥४॥**

नित्य आत्मा के गुणों से सर्वदा संयुक्त तथा नित्य आत्म शरीर से सर्वदा विभूषित और नित्य आत्म क्रीडा के दिव्य स्थान श्रीरामजी मेरे रक्षक शरण हैं ॥४॥

**गुणलीलास्वरूपैश्च मितिर्यस्य न विद्यते । अतो वाङ्मनसाऽवेद्यः श्रीरामः शरणं मम॥५।**

सम्पूर्ण दिव्य गुणों में तथा दिव्य लीलाओं में और स्वरूपों में जिसकी इयत्ता-सीमा मर्यादा या अन्त नहीं है, ऐसे वाणी और मन से भी अज्ञेय एकमात्र शरणागत जन वेद्य श्रीरामजी मेरे शरण हैं ॥५॥

**कर्ता सर्वस्य जगतो भर्ता सर्वस्य सर्वगः । आहर्ता कार्यजातस्य श्रीरामः शरणं मम ॥६॥**

आदि काल में सव जगत का उत्पन्न करने वाले तथा उत्पादित सव जीवों का भरणपोषण करनेवाले और सव कार्य स्वरूप का अन्त में संहार करनेवाले सर्वग सर्व व्यापक सर्वेश्वर श्रीरामजी मेरे आश्रय शरण हैं ॥६॥

**वासुदेवादिमूर्तीनां चतुर्णां कारणं परम् । चतुर्विंशतिमूर्तीनामाश्रयः शरणं मम ॥७॥**

वासुदेव प्रद्युम्न अनिरुद्ध तथा संकर्षण रूप चार व्यूहों के परम कारण रूपसे प्रसिद्ध यानी चतुर्व्यूह मूर्ति के कारण तथैव चतुर्विंशति यानी चौवीश मूर्ति-अवतारों के आश्रय अर्थात् चौवीश अवतारों के कारण रूप से स्थित श्रीरामजी ही मेरे आश्रय-शरण हैं ॥७॥

**नित्यमुक्तजनैर्जुष्टो निविष्टः परमे पदे । परं परमभक्तानां श्रीरामः शरणं मम ॥८॥**

सर्वदा नित्य मुक्त जनों से सेवित तथा परम पद श्रीसाकेत में निविष्ट अर्थात् विराजमान और अभक्त जनों से कभी भी प्राप्त नहीं किये जा सकने वाले अथवा भक्तजनों के एकमात्र आश्रय पर पुरुष सर्वमनोरथ पूरक श्रीरामजी मेरे शरण हैं ॥८॥

**महदादिस्वरूपेण संस्थितः प्राकृते पदे । ब्रह्मादिदेवरूपैश्च श्रीरामः शरणं मम ॥९॥**

सृष्टि प्रसङ्ग में प्राकृत (प्रकृति सम्बन्धि) पद स्वरूप में महद् अहंकार तन्मात्रादि रूपसे संस्थित, और सृष्टि स्थिति तथा प्रलयरूप कार्यों को सम्पादन करने के लिये ब्रह्मादि देव रूपों से संस्थित श्रीरामजी मेरे शरण हैं ।।९।।

**मन्वादिनृपरूपेण श्रुतिमार्गं विभर्ति यः । प्रजापतिस्वरूपेण श्रीरामः शरणं मम ।।१०।।**

जो प्रजापति-ब्रह्मादि तथा मन्वादि राजा स्वरूप से अपने से उपदिष्ट वेद मार्ग का पालन तथा प्रकाशमान करते हैं वे श्रीरामजी मेरे शरण हैं ।।१०।।

**ऋषिरूपेण यो देवो वन्यवृत्तिमपालयत् । योऽन्तरात्मा च सर्वेषां श्रीरामः शरणं मम ।।११।।**

जिन देव श्रीरामजी ने ऋषिरूप से वन्यवृत्तिओं को पालन किया और जो सभी के अन्तरात्मा के रूपमें हैं वे सर्वेश्वर श्रीरामजी मेरे शरण हैं ।।११।।

**योऽसौ सर्वनतुः सर्वसर्वनामा सनातनः । अलिप्तः सर्वभावेषु श्रीरामः शरणं मम ।।१२।।**

जो सर्व शरीर सर्व स्वरूप सर्वनाम तथा सनातन और सव भावों में अलिप्त हैं ऐसे श्रीरामजी मेरे शरण हैं ।।१२।।

**बहिर्मर्त्यादिरूपेण सद्धर्ममनुपालयन् । परिपाति जनान् दीनाञ् श्रीरामः शरणं मम ।।१३।।**

जो बाहर देखावे के लिए माया मनुष्यादि रूप से सद्धर्म पालते हुए शरणागत दीन जनों को पालन करते हैं, वे श्रीरामजी मेरे शरण हैं ।।१३।।

**यश्चात्मानं पृथक्कृत्य भक्तप्रेमवशं गतः । अर्चायामास्थितो देवः श्रीरामः शरणं मम ।।१४।।**

जो सर्वदेव पूजनीय श्रीरामजी स्व लीला सम्पादनार्थ अपनी आत्मा को पृथक् करके भक्तों के प्रेमाधीन होकर अर्चा श्री विग्रह के रूपमें सर्वजन सुलभ होकर स्थित हैं ऐसे सर्वरूप श्रीरामजी मेरे शरण हैं ।।१४।।

**अर्चावताररूपेण दर्शनस्पर्शनादिभिः । दीनानुद्धरते योऽसौ श्रीरामः शरणं मम ।।१५।।**

अर्चा पूजा के लिये अवतार के रूपसे दर्शन और स्पर्श सेवादियों के द्वारा जो दीनों का उद्धार करते हैं, वे श्रीरामजी मेरे शरण है ।।१५।।

**कौसल्याशुक्तिसंजातो जानकीकण्ठभूषणः । मुक्ताफलसमो योऽसौ श्रीरामः शरणं मम ।१६।**

कौसल्या रूपसीप से समुत्पन्न श्रीजानकीजी के कण्ठ का आभूषण भूत जो मुक्ता फल के समान हैं, ऐसे श्रीरामजी मेरे शरण हैं ।।१६।।

**विश्वामित्रमखत्राता ताटकागतिदायकः । अहल्याशापशमनः श्रीरामः शरणं मम ।।१७।।**

विश्वामित्रजी के यज्ञ का रक्षक ताडका को गति यानी मुक्ति देनेवाले और अहल्या के शाप को अपने चरणरज के स्पर्श से दूर कर उन्हें सद्गति देनेवाले सर्व

पाप तापों को शमन करनेवाले श्रीरामजी मेरे शरण हैं ।।१७।।

**पिनाकभञ्जनः श्रीमाञ्जानकीप्रेमदायकः । जामदग्न्यप्रतापघ्नः श्रीरामः शरणं मम ।।१८।।**

पीनाक धनुष को तोडने वाले श्रीजानकीजी को प्रेम दाता और परशुरामजी के प्रताप को हरण करनेवाले सर्व समर्थ षडैश्वर्यशाली श्रीरामजी मेरे शरण हैं ।।१८।।

**राज्याभिषेकसन्तुष्टः कैकेयीवचनात् पुनः । पित्रा दत्तवनक्रीडः श्रीरामः शरणं मम ।।१९।।**

पहले राज्याभिषेक की वात श्रवण से सन्तुष्ट फिर कैकेयी के वचन से पिता से दी हुई वन क्रीडा वाले अर्थात् राज्य प्राप्ति से भी अधिक आनन्द पूर्वक पिता की आज्ञा पालनार्थ वन में सुख पूर्वक क्रीडा करने वाले सर्व सुख स्वरूप श्रीरामजी मेरे शरण्य हैं, अन्य नहीं ।।१९।।

**जटाचीरधरो धन्वी जानकीलक्ष्मणान्वितः । चित्रकूटकृताऽऽवासः श्रीरामः शरणं मम ।२०।**

जटा चीर के धारण करनेवाले धनुधारी श्रीजानकीजी तथा श्रीलक्ष्मणजी के साथ चित्रकूट में निवास करनेवाले श्रीरामजी मेरे शरण हैं ।।२०।।

**महापञ्चवटीलीला संजातपरमोत्सवः । दण्डकारण्यसञ्चारी श्रीरामः शरणं मम ।।२१।।**

लोकोत्तर फल प्रद पञ्चवटी में की गई मानवी लीला से समुत्पन्न महा उत्सव वाले और दण्डकारण्य में भ्रमण करनेवाले श्रीरामजी मेरे शरण हैं ।।२१।।

**खरदूषणसम्भेदी दुष्टराक्षसभञ्जनः । हृतशूर्पणखाशोभः श्रीरामः शरणं मम ।।२२।।**

खरदूषणों के विदारक यानी उनका वध करनेवाले दुष्ट राक्षसों के आमर्दक अर्थात् दुष्टों को संहार करनेवाले और शूर्पणखा की शोभा यानी नाक कान को नष्ट करनेवाले श्रीरामजी मेरे शरण हैं ।।२२।।

**मायामृगविभेत्ता च हृतसीताऽनुतापकृत् । जानकीविरहाऽऽक्रोशी श्रीरामः शरणं मम ।।२३।।**

कपट हरिण के विदारणकर्ता यानी मारने वाले हरि गयी श्रीसीताजी के विषय में अनुताप कर्ता और श्रीसीताजी के वियोग में विलाप करने वाले श्रीरामजी मेरे शरण हैं ।।२३।।

**लक्ष्मणानुचेरो धन्वी लोकयात्राविडम्बकृत् । पम्पातीरकृतान्वेषः श्रीरामः शरणं मम ।।२४।।**

लोकयात्रा के अनुरूप विडम्बन आचरण अर्थात् सामान्य मनुष्य के समान अपनी लीलाओं को करने वाले तथा श्रीलक्ष्मण रूप सेवक वाले धनुर्धारी और पम्पा के तट पर श्रीसीताजी का अन्वेषण करने वाले श्रीरामजी मेरे शरण हैं ।।२४।।

**जटायुत्राणकर्ता च कबन्धगतिदायकः । हनुमत्कृतसाहित्यः श्रीरामः शरणं मम ।।२५।।**

जटायु के रक्षक और कबन्ध को गति मुक्ति देनेवाले अपनी अवतार लीला को सम्पादन करने के लिये अनन्य सेवक श्रीहनुमानजी से मिलने वाले श्रीरामजी मेरे शरण हैं ॥२५॥

**सुग्रीवराज्यदः श्रीशो बालिनिग्रहकारकः ।अङ्गदाऽऽश्वासनकरः श्रीरामः शरणं मम ॥२६॥**

सुग्रीव को राज्य देनेवाले लक्ष्मी पति वाली का निग्रह करने वाले और अङ्गद को आश्वास देकर अभय करनेवाले श्रीरामजी मेरे शरण हैं ॥२६॥

**सीताऽन्वेषणनिर्मुक्तो हनुमत्प्रमुखव्रजः ।वेलानिवेशितबलः श्रीरामः शरणं मम ॥२७॥**

श्रीहनुमान् श्रीअङ्गद प्रमुख सेना नायकों को श्रीसीताजी के खोजने के लिये आज्ञा देनेवाले तथा समुद्र तट पर अपनी वानरी सेना को स्थापित करनेवाले श्रीरामजी के शरण में मैं हूँ ॥२७॥

**हेलोत्तारितपाथोधिर्बलनिर्धूतराक्षसः ।लङ्कादाहकरो धीरः श्रीरामः शरणं मम ॥२८॥**

अनायास से ही विशाल वानरी सेना को समुद्र पार करा चुकने वाले तथा अपनी अपरिमित सैन्य बल से राक्षसों को मारने वाले और शत्रु नगरी लङ्का को जलाने वाले श्रीरामजी मेरे शरण हैं ॥२८॥

**सेतुसम्बद्धपाथोधिलङ्काप्रासादरोधकः ।रावणादिप्रभेत्ता च श्रीरामः शरणं मम ॥२९॥**

अपार समुद्र का निग्रह कर उसको अवरोध करनेवाले समुद्र पर पूल वांधने वाले तथा लङ्का के गढ को अवरोध कर रावण कुम्भकर्णादियों के मारनेवाले श्रीरामजी मेरे शरण हैं ॥२९॥

**जानकीजीवनत्राता विभीषणसमृद्धिदः ।पुष्पकाऽऽरोहणाऽऽसक्तः श्रीरामः शरणं मम ॥३०॥**

श्रीजानकीजी के जीवन का रक्षक तथा विभीषण को समृद्धि देनेवाले और पुष्पक विमान पर चढने में तत्पर श्रीरामजी मेरे शरण हैं ॥३०॥

**राज्यसिंहासनाऽऽरूढः कौसल्याऽऽनन्दवर्धनः ।नामनिर्धूतनिरयः श्रीरामः शरणं मम ॥३१॥**

राज्य सिंहासन पर बैठे हुए श्रीकौसल्या माताजी के आनन्द के वर्धक और अपने अलौकिक दिव्य श्रीरामनाम के प्रताप से नरक या पाप ताप समस्त दुःखों का नाश कर चुकने वाले श्रीरामजी मेरे शरण हैं ॥३१॥

**यज्ञकर्ता यज्ञभोक्ता यज्ञभर्ता महेश्वरः ।अयोध्यामुक्तिदः शास्ता श्रीरामः शरणं मम ॥३२॥**

यज्ञ के कारक यज्ञ फल के भोगकर्ता यज्ञ के भरणपोषण कर्ता महेश्वर सर्वेश्वर सर्वकर्माधिनायक अयोध्या वासियों को या सव शरणापन्न जीवों के सायुज्य मोक्षदाता

और सव जगं शासक श्रीरामजी मेरे शरण हैं ॥३२॥

**प्रपठेद्यः शुभंस्तोत्रं मुच्यते भवबन्धनात् । मन्त्रश्चाष्टाक्षरो देवः श्रीरामः शरणं मम ॥३३॥**

**इति बृहद् ब्रह्मसंहितायां श्रीनारायणप्रोक्तं सर्वकामनासिद्धिप्रदं श्रीरामाष्टाक्षरस्तोत्रम्**

इस श्रीरामाष्टाक्षर स्तोत्र का पाठ जो कोई मानव नियत रूपसे करेगा वह भवबन्धन से मुक्त हो जायगा नाम तथा नामी के अभेद होने से अष्टाक्षर मन्त्ररूप ही श्रीरामजी हैं वे मेरे शरण हैं अर्थात् सर्वशरण सर्वेश्वर श्रीरामजी की शरणागति स्वीकार कर मैं निश्चिन्त हूँ ।

यह बृहद् ब्रह्मसंहिता में श्रीनारायणजी से श्रीरामजी को प्रसन्न कर श्रीराम सान्निध्य प्राप्त करने के लिये पठित सर्व कामना प्रद श्रीरामाष्टाक्षर स्तोत्र है जो मानव इसका नियमित पाठ करेगा उसके सव मनोरथ सिद्ध होंगे तथा अन्त में श्रीराधाम की प्राप्ति होगी ॥३३॥

आनन्दभाष्यसिंहासनासीन

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामेश्वरानन्दाचार्य

कृता ♆ बालबोधिनी ♆ टीका

卐 श्रीरामः शरणं मम 卐

वसन्त पञ्चमी २०४१

卐 श्रीमते रामानन्दाचार्याय नमः 卐

❀ श्रीरामवल्लभायै जगज्जनन्यै श्रीसीतायै नमः ❀

आनन्दभाष्यसिंहासनासीन

**जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामेश्वरानन्दाचार्य**

प्रणीत

# ♆ श्रीसीतामहिम्नस्तवः ♆

**सीतारामसमारम्भां रामानन्दार्यमध्यमाम् ।**
**रामप्रपन्नगुर्वन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥**

**महिम्नां सीतायाः निरवधिगुणायाः प्रवचनं**
**विधातुं नो धाता नहि पशुपतिर्नापि गिरिजा ।**
**क्षमः क्वाशक्तोऽहं परिमितमतिः स्वं लघुवचः**
**पुनातुं यत्नेन प्रथितगुणगाथां विरचये ॥१॥**

卐 सर्वेश्वर श्रीसीतारामाभ्यां नमः 卐

❀ प्रस्थानत्रयानन्दभाष्यकराय नमोनमः ❀

आनन्दभाष्यसिंहासनासीन

## जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामेश्वरानन्दाचार्य

卐 प्रणीत ५ प्रकाश 卐

गुरुवर चरण सरोज में पुनि पुनि शीश नवाय ।

सीता महिमा स्तोत्र की भाषा लिखउँ वनाय ॥१॥

असीमित गुणगण मण्डित सर्वेश्वरी श्रीसीताजी की महिमाओं का गान-प्रवचन करने के लिये चतुर्मुख ब्रह्मा भगवान् पशुपति शङ्कर और भवानी भी सक्षम नहीं हैं तो आयुष्य एवं बुद्धि वैभव आदि की दृष्टि से असमर्थ सीमित बुद्धि वाला मैं श्रीसीताजी की महिमाओं का वर्णन कैसे कर सकता हूँ। तथाऽपि अपनी स्वल्प वाणी को पावन वनाने के लिये सकल जगत् प्रसिद्ध सर्वेश्वरी श्रीसीताजी के दिव्य गुणों एवं अलौकिक गाथा कथाओं को यत्न पूर्वक अपनी शब्दावली में विरचित गुंफित करता हूँ॥१॥

**कृपावारांराशिर्जनकतनया स्वर्णिमतनुः**

**धरित्रीगर्भोत्था ऋषिजननुता सौख्यजलधिः ।**

**स्तुता देवैर्दैत्यैर्मनुजजनसन्तापशमनी**

**ममोपास्या देवी हरतु दुरितं लोकजननी ॥२॥**

जो जगदम्बा श्रीजानकीजी अनुकम्पा के सागर हैं। सुवर्ण सदृश अनुपम कान्ति सम्पन्न हैं। धरणी के गर्भ से जिनका प्रादुर्भाव हुआ, ऋषि मुनियों के द्वारा जिनकी स्तुति की गयी, एवं जो आनन्द के सागर हैं। देवाओं एवं दैत्यों के द्वारा जिनकी स्तुति की गयी तथा जो मानवों के सर्वविध सन्तापों का निवारण करने वाली हैं। ऐसी मेरी उपासनीय देवता समस्त चराचर जगत की माता मेरे जन्म-जन्मान्तर के समस्त पापों एवं तापों का निवारण कर दें ॥२॥

**विदेहानां नाथो नरपति मुनिस्तत्त्वविदुषां**

**प्रधानस्त्वत् प्राप्तौ कनकहलयोगेन सुभगाम् ।**

**श्रुतीनां सर्वस्वं प्रकृति कमनीयां धरणिजां**

**प्रयत्नै स्वात्मानं सुकृतिकृतिनं सो विहितवान् ॥३॥**

आत्म तत्त्वं विज्ञानियों में प्रमुख मिथिला प्रदेश के राजाधिराज राजर्षि महाराज

जनक परम सुन्दरी स्वरूपा जगद् धातृ आपको प्राप्त करने के लिये सुवर्णमय हल के कर्षण से समस्त वेदादि शास्त्रों के सर्वस्व जन्मजात सर्वगुण सम्पन्नतावश सकल जगत् का अभिलषणीय पृथिवी के गर्भ से आविर्भूत सर्वेश्वरी श्रीसीताजी को अपने सफल प्रयास से प्राप्त कर राजा जनक स्वयं को पुण्य कर्म कलाप से कृत कृत्य सफलमनोरथ वनाये ॥३॥

**अनिर्वाच्यं रूपं स्तुतिनिकरवर्ण्यास्तव गुणाः**
**कथं वच्मिस्तोत्रं जननि ? विविधाज्ञाननिलयः ।**
**जगद् वन्द्यां दिव्यां परमपदसाकेतनिलयां**
**नमाम्याद्यां शक्तिं प्रकृतिरमणीयां गुणनिधिम् ॥४॥**

अनन्त रूप शालिनी श्रीरामचन्द्राभिन्न होने के कारण अनिर्वचनीय स्वरूप शालिनी श्रीसम्प्रदाय-श्रीरामानन्दसम्प्रदाय सम्बन्धित पूर्वाचार्यों के अनेक दिव्य प्रबन्धों श्रीवशिष्ठ संहिता एवं श्रीरामतापनीय उपनिषदों में श्रीसीतारामजी का अभेद रूपी सर्वकारण सर्वरूपादि निरूपित किया गया है। 'विश्वरूपस्य ते राम ? विश्वे शब्दा हि वाचकाः' श्रीमद्रामायण एवं श्रीवशिष्ठ संहिता में-

**"सर्वेश्वरी यथाचाहं रामः सर्वेश्वरस्तथा ।**
**षड्गुणो भगवान् रामः षड्गुणाहं स्वभावतः ॥**
**सर्वस्याधारभूतौ च त्वावामेवहि मारुते ।**
**स्वे महिम्नस्थितावावामन्याधारो न चावयोः ॥**
**शीतता हि यथा नीरे तथाहं राघवे स्थिता ।**
**गन्धवत्वं यथा भूम्यां स्थितो रामस्तामयि ॥"**

इसप्रकार बहुत विशद रूप से निरूपित किया गया है। अतः अनिर्वचनीय रूप है। अनन्त स्तोत्र समूह द्वारा वर्णनीय आपके अनन्त गुण हैं। अतः हे जगदम्बा श्रीसीताजी ? विविध प्रकार के अज्ञानों का आगार मैं आपके स्तुति वचन को कैसे वर्णित करुँ। समस्त ब्रह्माण्ड का वन्दनीय अलौकिक परम पद दिव्य धाम श्रीसीकेत नामक लोक में निवास करनेवाली स्वाभाविक रूपसे सुन्दर सद्गुणों के आकर आदि शप्ति श्रीसीताजी को मैं सादर दण्डवत् प्रणाम करता हूँ ॥४॥

**जगज्जातं त्वत्तो स्थितमपि च लीनं त्वयिमव-**
**त्यतस्ते पादाब्जं विधिभवमुखा देवनिवहाः ।**

**श्रयन्ते स्वोन्नत्यै जननि ? विदितं शास्त्रनिचयैः**

**निजोद्धृत्यै दीनस्तवचरणप्रीतिं कलयति ॥५॥**

हे जगदम्बा श्रीसीताजी ? ये समस्त ब्रह्माण्डादि चराचर जगत् आप से उत्पन्न हुआ है, आप से ही परिपालित है तथा आप में ही विलीन होते हैं। 'रेफारूढा' इस उपनिषद् वचन में रेफ का अर्थ श्रीसीताजी से अभिन्न श्रीराम कहा गया है। एवं अकार द्वय तथा मकार का अर्थ ब्रह्मा विष्णु एवं महेश निरूपित किया गया है अतः कहा है-

**उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीम् ।**

**सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम् ॥**

इन कारणों से आपके चरणकमल को ब्रह्मा विष्णु एवं महेश आदि देवता समुदाय अपना आश्रय बनाते हैं। ये समस्त देवगण आत्मगत अभिवृद्धि के लिये आपके आश्रित होते हैं यह समस्त शास्त्र समूह से अवगत होता है। अतः हे माताजी अपना उद्धार के लिये यह निराश्रितं दीन भक्त आपके चरणों में पड़ा हुआ है। एवं आपके चरणारविन्द में अनुराग रखता है ॥५॥

**धनुर्यज्ञे रामः कुशिकतनयादेशवशगः**

**प्रतीपैर्भूपालैरपि सफलताहीनविमुखैः ।**

**असूयासन्दृष्टः तव प्रियतमो वीरप्रमुखः**

**परीक्षाबुद्ध्या ते परिणयविधौ प्रीतिमकरोत् ॥६॥**

विदेहराज जनक के धनुष यज्ञ में जिसमें आपका स्वयम्वर होना था, उस समय भगवान् श्रीरामचन्द्रजी कुशिकतनय विश्वामित्र मुनिजी के आदेश के अधीन होकर प्रतिपक्षी राजाओं के द्वारा जो सफलता नहीं पाने के कारण विमुख होकर गुणेर्ष्या पूर्वक देखे गये वे आपके प्रियतम वीरों में प्रमुख श्रीरामचन्द्रजी परीक्षा की भावना से आपके वैवाहिक प्रकरण में परम आनन्द युक्त आपको किये थे ॥६॥

**सुंता वैदेहस्य त्रिभुवनपतेर्वल्लभतमा**

**धरित्रीसम्भूता सकलललनामौलिप्रथिता ।**

**विवाहप्रस्थाने गरिमणिगते राघववरः**

**समीक्ष्यत्वां देवीमनुपमवरैस्तोषयदसौ ॥७॥**

मिथिला के राजाधिराज विदेहराज जनक की सुपुत्री अखिल ब्रह्माण्डनायक त्रिभुवनपति श्रीरामजी की परम प्रेयसी विश्वम्भरा धरणी के गर्भ से प्रादुर्भूत समस्त

ब्रह्माण्ड की ललनाओं के मुकुटमणि के स्वरूप में प्रसिद्ध श्रीसीताजी विवाह होने के वाद जब अपने श्वसुर के घर प्रस्थान करने लगी तव अतिशय भारी हो जाने पर रघुकुलनायक भगवान् श्रीरामचन्द्रजी आपको देखकर तथा लोक माता आपकी भावनायें जानकर अनुपम वरदान से आपको परम सन्तुष्ट किये। पौराणिक कथा है कि-जव विवाह के वाद मिथिला से श्रीसीताजी को अयोध्या ले जाने के लिये डोली को कहार उठाने लगे तो श्रीसीताजी में इतना भार हो गया कि कोई भी कहार डोली को हिला तक नहीं सके, तव भगवान् श्रीरामजी श्रीसीताजी को प्रश्न दृष्टि से देखने लगे मिथिला की जनता श्रीसीताजी को कातर दृष्टि से देख रही थी, तव अन्तर्यामी सर्वेश्वर श्रीरामजी ने श्रीसीताजी को वरदान दिया कि मिथिला भूमि में जिसका जन्म एवं शरीर त्याग होगा उसे दिव्य श्रीसाकेत धाम प्राप्त होगा अर्थात् वह सायुज्य मुक्ति का भागी होगा अन्तर्यामी सर्वेश्वरी ? इस जन के ऊपर भी कटाक्षपात करें ॥७॥

**तवोत्पत्तेर्भूमौ जनकपुरजाताः सुकृतिनः**

**त्वया सर्वे लोकाः जननवशतो मुक्तिपदवीम् ।**

**तव स्नेहात् सीते रघुपतिकृपाभाजनगताः**

**अतो मन्दप्रज्ञस्तवचरणसेवासु निरतः ॥८॥**

हे जगदम्बे श्रीसीते ? आपके प्रादुर्भाव भूमि राजा जनक के राज्य मिथिला भूमि में उत्पन्न होने वाले अनन्त जन्म जन्मान्तर से अर्जित पुण्यशाली प्राणी केवल उस भूमि पर जन्म धारण मात्र से आपके वात्सल्य से आप्लावित अनुरागरूप कारण से मोक्ष सायुज्य पदवी को प्राप्त करते हैं। इसप्रकार आपके द्वारा समस्त मिथिला के प्राणी मोक्ष पद भाजन वना दिये गये, हे सर्वेश्वरी श्रीसीते ? आपके वात्सल्यानुराग के कारण ही आपके पितृगृह के प्राणी अखिल ब्रह्माण्डनायक भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की अनुकम्पा पात्रता को प्राप्त कर सके। इसलिये हे जननी ! मन्द प्रतिभा वाला यह रामेश्वरानन्दाचार्य आपके श्रीचरणों की सेवाओं में समर्पित हो गया है ॥८॥

**कृतार्थस्ते तातस्तव जननभूमिः सुकृतिनी**

**सुधन्यः श्रीरामोदशरथनरेशः सदयितः ।**

**अयोध्याभूः पुण्या तवचरणसङ्गेन जननि !**

**प्रसीद प्राप्तं स्वं प्रणत पतितं पाहि स्वजनम् ॥९॥**

हे जगदम्बे श्रीसीते आपके चरणों की सङ्गति प्राप्तकर जगदम्बा के जनक होने

का सौभाग्य प्राप्त कर आपके पिताजी कृतार्थ हुए। आप जिस भूभाग में आविर्भूत हुई वह जन्म भूमि भी अनन्त पुण्यशालिनी है। आपको परम प्रियतमा पत्नी के रूपमें प्राप्तकर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी धन्य हुए। एवं पुत्रवधू के स्वरूप में आपको पाकर महाराज दशरथ भी अपनी कौशल्या आदि रानियों के सहित वडभागी हुए। और अयोध्या नगरी की भूमि भी आपके चरणों के सम्पर्क से पुण्यजनक भूमि वन गयी। हे मातः आप मेरे ऊपर प्रसन्न होवें और अपनी सेवा में उपस्थित प्रणाम पर्याय तत्पर चरणों में गिरा हुआ इस अपने आत्मीयजन की सर्वतोभावेन रक्षा करें ॥९॥

**प्रदात्री मोक्षाणां त्वमसि निखिलज्ञानजननी**
**समृद्धीनां मूलं मुनिजननुते तेऽङ्घ्रिकमले ।**
**त्वमादिर्लोकानां जननि ? जपतां मुक्तिजननी**
**नमामि त्वां देवि? त्वमसि परमब्रह्ममहिषी ॥१०॥**

हे मातः श्रीसीते ? आप सारूप्य सालोक्य सायुज्य आदि सभी मोक्षों को देनेवाली हैं। सभी प्रकार के ज्ञानों को उत्पन्न करने वाली हैं। आप विविध प्रकार की समृद्धियों के मूलकारण हैं। आपके चरणकमल मुनिजनों से वन्दित हैं। आप सभी लोकों के आदि कारण हैं। हे जननी आप उपासकों को सायुज्य मुक्ति प्रदान करती हैं। हे देवि आप परब्रह्म श्रीरामचन्द्रजी की महारानी हैं, आपको सादर दण्डवत् प्रणाम करते हैं ॥१०॥

**प्रभूतो ते भक्तिः नहि जननि ? मे लोलमनसः**
**तथाऽपि श्रीमत्या सदयमवलोक्यो निजजनः ।**
**भृशं पाथो मेघो वितरति यथा चातकमुखे**
**तथाऽनुग्राह्योऽयं तवचरणसेवासु निरतः ॥११॥**

हे जननी मुझ चञ्चल मानस वाले का आपके प्रति बहुत अधिक मात्रा में भक्ति नहीं है तथाऽपि आपके द्वारा अनुकम्पा पूर्वक देखने योग्य यह सामान्य भक्त तो है। जिसप्रकार वादल सामान्य श्रद्धावान् होने पर भी चातक के मुख में पर्याप्त एवं पुनः पुनः जल प्रदान करता है उसी प्रकार यह आप का सेवक जो आपकी सेवा में तत्पर है वह मैं आपके द्वारा अनुगृहीत करने योग्य हूँ क्योंकि आपके प्रति मैं श्रद्धा सम्पन्न हूँ ॥११॥

**महद् विश्वासौघैस्तवचरणयुग्मं श्रितवतः**
**न युक्तं ते मातः सुकृतिनिकरावेक्षणविधिः ।**

**यदीष्टं नो दद्यादनुपदमसौकल्पलतिका**
**विशिष्टा सामान्यैः कथमितरवल्लीप्रभृतिभिः ॥१२॥**

हे माता महान् विश्वास पुञ्ज पूर्ण आस्था हृदय में होने से आपके चरण युगल को आश्रय वनाया हुआ मेरा पुण्यपुञ्ज कितना सञ्चित है इस विषय का विचार करना आपके लिये समुचित नहीं है। आपके श्रीचरणाश्रित हुआ इतने से ही मेरा उद्धार आपको कर देना चाहिये। यदि कल्पलता के नीचे जाते ही वह अभिमत वस्तु प्रदान नहीं कर दे तो अन्य लताएं जो साधारण हैं, उनसे उसकी विशिष्टता क्या होगी। अतः आप श्री के श्रीचरणाश्रित यह जन कैसा है इस विषय को विना विचारे आप मेरा उद्धार कर दें ॥१२॥

**त्वमानन्दं लोकान् रघुकुलमणेः सन्निधिवशाद्**
**ददासीत्थं मातः श्रुतिनिकरशास्त्रैश्च कथिता।**
**तथा श्रीरामस्य प्रकृतिरिति शक्तिर्निगदिता**
**अतस्त्वां क्लेशानां हरणविधयेऽहं शरणगः ॥१३॥**

हे माताजी 'श्रीराम सान्निध्यवशाज्जगदानन्द दायिनी' इत्यादि प्रमाणानुसार आप रघुकुलमणि भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के सान्निध्य होने से सभी लोकों को आनन्द देने वाली हैं ऐसा श्रुति स्मृति आदि समूह के द्वारा कहा गया है। और श्रुतियों के द्वारा कहा गया है कि आप श्रीरामजी की प्रकृति रूपा शक्ति हैं। इसलिये आधिभौतिक आधिदैविक और आध्यात्मिक क्लेशों का निवारण करने के लिये मैं आपका शरणागत हुआ हूँ ॥१३॥

**समेषां जीवानां स्थितिजननसंहारविधिभिः**
**अवस्थाभिः सीते ? जनकतनये ? त्वं हि जगतः।**
**विभूषाभिर्माभिः परमपुरुषालङ्कृतिरथ**
**सदाश्लिष्टा रामं प्रणववररूपासि प्रकृतिः ॥१४॥**

आप विश्व तैजस और प्राज्ञ अवस्थाओं के द्वारा संसार के समस्त जीवात्माओं का उत्पत्ति पालन और संहार विधियों के द्वारा हे जनक नन्दिनी श्रीसीताजी इस संसार का आप ही कारण हैं। आप बहुमूल्य अलङ्करणों एवं अपनी स्वर्णिम आभा से परब्रह्म परमेश्वर श्रीरामचन्द्रजी की शोभा हो तथा सदैव श्रीरामजी से आश्लिष्टतया अभिन्न होने से ॐकार स्वरूपा उनकी प्रकृति हो ॥१४॥

**अविद्याकर्माख्या चिदचिद्सुविशिष्टस्य परमा**
**विभिन्नायाः सृष्टेः त्वमसिखलु शक्तीरघुपतेः।**

**महासत्ताशक्तिर्मुनिजनमनोमोहनिगदं**
**निहंसि त्वं मातः भवजलधिदोषं शमय मे ॥१५॥**

हे जननी आप चित् एवं अचित् से विशिष्ट परब्रह्म सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी की अविद्या कर्म नामक परम शक्ति हैं। और रघुकुलनायक भगवान् श्रीरामजी की विभिन्न प्रकारक सृष्टि विधायिनी उत्कृष्ट शक्ति भी हैं। महाशक्ति स्वरूपा आप मुनिजनों के मनो मोहरूपी जंजीर को तोडती हैं। अतः हे माताजी आप मेरे भी संसार सागर के दोषों को शान्त कर दें एवं अन्य आपके उपासकों के संसार सागर के दोषों को भी शान्त कर दें १५

**निवासः साकेते मुनिजनमुखास्ते स्तुतिकराः**
**कुटुम्बीयाजीवाः सुरनिकरबद्धाञ्जलिपुटः ।**
**रमेशः प्राणेशो निरवधिगुणे भूमितनये**
**अपूर्वं सौभाग्यं क्वचिदपि न साम्यं कलयसि ॥१६॥**

हे निस्सीम गुणगण शालिनी पृथिवी पुत्री श्रीसीते ! आपकी परम दिव्य धाम श्रीसाकेतलोक निवास स्थान है, मुनिजन जिनमें प्रधान है ऐसे उपासक आपकी स्तुति करते हैं। समस्त प्राणी मात्र आपके परिवारजन हैं। देवता समूह आपके समक्ष हाथ जोडे रहते हैं, रमानायक भगवान् श्रीरामजी आपके प्राणनाथ हैं, इस प्रकार आपका सौभाग्य सभी से विलक्षण होने से आप किसी के सौभाग्य से तुलनीय नहीं हैं, अतः अनुपम सौभाग्यवती हैं ॥१६॥

**मणिस्पर्शेलौहः सपदिलभते हाटकपद**
**मशुद्धं पानीयं भजति शुचितां गाङ्गसलिले ।**
**तथा मे पापौघैरतिमलिनस्वान्तं त्वयिरतं**
**पुनीतं नो यास्यत्यतिविमलगुण्यं च जननि ? ॥१७॥**

हे जननी ? लोहा पारसमणि का स्पर्श प्राप्त करते ही अतिशीघ्र सुवर्णत्व को प्राप्तकर लेता है। अपवित्र नाली नाले आदि का जल गङ्गाजल में मिलजाने पर पवित्रता को प्राप्त करता है। उसी प्रकार आपके चरणों में अनुरक्त अनन्त पापपुञ्ज से अति मलिन मेरा अन्तःकरण पवित्र अत्यन्त निर्मल एवं गुणों से सम्पन्न क्या ? नहीं होगा, अर्थात् अवश्य ही होगा ॥१७॥

**धरित्री सम्भूता जनकतनया लोकजननी**
**विशालाक्षीसीता रघुकुलवधू राजमहिषी ।**

**तथा वैदेहीति प्रथितविविधैर्नामजपनैः**
**पुनीतास्ते भक्ताः तव परमधामप्रतिगताः ॥१८॥**

पृथिवी पुत्री, जनकसुता, लोकमाता विशालनयना सीता रघुकुलवधू राजरानी, तथा वैदेही आदि प्रसिद्ध विविध सहस्त्रों नामों के जप करने से पावन वने हुए आपके भक्त आपके परम दिव्यधाम श्रीसाकेत को प्राप्त किये ॥१८॥

**विशालाक्ष्यास्तस्या जनकतनयायाः पदयुगे**
**परित्राणोपायः प्रणिपतनमात्रं त्रिजटया ।**
**समुक्ता राक्षस्यो भयवशगतास्तां शरणगाः**
**बभूवु स्तेन त्वं पतिविजयहर्षेण जयसे ॥१९॥**

हे जननी ? आप जिस समय छायारूपा रावण द्वारा अपहृत होकर लङ्का में थी, तो त्रिजटा नामक राक्षसी के द्वारा राक्षसीगण को सम्बोधित करके कहा गया कि- उस विशाल नयना जनकतनया श्रीसीताजी के चरण युगल में शरणागत होकर प्रणाम करना ही तुम सभी के रक्षा का उपाय है । ऐसी वातें सुनकर भयाकुल होकर वे राक्षसीगण आपके शरणागत हुई तो अति अपकार करने वाली उन सवों को अपने शरण में रखकर अभय कर दिया, इस प्रकार आप अपने पति श्रीरामजी के विजय जनित प्रसन्नता से उत्कृष्ट है, अतः प्रणम्य है ॥१९॥

**अपश्यंस्त्वां रामः समनुभवति क्लेशमतुलं त्वदर्थं श्रीरामो हरिपतिसखित्वं विहितवान्।**
**प्रभावस्ते सीते दशवदनवंशस्यपतनं समेलोकाजानन्त्यतिविमलशीलं जनकजे ॥२०॥**

हे जनकतनये श्रीसीते आपको नहीं देखने पर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी असीम क्लेश का अनुभव करते थे, आपकी प्राप्ति के लिये ही वानरराज श्रीसुग्रीवजी से मित्रता किये । हे श्रीसीते आपके विलक्षण प्रभाव से ही दशमुख रावण के समग्र वंश का विनाश हुआ । सारा संसार इस वात को जानता है कि आपका शील सदाचार अत्यन्त निर्मल है ॥२०॥

**स्वयं दुःखाक्रान्ता रघुपतिवियोगोत्थज्वलनैः**
**समर्था संहारे निकषसुतसङ्घस्य जननि ? ।**
**प्रशस्ता कारुण्यात् विपुलदययाक्रान्तहृदये**
**प्रकामं कारुण्यं मयि भवतु ते मैथिलसुते ? ॥२१॥**

हे माताजी आप भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के वियोग से उत्पन्न अग्नि से अत्यन्त

दुःखाक्रान्त होने पर भी एवं राक्षस समूह का संहार करने में समर्थ होने पर भी अपने लोकोत्तर कारुण्य भाव से प्रशंसित होने के कारण आपने उनका संहार नहीं किया इतना ही नहीं 'पापानां वा शुभानां वा वधार्हाणां प्लवङ्गम । कार्यं कारुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति' इन वचनों से सर्वेश्वर श्रीरामजी से भी सभी दुःखदायीनियों को अभय दिलवादी अतः हे अतिशयदया से आप्लावित हृदये जननी ? मैथिलराज जनकतनया मेरे प्रति भी आप मेरी कामना के अनुरूप करुणाभाव प्रदर्शित करें ॥२१॥

**अनन्या रामेण ग्रहपतिविभेवासि महिते**
**त्वयाऽनन्यो रामः छविमिहितवद् भूमितनये ।**
**श्रुतिव्रातेऽभेदो निगदितमिदं निश्चयवचः**
**स्तुतिस्ते सीतेऽदं रघुपतिनुतिर्मेऽस्तु वचनम् ॥२२॥**

हे भूमितनये जिस प्रकार भगवान् दिवाकर से अभिन्न उनका प्रकाश है उसी प्रकार आप श्रीरामचन्द्रज़ी के साथ अभिन्न हो, तथा जैसे प्रकाश से अभिन्न दिवाकर हैं उसी प्रकार आप से अभिन्न श्रीरामचन्द्रजी हैं । ऐसा

**'अनन्या राघवेणाहं भास्करेण यथा प्रभा**
**अनन्या च मया सीता भास्करेण यथा प्रभा'**

श्रीमद्रामायण एवं 'सर्वेषामवताराणामावामेवावतारिणौ । भासकभास्करादी नामावामेवविभासकौ' श्रीवशिष्ठ संहिता आदि श्रुति समूह के द्वारा अनेक वचनों से सिद्धान्त वचन के रूपमें अभेद प्रतिपादन किया गया है । अतः हे श्रीसीते मेरा यह आपकी स्तुति वचन भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के लिये भी यह स्तुति वचन होवें ॥२२॥

**जगद् बन्द्ये मातस्तव पदसपर्यासु निरतःभवाब्धिं सानन्दं तरति दुरितं नाशयति यः।**
**समेषांशास्त्राणां विपुलविधिविज्ञानमहितःसवाञ्छासन्तानंपरमपदयानञ्च लभते२३**

हे समस्त लोकों के लिये वन्दनीय माताजी जो व्यक्ति आपके चरणकमलों की सेवाओं में सर्वतोभावेन लीन है वह आनन्द पूर्वक संसार सागर को पार कर लेता है एवं समस्त पापों को भी नष्ट करता है । वह सभी शास्त्रों के अपार विधि विधान एवं विज्ञान से सम्मानित होकर, अभिलाषा रूपी कल्पवृक्ष मार्ग द्वारा परमपद गमन कर श्रीराम सायुज्य प्राप्त करता है ॥२३॥

**त्वमादिर्लोकानां प्रकृतिरिति शास्त्रे निगदिता**
**अनादिर्विद्या त्वं भवभयहरीचासि महिते ।**

**विशुद्धं ब्रह्माख्यं सुखभयपदं त्वं जनकजे ?**
**भवोत्थं मे दुःखं हरकरुणया पाहि सततम् ॥२४॥**

हे सर्वलोक पूजिता जनकतनया श्रीसीताजी ? आप समस्त लोकों के मूलकारण हो आप शास्त्रों में प्रकृति इस शब्द से कही गयी हो 'प्रकृतिरिति सरस्वतीति लक्ष्मीरिति गिरिजेति जगन्मयीति वा याम् । गदति मुनिगणः कवित्वसिद्ध्यै कथमपि तां कलये विदेहकन्याम्' इसप्रकार जगद्गुरु श्रीरामभद्राचार्यजी ने सर्वेश्वरी श्रीसीताजी की प्रार्थना की है । आप अनादि विद्या हो तथा संसारभय का विनाश कारिणी हो । आप विशुद्ध ब्रह्म नामक आनन्दमय स्थान हो, अतः आप करुणा पूर्वक मेरे संसार जनित दुःखों को दूर करो तथा सदैव मेरी रक्षा करो ॥२४॥

**प्रकृत्या कारुण्यं जनयसि रमे सौख्यनिलये**
**महादेवो ब्रह्मा सुरमुनिमुखास्ते पदयुगम् ।**
**विधानेनोपास्य प्रचुरशिवसौख्यं तवकृपा**
**सुधासिन्धुं प्राप्ता मयि जननि तूर्णं वितरताम् ॥२५॥**

हे आनन्दागार परब्रह्म श्रीरामजी को आनन्दित करनेवाली श्रीसीते ? आप स्वभाव से ही प्राणी मात्र पर करुणाभाव उत्पन्न करती हो, महादेव, ब्रह्मा इन्द्र आदि देवता तथा मुनिजन ज्निनमें प्रधान हैं ऐसे उपासक लोग आपके चरणयुगल की विधान के अनुसार उपासना करके आप के कृपा रूपी अमृत सागर को प्राप्त किये,

**'ऐश्वर्यं यदपाङ्गसंश्रयमिदं भोग्यं दिगीशैर्जगत्**
**चित्रं चाखिलमद्भुतं शुभगुणावात्सल्यसीमा च या ।**
**विद्युत्पुञ्जसमानकान्तिरमितक्षान्तिः सुपद्मेक्षणा**
**दत्तान्नोऽखिलसम्पदो जनकजा रामप्रिया साऽनिशम्'**

इसप्रकार श्रीआनन्दभाष्यकारजी ने सर्वेश्वरीजी की स्तुति की है अतः हे जननी मेरे ऊपर भी उसी कृपा को शीघ्र प्रदान करें ॥२५॥

**प्रपन्नानामार्तिं हरसि कृपया राघवप्रिये ?**
**विपत्तीनां व्रातं निजनयनकोणेन हरसि ।**
**भवाब्धेः पारं स्वं चरणपतितं प्राप्य सहसा**
**करोषि त्वं सीते मम सकलदुःखं व्यपनय ॥२६॥**

हे श्रीरामचन्द्रवल्लभे श्रीसीते ? आप परम कृपा पूर्वक अपने शरणागत भक्तों

की दैहिक दैविक एवं भौतिक पीडाओं का निवारण करती हो। आप अपने कृपाकटाक्ष मात्र से ही अपने भक्तजनों के विपत्ति समूह को दूर करती हो। आप अपने चरणों में गिरे हुए भक्तों पर कृपाकर एकाएक अर्थात् तत्काल संसार सागर से पार उतारती हो अतः सर्व सामर्थ्य सम्पन्न होने के कारण मेरे सर्वविध दुःखों को विशेष रूपसे दूर कर दें ॥२६॥

**भवत्याच्छायाया हरणवशतो राक्षसपतिः**
**जनस्थानाद्धाष्ट्र्याद् निजकुलविनाशाकुलमतिः ।**
**बभूवेत्थं लोकाः सुविदितचणाः पावनधियः**
**सुशिक्षावाग्जातैः सुकृतिपथगान् संविदधते ॥२७॥**

आपकी छाया का जनस्थान से धृष्टता पूर्वक अपहरण करलेने के कारण राक्षसों का राजा दशमुख आपके अनादरमूलक निजवंश के विनाश का कारण स्वयं होकर व्याकुल बुद्धि वाला हुआ अतः अच्छी तरह इतिहास विज्ञानी पावन बुद्धि वाले अपने अनुजीवियों को सुशिक्षा वचनों से सुसंस्कृत कर पुण्य मार्ग का अनुगामी सम्यक् प्रकार से करते हैं ॥२७॥

**शरण्या भक्तानां विपुलसुखदात्री सुकृतिनां**
**गुणानामागारः जनकतनया रामरमणी ।**
**सुपुण्यैराचारैर्दुरितशमनी सौख्यजननी**
**जगद् वन्द्ये क्लेशं शमय निजभक्तार्तिशमनी ॥२८॥**

शरणाश्रित भक्तों का संरक्षण करनेवाली पुण्यशालियों को अपार सुख देनेवाली समस्त शुभ गुणों का आगार, महाराज जनक की सुपुत्री भगवान् श्रीरामजी को आनन्द देनेवाली पुण्यजनक शुभ कर्मों से अमङ्गल का नाश कारिणी एवं परमानन्द को प्रादुर्भाव करने वाली अपने भक्तों की पीडा का निवारण करनेवाली हे लोक वन्दनीय हे श्रीसीते ? मेरे क्लेशों का निवारण कर दें ॥२८॥

**यदा त्वां लङ्कायां दशवदननीतां कुलवधूं**
**समन्वेष्टुं धीमान् हरिवरमुखो निश्चितमतिः ।**
**तदा त्वां रामार्थं त्रिदिवमपि गन्तुं व्यवसितः**
**अशोकाख्ये रम्ये पवनतनयस्त्वत्पदयुगम् ॥२९॥**
**विलोक्य स्वात्मानं सुकृतिनिचयालङ्कृततनुं**

**विचिन्त्य श्रीरामं विरहदहनाक्रान्तहृदयम् ।**
**सशोकां लङ्काख्यां दहनविधिनाकर्तुमतुलां**
**पराक्रान्तिं कृत्वाभवदमलकीर्तिर्बलनिधिः ॥३०॥**

हे श्रीरामवल्लभे जब कुलाङ्गना आपको दशमुख रावण के द्वारा छाया रूपमें लङ्का में ले जाया गया तो उस समय अच्छी तरह आपका अन्वेषण करने के लिये परम बुद्धिमान् श्रेष्ठ वानरों में प्रधान सुस्थिर बुद्धिशाली बलों के खान श्रीहनुमानजी भगवान् श्रीरामजी का हित करने के लिये स्वर्ग में भी जाने के निर्णय किये, लङ्का के अशोक वाटिका नामक उपवन में आपके चरणयुगल का दर्शन कर एवं भगवान् श्रीरामजी को विरहानल से आक्रान्त हृदय विचार कर लङ्का दहन की क्रिया के द्वारा समग्र लङ्का को शोकाकुल करने हेतु अनुपम पराक्रम दिखलाकर अत्यन्त निर्मल सुयश से सुशोभित हुए ॥२९-३०॥

**क्षमाशीले ? सीते ? निखिलसुरपूज्ये ? जनकजे ?**
**प्रपन्नानामार्तिं हरसि दयया राघवप्रिये ? ।**
**कृपासारैः स्वीयान् रमयसि कृपासिन्धुदयिते ?**
**त्रयी वन्द्ये श्रेयो भगवति? रमे ? देहि कृपया ॥३१॥**

हे क्षमा स्वभाव शालिनी श्रीसीते सकल देवगण पूजनीय जनकतनये रघुनाथ प्रिये आप दयापूर्वक शरणागत की पीडा का निवारण करती हो । हे कृपा सिन्धु श्रीरामवल्लभे आप अनुकम्पा की धारा सम्पात वर्षा से आत्मीय भक्तों को आनन्दित करती हो । वेद वंन्दनीय सर्वेश्वरी श्रीसीताजी की वन्दना-स्तुति 'अर्वाची शुभगे भव सीते ? वन्दामहेत्वा यथानः सुभगा ससि यथा नः सुफला ससि' आदि ऋग्वेद के मन्त्रों से देवताओं ने की है अतः सर्वेश्वरी श्रीसीताजी वेद वन्दिता हैं अतः हे रमे भगवती आप मुझे कृपा पूर्वक परमकल्याण प्रदान करें ॥३१॥

**वनेषु शैलेषु पुरीषु मानवा, उपासनं तेऽनुदिनं सुभक्त्या ।**
**विधाय साकेतपतेः पदाब्जे, रतिं लभन्ते जगदम्ब सत्वरम् ॥३२॥**

हे जगदम्बे जो मानव वन में पर्वतों पर अथवा नगरों में सद् भक्ति पूर्वक आपकी उपासना प्रतिदिन करते हैं वे आपकी उपासना करके श्रीसाकेत नायक परब्रह्म श्रीरामजी के चरणों में अतिशीघ्र परम अनुराग को प्राप्त करते हैं ॥३२॥

**विदितधर्मगतिः पुरुषर्षभः, शरणगस्य सदापरिरक्षकः ।**

**प्रणतिभिः शरणागवत्सलः, तव पदाब्जरतस्य कृपाकरः ॥३३॥**

जिन्हें धर्म का स्वरूप परिणाम आदि सर्वथा ज्ञात है ऐसे पुरुषोत्तम सदैव शरणागत की रक्षा करने वाले शरणागत के प्रति परम वत्सल सर्वेश्वर श्रीरामजी आपके चरणकमलानुरागी पर प्रणाम करने मात्र पर कृपा करते हैं ॥३३॥

**निद्राविहीनः सततं सशोकः, रघुप्रवीरस्तव ध्यानमग्नः ।**
**नरोत्तमस्तेऽविरतं जगाद, सीतेति रम्यं मधुराभिधानम् ॥३४॥**

आपके वियोगवश सदैव निद्रा रहित शोकाकुल आपके ध्यान में तल्लीन रघुकुल के श्रेष्ठ वीर पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी आपके 'सीता' इस शुभ मधुर नाम को अहर्निश उच्चारण किये ॥३४॥

**धृतव्रतोदाशरथिर्महात्मा, कृतप्रयत्नस्तवलाभकामः ।**
**वृत्तं समाकर्ण्य समानशोका, त्वं वीतशोकाथगता सशोका ॥३५॥**

जब आपका श्रीहनुमानजी दर्शन किये तो श्रीरामदूत जानकर अशोक वाटिका में शोक रहित हुई किन्तु जब समाचार सुने कि श्रीराम-महापुरुष व्रत धारण किये हैं आपको पाने के लिये प्रयत्नशील हैं, इत्यादि को सुनकर पातिव्रत्य के कारण श्रीरामजी के समान दुःखी होकर शोक मुक्त होकर भी शोकाकुलता को प्राप्त की ॥३५॥

**अवनिजाचरणाम्बुरुहं मुदा, प्रतिदिनं प्रणिपत्य नमन्ति ये ।**
**अशुभव्रातनिरासलसन्मुखा, अनुभवन्ति परत्रसुखं नराः ॥३६॥**

धरणी गर्भ समुद्भवा श्रीवैदेहीजी के चरणकमलों को प्रतिदिन साष्टाङ्ग प्रणाम जो मनुष्य करते हैं, वे समस्त अशुभ पुञ्ज के निवारित हो जाने से प्रसन्न मुख रहते हैं एवं इस लोक तथा परलोक में अनन्त आनन्द राशि को भोगते हैं ॥३६॥

**भीतिर्नदृष्टा त्वयि देवि ? लङ्का निवासकालेऽपि दशास्थकोपात् ।**
**त्वं लोकनाथस्य धनुः स्वनेन प्रणष्टवंशोऽसि कथामवादीः ॥३७॥**

हे जगदम्बा श्रीसीता देवी आप में डर का लेश भी नहीं देखा गया है। क्योंकि आपने लङ्का निवास काल में भी रावण के कोप से भय का अनुभव नहीं किया प्रत्युत आपने निर्भय होकर उसे कहा कि लोकनायक भगवान् श्रीरामजी के धनुष के टंकार मात्र से पूर्ण रूपसे सवंश विनष्ट हो जाओगे, ऐसी वातें कही ॥३७॥

**पद्मानने त्वां मनसा स्मरामि पद्मस्थिते त्वां हृदये भजामि ।**
**पद्मप्रिये त्वां वचसा गृणामि पद्मोद्भवे त्वां सततं नमामि ॥३८॥**

हे कमलमुखी आपको मनसे स्मरण करता हूँ। हे पद्मासने आपको हृदय से भजता हूँ, हे कमलप्रिये आपको वचन से संकीर्तन करता हूँ तथा हे कमल पर आविर्भूत होनेवाली श्री स्वरूपे श्रीसीते आपको सदा प्रणाम करता हूँ ॥३८॥

**दारिद्र्यदोषशमनीति हिरणमयीत्वं रामादभिन्नमहितेति च श्री स्वरूपा ।**
**वात्सल्यभावभरिता करुणामयीत्वं सायुज्यदाननिरते भव मङ्गलाय ॥३९॥**

मनुष्य जीवन के दरिद्रता रूपी दोष का शमन करनेवाली हो इसलिये आपको सुवर्ण रूपा कहते हैं। आप सर्वेश्वर श्रीरामजी से अभिन्न स्वरूप में पूजि हो इसलिये आप श्री स्वरूपा हो, आप वात्सल्य भावना से परिपूर्ण हो 'पापानां वा शुभानां वा वधार्हाणामथापि वा। कार्यं कारुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति' इत्यादि रूपसे घोषणा करके अपराधिनी राक्षसियों को वचाइ हो इसलिये करुणामयी हो, अतः हे सायुज्य मुक्ति प्रदान परायंणे श्रीसीते आप मङ्गलकारिणी हों ॥३९॥

**सर्वेश्वरीत्वं स्वजनानुकूले, सर्वप्रिये सर्वविपत्तिहन्त्री ।**
**सर्वेश्वरानुग्रहदानशीले लोकैकवन्द्ये परिपाहि नित्यम् ॥४०॥**

हे सर्वेश्वरी आप समस्त आत्मीय भक्तजन के सदा अनुकूल हो, आप सभी भक्तों के प्रिय एवं सभी की विपत्ति निवारिणी हो, आप का सर्वेश्वर श्रीरामजी की परम दया का दान कराना स्वभाव है, हे संसार मात्र के वन्दनीय श्री जी आप सदैव सर्वतोभावेन हमारा एवं संसार का पालन करें ॥४०॥

**इयं जनकनन्दनी भुवनवारिधेस्तारिणी स्तुता सुरकदम्बकैः कलुषमोहविद्राविणी ।**
**प्रसन्नवदनाशुभाकनकमालिकाधारिणीविमुक्तिफलशालिनीप्रणतपालिनीराजते४१**

ये महाराज विदेह जनक की सुपुत्री संसार सागर से उद्धार करनेवाली देव समुदाय से स्तुति का विषय वनायी गयी यानी देवों द्वारा वेद मन्त्रों से स्तुति की गई पाप एवं मोह को दूर करनेवाली, सर्वशुभ प्रदायक मुखकमल वाली एवं प्रसन्न मुखी तथा कमल की माला को धारण की हुई विमुक्ति फल प्रदान के कारण शोभामान और शरणागतजन संरक्षण परायण स्वरूपेण सुशोभित होती हैं ॥४१॥

**समस्तपापताजातभीतिहारिवर्मदे, मुनीन्द्रवृन्दवन्दिते विचक्षणैः सुसेविते ।**
**भवप्रसूतदुःखपुञ्जदारिपादपङ्कजे, सुकीर्तिर्भुक्तिमुक्तिदे नमाम्यहं विदेहजे ॥४२॥**

हे विदेहजे श्रीसीते आप सभी तरह के पाप दैहिक दैविक और भौतिक दुःख समुदाय एवं भय का निवारण रूप कवच प्रदायिनी हो तत्त्वज्ञानी समूह से वन्दित

एवं विद्वानों से सुपूजित हो, संसार जनित दुःख समुदाय का विदारणकारी आपका श्रीचरणकमल है आप सत् कीर्ति शुभ भोग एवं चतुर्विध मोक्ष प्रदायिनी हो, आपको मैं प्रणाम करता हूँ ॥४२॥

**यदवधिचरणौ ते पातकी नैति मातः ? तदवधिमलजालैर्मुच्यते नैव सद्यः ।**
**सपदि सुखनिधानं प्राप्नुते वन्दनातः पतितपरमदीनां स्तापहीनान् करोषि ॥४३॥**

हे जगदम्बे जब तक पातकीजन आप श्री के श्रीचरणों के समक्ष नहीं आता है तब तक पाप पुञ्ज से सद्यः मुक्त नहीं होता है, अर्थात् आपके चरणाश्रित होते ही पापहीन हो जाता है। और आपको प्रणाम करने से शीघ्र ही आनन्द राशि को प्राप्त करता है। आप पतित और दीन तथा हीनजनों को दुःखों से मुक्त करती हो ॥४३॥

**त्वं कालरात्रिः क्षणदाचराणां लङ्केशनाशाय च कालपाशः ।**
**रामस्य लोकत्रयनायकस्य प्राणेश्वरी सौख्यकरी मतासि ॥४४॥**

हे श्रीरामवल्लभे आप राक्षसों के विनाश हेतु कालरात्रि हो एवं लङ्केश्वर का सर्वनाश के लिये यमपाश हो। त्रिलोकनायक सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी की परमानन्द दायिनी प्राण प्रिया हो इसप्रकार विद्वानों के द्वारा कही गयी हो ॥४५॥

**वन्दे विदेहाधिपतेस्तनूजा पादाम्बुजं गीतपतिव्रतायाः ।**
**साकेतनाथस्य यशः प्रतिष्ठा विवर्धिकायाः कुलभूषणायाः ॥४५॥**

जिनकी पतिव्रतात्व की प्रशंसा वेदादि सभी शास्त्रों में की गयी है जो साकेतनायक भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की यश और प्रतिष्ठा की सम्बर्धिका है तथा जो श्वसुर एवं पितृकुल का आभूषण स्वरूप हैं ऐसे महाराज विदेहतनया श्रीसीताजी के चरणकमल की वन्दना करता हूँ ॥४५॥

**विश्वम्भरप्रियतमाखिलविश्वरूपे विश्वं विभर्षि जननी तनयानिव स्वान् ।**
**विश्वम्भरासुतनया कमनीयकीर्तिः विश्वप्रियाय दययानुगृहाण विश्वम् ॥४६॥**

हे विश्वरूपे आप समस्त संसार का भरण पोषण करनेवाले परब्रह्म श्रीरामचन्द्रजी की प्रियतमा हो, आप जैसे माता अपने पुत्रों को सस्नेह पालन करती है, उस तरह समस्त चराचर का पालन पोषण करती हो, आप कमनीय कीर्तिशालिनी विश्वम्भरा पृथिवी की सुपुत्री हो, समस्त संसार का प्रिय के लिये अपनी दया से समस्त संसार को अनुगृहीत करें ॥४६॥

**यो मानवः प्रतिदिनं प्रयतः प्रभाते, श्रीजानकीस्तवमिदं पठतीह भक्त्या ।**

**तस्याशुभानि शकलानि निरस्य देवी, लोके परत्र च सुमङ्गलमातनोति ॥४७॥**

जो मनुष्य प्रातः काल में प्रतिदिन सावधान होकर भक्तिभावना के साथ इस श्रीसीता महिम्न स्तोत्र को पढता है उसके समस्त अमङ्गलों को निवारित करके श्रीरामवल्लभा श्रीसीतादेवीजी इसलोक में एवं परलोक में सर्वत्र शुभ-मङ्गल कर देती हैं ॥४७॥

**रामेश्वरेण यतिना जगदम्बिकायाः प्रीत्या कृतं स्तवमिदं परया च भक्त्या ।**
**श्रीवैष्णवाः प्रतिदिनं समुपासनासु कृत्वोपयोगमिह यत्न फलप्रदास्युः ॥४८॥**

आनन्दभाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामेश्वरानन्दाचार्य श्रीवैष्णव यति द्वारा जगदम्बा श्रीसीताजी के चरणों में परमानुराग एवं परमभक्ति पूर्वक होकर विरचित यह श्रीसीता महिम्नस्तव श्रीवैष्णवगण प्रतिदिन अपनी पूजोपासना काल में इसका उपयोग करके मेरे राम के इस सत्प्रयास को इस जगत में फलदायी वनायेंगे यह शुभ अभिलाषा है ॥४८॥

**साकेतवासिने श्रीमद् गुरवेऽर्पितमादरात् ।**
**महिम्नो जगदम्बायाः भूतयेऽस्तु भुवः स्तवम् ॥४९॥**

सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी के परमधाम श्रीसाकेतलोक में निवास शील गुरुवर जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीमान् रामप्रपन्नाचार्यजी योगीन्द्र की सेवा में आदरपूर्वक सर्मपित यह जगदम्बा श्रीसीताजी की महिमाओं का स्तोत्र इस संसार का सर्वविध ऐश्वर्यदायी हो ॥४९॥

**भूयो नमामि वैदेहीं साकेतेश्वरवल्लभाम् ।**
**पुनातु जगतः स्वान्तमनुगृह्णातु मां च सा ॥५०॥**

पुनः मैं साकेताधिनायक सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी की परमवल्लभा जनकनन्दनी सर्वेश्वरी श्रीसीताजी को सादर दण्डवत् प्रणाम करता हूँ। वे जगदम्बा समस्त चराचर जगत् के मानस को परम पावन वनावें और मुझ रामेश्वरानन्दाचार्य को सदैव अपनी अनुकम्पा पूर्ण दृष्टि से अनुगृहीत करें ॥५०॥

इत्यानन्दभाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामेश्वरा
नन्दाचार्य श्रीवैष्णव यतिना विरचितं श्रीसीतामहिम्न
स्तोत्रं सटीकं सम्पन्नं जगद्धिताय स्यादिति शम्।

卐 श्रीसीता शरणं मम 卐

❀ श्रीसीतारामाभ्यां नमः ❀

यतिराड् जगद्गुरु श्रीगङ्गाधराचार्यप्रणीत

# श्रीरामस्तवकलानिधिः

**जानकी राघवौ नत्वा तथा बोधायनं गुरुम् ।**
**श्रीरामप्रीतये कुर्वे रामस्तवकलानिधिम् ॥१॥**

आनन्दभाष्यसिंहासनासीन
जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामेश्वरानन्दाचार्य
कृता लघुदीपिका टीका

**सीतारामसमारम्भां रामानन्दार्यमध्यमाम् ।**
**रामप्रपन्नगुर्वन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥**

सर्वेश्वर श्रीसीतारामजी तथा मेरे गुरुदेव जगद्गुरु श्रीपुरुषोत्तमाचार्यजी श्रीबोधायनजी को नमस्कार कर श्रीरामजी की प्रीति के लिये श्रीरामस्तवकलानिधि नामक दिव्य प्रबन्ध को मैं करता हूँ अर्थात् बनाता हूँ ॥१॥

**कौसल्येय ? नमस्तेऽस्तु दाशरथे ? नमोऽस्तु ते ।**
**नमः साकेतनाथाय श्रीरामाय नमोऽस्तु ते ॥२॥**

हे कौसल्येय ? श्रीकौसल्याजी के पुत्र आपको नमस्कार हो, श्रीदशरथ महाराज के पुत्र ? आपको नमस्कार हो । साकेत के स्वामी को नमस्कार हो, श्रीरामजी को नमस्कार हो ॥२॥

**सुरध्येय नमस्तेऽस्तु योगिध्येय ? नमोऽस्तु ते ।**
**मुनिध्येय ? नमस्तेऽस्तु श्रीरामाय नमोऽस्तु ते ॥३॥**

हे सुरध्येय ? सव देवों से सर्वदा ध्यातव्य हे राम ? आपको नमस्कार हो, हे योगियों से सर्वदा ध्यातव्य ! सर्वेश्वर श्रीराम ! आपको नमस्कार हो मुनियों से ध्येय श्रीरामजी को नमस्कार हो हे सर्वेश्वर श्रीरामजी आपको नमस्कार हो ॥३॥

**नमस्ते विश्वरूपाय नमस्ते विश्वहेतवे ।**
**नमस्ते विश्ववन्द्याय नमस्ते विश्वरक्षक ? ॥४॥**

विश्व के वन्दनीय श्रीरामजी आपको नमस्कार हो विश्व के कारण स्वरूप श्रीरामजी आपको नमस्कार हो । विश्व के वन्दनीय श्रीरामजी आपको नमस्कार हो, विश्व के

संरक्षक हे श्रीरामजी आपको नमस्कार हो ॥४॥

**खरारये नमस्तेस्तु दैत्यारये नमोस्तु ते ।**

**कंसारये नमस्तेऽस्तु मुरारये नमोऽस्तु ते ॥५॥**

खर नामक राक्षस के शत्रु श्रीरामजी आपको नमस्कार हो दैत्यों के शत्रु सर्वेश्वर श्रीरामजी आपको नमस्कार हो, कंस के शत्रु श्रीजानकीजी के नाथ आपको नमस्कार हो मुर राक्षस के शत्रु सर्वरक्षक श्रीरामजी आपको नमस्कार हो ॥५॥

**नमस्ते रावणाराते ? नमस्ते रघुनन्दन ? ।**

**नमस्ते राक्षसाराते ! नमस्ते धर्ममण्डन ! ॥६॥**

रावण के शत्रु सर्वरक्षक श्रीराम ? आपको नमस्कार हो, हे धर्म के मण्डन, वेद धर्म रक्षा के लिये पुरुषोत्तम रूपसे अवतार लेकर सर्व धर्म के पालक संवर्धक राक्षसों के अन्तक धर्म भूषण सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी आपको सर्वदा नमस्कार हो यानी मैं आपको सदा नमन करता हूँ ॥६॥

**पापहर्त्रे नमस्तेऽस्तु धर्मकर्त्रे च ते नमः ।**

**नमश्चानन्ददात्रे ते दुःखहर्त्रे च ते नमः ॥७॥**

सव पापों के हर्ता आपको नमस्कार हो, सव धर्मों के आचरण कर्ता आपको नमस्कार हो, सवप्रकार के आनन्द के दाता श्रीरामजी आपको नमस्कार हो, समस्त दुःखों के हर्ता हे रमानाथजी आपको नमस्कार हो ॥७॥

**दिव्यदेह ? नमस्तुभ्यं नमस्ते सुषमाकर ? ।**

**दोषहीन ? नमस्तुभ्यं नमस्ते गुणसागर ? ॥८॥**

हे दिव्य शरीर वाले परब्रह्म श्रीरामजी आपको नमस्कार हो, हे सुषमा के आकर ? खजाने ! प्रभु आपको अनन्तवार नमस्कार हो, सव दोषों से रहित हे राम आपको नमस्कार हो, हे गुणों के सागर ? समुद्र ? सर्वाधार श्रीराम आपको नमस्कार हो ॥८॥

**सीताकान्त ? नमस्तुभ्यं शान्त ! दान्त ? नमोऽस्तु ते ।**

**अविश्रान्त ? नमस्तुभ्यं भ्रान्तिहारिन् ! नमोऽस्तु ते ॥९॥**

हे सीताजी के स्वामी श्रीरामजी आपको नमस्कार हो, शान्त तथा सर्वदान्त स्वरूप श्रीरामजी आपको नमस्कार हो, सव प्रकार के भ्रम रहित स्वप्रकाश ज्ञान स्वरूप श्रीरामचन्द्रजी ? आपको नमस्कार हो, हे भ्रम के नाशक श्रीजानकीनाथजी आपको नमस्कार हो ॥९॥

**धर्मप्रद ? नमस्तुभ्यमर्थप्रद नमोऽस्तु ते ।**

**कामप्रद ? नमस्तुभ्यं मोक्षप्रद नमोऽस्तु ते ॥१०॥**

हे धर्म के दायक धर्म स्वरूप श्रीरामजी आपको नमस्कार हो सव इच्छित अर्थों के दायक ? आपको नमस्कार हो, हे काम के दायक ? आपको नमस्कार हो, शरणागत सभी को सायुज्य मुक्ति दाता श्रीरामजी आपको नमस्कार हो ॥१०॥

**नमो वेदान्तवेद्याय नमस्ते सर्ववेदिने ।**

**नमो वेदप्रदायाथ नमस्ते वेदभाषिणे ॥११॥**

उपनिषत् प्रमाणों से ज्ञेय प्रभु आपको नमस्कार हो, सर्वज्ञ श्रीरामजी आपको नमस्कार हो, सृष्टि के आदिकाल में ब्रह्माजी को वेद का उपदेश देनेवाले आपको नमस्कार हो, और वेद के भाषण उपदेश के द्वारा सर्वलोकोपकारक एक श्रीरामजी आपको नमस्कार हो ॥११॥

**सर्वाधार ! नमस्तुभ्यं निराधार ? नमोऽस्तु ते ।**

**निर्विकार ? नमस्तुभ्यं महोदार ? नमोऽस्तु ते ॥१२॥**

हे सर्वाधार सर्वेश्वर श्रीरामजी आपको नमस्कार हो, हे निराधार अन्य आधार से रहित स्व स्वरूप में स्थित श्रीरामजी ? आपको नमस्कार हो । हे निर्विकार सर्व सत्व गुण सम्पन्न श्रीरामचन्द्रजी आपको नमस्कार हो, हे महोदार ? सवको शरण में रखनेवाले महा उदार श्रीरामजी आपको नमस्कार हो ॥१२॥

**भक्तिप्रिय ? नमस्तुभ्यं नमस्ते भक्तरक्षक ? ।**

**शक्तिप्रद ? नमस्तुभ्यं नमस्ते भीतिहारक ? ॥१३॥**

हे भक्ति प्रिय ! आपको नमस्कार हो, हे भक्तों के पालक ? आपको नमस्कार हो, हे भक्ति के दायक ! आपको नमस्कार हो, भयके नाशक, श्रीरामजी ? आपको नमस्कार हो ॥१३॥

**नमो भक्त्येकलभ्याय भक्तिप्रद ? नमोऽस्तु ते ।**

**नमस्ते सच्चिदानन्द ? ज्ञानप्रद ? नमोऽस्तु ते ॥१४॥**

केवल भक्ति से ही लभ्य आपको नमस्कार हो, हे भक्ति प्रद ? आपको नमस्कार हो, हे सच्चिदानन्द ! श्रीरामजी आपको नमस्कार हो हे ज्ञानप्रद सर्वेश्वर श्रीराम ? आपको नमस्कार हो ॥१४॥

**सर्वेश्वर ? नमस्तुभ्यं नमस्ते सर्वशेषिणे ।**

**नमः सर्वशरीराय नमः सर्वावतारिणे ॥१५॥**

हे सर्वेश्वर ! आपको नमस्कार हो सर्वशेषी आपको नमस्कार हो, सर्वशरीर स्वरूप श्रीरामजी ? आपको नमस्कार हो, सर्वावतारी श्रीरामचन्द्रजी आपको नमस्कार हो ।१५।

**नमस्ते सत्यसन्धाय शार्ङ्गिणे बाणिने नमः ।**

**नमः शरण्यवर्याय प्रपन्नरक्षिणे नमः ॥१६॥**

सत्यप्रतिज्ञ श्रीरामचन्द्रजी ? आपको नमस्कार हो, शार्ङ्ग मृगश्रृङ्ग के धनुषधारी आपको नमस्कार हो, सर्वाभय प्रद बाणों के धारी आपको नमस्कार हो, शरण्यवर्य-शरण में आये जनों के रक्षण में श्रेष्ठ श्रीराम ? आपको नमस्कार हो, सव प्रपन्नों शरणागतों के रक्षाकारी शरणागत रक्षक श्रीरामजी आपको नमस्कार हो ॥१६॥

**विष्णवे च नमस्तेस्तु नमस्ते दुष्टजिष्णवें ।**

**नमः सृष्ट्यादिकर्त्रे ते परस्मै ब्रह्मणे नमः ॥१७॥**

विष्णु-सर्वव्यापक श्रीराम ! आपको नमस्कार हो दुष्टों के जयशील सर्वदमन श्रीरामजी आपको नमस्कार हो, सृष्टि के प्रथम कर्ता सर्वेश्वर श्रीरामजी आपको नमस्कार हो, परात्पर ब्रह्म श्रीरामजी आपको नमस्कार हो ॥१७॥

**पुरुषोत्तमशिष्येण गङ्गाधरेण निर्मितः ।**

**भूयाद् रामप्रसादाय रामस्तवकलानिधिः ॥१८॥**

卐 इतिश्रीरामस्तवकलानिधिः समाप्तः 卐

श्रीपुरुषोत्तमाचार्य बोधायनजी के शिष्य श्रीगङ्गाधराचार्यजी से विरचित यह श्रीरामस्तवकलानिधि श्रीरामजी के प्रसाद अर्थात् नियत रूपसे पाठ करनेवालों को प्रसन्नता के लिये हो ॥१८॥

आनन्दभाष्यसिंहासनासीन

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामेश्वरानन्दाचार्य

कृता ☬ लघुदीपिका ☬ टीका

**हरिः ॐ अर्वाची सुभगे ? भव सीते ! वन्दामहे त्वा ।**

**यथा नः सुभगाऽससि यथा नः सुफलाऽससि ॥१॥**

परतत्त्व जानने की इच्छा से लाट्यायन प्रभृति सात महर्षियों ने एक समय में सर्वेश्वरी श्रीसीताजी से अति विनम्र भाव से प्रार्थना की हे सुभगे ? ज्ञान शक्ति बल ऐश्वर्य वीर्य तथा तेज इन छ गुणों से सम्पन्न हे सर्वेश्वरी श्रीसीताजी ? धर्माचरण विरुद्ध

चलने वाले असुरों का अन्त करनेवाली हे जगज्जननी श्रीसीताजी ? हम आपके शरण में आये हैं आपको विनम्र भाव से वन्दना-प्रणाम करते हैं अतः हे जनक नन्दिनीजी ? आप हम सव के अनुकूल होजायँ अर्थात् हम सबों से इच्छित तत्त्व ज्ञान प्रदान करें जिससे हम सव भव बन्धन काटकर मुक्त हो जायँ यानी आप श्री का सान्निध्य प्राप्तकर सकें क्योंकि 'यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः' इस श्रुति के कथनानुसार जबतक आपकी अनुकम्पा जीवों पर नहीं होती है तबतक कोई भी जीव सायुज्य मुक्ति का भागी नहीं हो सकता है। कारण यह कि आप ही सुभगा उत्तम ऐश्वर्य प्रदायिनी तथा सुफला आपके प्राप्ति विरोधियों का नाशक होने से इच्छित फल प्रदायिनी हैं अतः हे सर्वशक्ति सम्पन्न जगजननीजी ? हमसवों को आपके प्राप्ति में विरोधि रूप असुरों को दूरकर यानी उनका अन्त करके आपकी प्राप्तिरूपी ऐश्वर्य अर्थात् सायुज्य मुक्ति प्रदान करें ॥१॥

**इममेव मनुं पूर्वं साकेतपतिर्मामवोचत् । अहं हनुमते मम प्रियाय प्रियतराय । स वेदवेदिने ब्रह्मणे । स वशिष्ठाय । स पराशराय । स व्यासाय । स शुकाय। इत्येषोपनिषद् । इत्येषा ब्रह्मविद्या ।**

सर्वेश्वरी श्रीसीताजी ऋषीश्वरों को मन्त्रराज षडक्षर महामन्त्र के परम्परा के विषय में कहती हैं यही **( रां रामाय नमः )** षडक्षर श्रीराम महामन्त्र को दिव्यलोक में श्रीसाकेताधिनायक सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी ने मुझे कहा अर्थात् सविधि उपदेश दिया। मैने मेरे प्रियातिप्रिय सेवक मरुत नन्दन श्रीहनुमानजी को यथा शास्त्र विधि विधान से उपदेश दिया । श्रीहनुमानजी ने भी शास्त्रीय विधान से वेद के ज्ञाता श्रीब्रह्माजी को उपदेश दिया। श्रीब्रह्माजी ने भी शास्त्र विधान के अनुसार ही स्वमानस पुत्र श्रीवशिष्ठजी को उपदेश दिया। श्रीवशिष्ठजी ने शास्त्रीय विधि से श्रीपराशरजी को उपदेश दिया। श्रीपराशरजी ने शास्त्र विधि के अनुसार श्रीव्यासजी को उपदेश दिया। श्रीव्यासजी ने शास्त्र विधि विधानानुसार श्रीशुकदेवजी को उपदेश दिया । यही उपनिषद् श्रीरामचन्द्रजी के दिव्यधाम श्रीसाकेत में जाने का साधन है यानी शास्त्रीय विधि से श्रीगुरुमुख से प्राप्त तारक श्रीराम महामन्त्र के अनुष्ठान से ही सायुज्य मुक्ति या श्रीराम प्राप्ति की जा सकती है अन्य साधनों से नहीं। यही ब्रह्मविद्या है उपरोक्त क्रम से सत् आचार्य परम्परा प्राप्त श्रीराम मन्त्रराज से या उसके सविधि सदनुष्ठान से जीवों की मुक्ति होती है अतः यह ब्रह्मविद्या इस नाम से संसार में प्रसिद्ध हैं।

इसी वैदिक परम्परा का उल्लेख अपनी परम्परा के रूपमें आनन्दभाष्यकार

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराज ने अपने गीतानन्दभाष्य में किया है-

**श्रीरामं जनकात्मजामनिलजं वेधो वशिष्ठावृषी**
**योगीशञ्च पराशरं श्रुतिविदं व्यासं जिताक्षं शुकम् ।**
**श्रीमन्तं पुरुषोत्तमं गुणनिधिं गङ्गाधराद्यान्यतीञ्**
**श्रीमद्राघवदेशिकञ्च वरदं स्वाचार्यं वर्यं श्रये ॥**

अर्थात् १-सर्वावतारी सर्वेश्वर श्रीरामजी २-सर्वेश्वरी श्रीसीताजी ३-श्रीहनुमानजी ४-श्रीब्रह्माजी ५-श्रीवशिष्ठजी ६-श्रीपराशरजी ७-श्रीव्यासजी ८-श्रीशुकदेवजी । ९-श्रीपुरुषोत्तमाचार्यजी बोधायन १०-श्रीगङ्गाधराचार्यजी श्लोक के आदि शब्द से ग्रहीत ११-श्रीसदानन्दाचार्यजी १२-श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजी १३-श्रीद्वारानन्दाचार्यजी १४-श्रीदेवानन्दाचार्यजी १५-श्रीश्यामानन्दाचार्यजी १६-श्रीश्रुतानन्दाचार्यजी १७-श्रीचिदानन्दाचार्यजी १८-श्रीपूर्णानन्दाचार्यजी १९-श्रीश्रियानन्दाचार्यजी २०-श्रीहर्यानन्दाचार्यजी २१-श्रीराघवानन्दाचार्यजी २२-वें में स्वयं प्रस्थान त्रयानन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी यतिराज ।

इसके वाद की परम्परा इसप्रकार है २३-ज.गु. श्रीभावानन्दाचार्यजी २४-ज.गु. श्रीअनुभवानन्दाचार्यजी २५-ज.गु. श्रीविरजानन्दाचार्यजी २६-ज.गु. श्रीआशारामाचार्यजी-हाथीरामजी २७-ज.गु. श्रीरामभद्राचार्यजी २८-ज.गु. श्रीरघुनाथाचार्यजी २९-ज.गु. श्रीविश्वंभराचार्यजी ३०-ज.गु. श्रीराघवेन्द्राचार्यजी ३१-ज.गु. श्रीवैदेहीवल्लभाचार्यजी ३२-ज.गु. श्रीकोसलेन्द्राचार्यजी ३३-ज.गु. श्रीरामकिशोराचार्यजी ३४-ज.गु. श्रीजानकीनिवासाचार्यजी ३५-ज.गु. श्रीसाकेतनिवासाचार्यजी ३६-ज.गु. श्रीजानकीजीवनाचार्यजी ३७-ज.गु. श्रीभरताग्रजाचार्यजी ३८-ज.गु. श्रीहनुमदाचार्यजी ३९-महामहोपाध्याय जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरघुवराचार्यजी वेदान्तकेसरी ४०-वें शंकुधारा काशी में जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य का प्रधान आचार्यपीठ ''आनन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यपीठ'' तथा मरीचितपो भूमि अहमदाबाद में श्रीकोसलेन्द्रमठ और 'श्रीरघुवर रामानन्द वेदान्त महाविद्यालय' के संस्थापक जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामप्रपन्नाचार्यजी योगीन्द्र दर्शनकेसरी तथा ४१ वें विश्रामद्वारकास्थ जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यपीठाधीश्वर आनन्दभाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजी वर्तमान में ।